# कालजयी सनातन धर्म



स्वामी संवित् सोमगिरि



शिवार्चन प्रकाशन
पुष्प : द्वादश

*प्रकाशक :*
मानव प्रबोधन प्रन्यास
**श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर**
शिवमठ, शिवबाडी, बीकानेर 334003
दूरभाष : 0151-2230982



*प्रथम संस्करण :*
श्रीगुरुपूर्णिमा
विक्रम सम्वत् 2061

*प्रतियाँ :* 1100

*मूल्य :* 150/-

*मुद्रक :* सांखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास
चन्दनसागर, बीकानेर 334001



*पुस्तक प्रकाशन*

स्व. सेठ बदरीदासजी दम्माणी

की

पावन स्मृति

में



# प्रकाशकीय

शिवार्चन प्रकाशन के द्वादश पुष्प का शिवार्पण करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी के आमन्त्रण पर पूज्यश्री का 10 अगस्त, 2001 को कन्याकुमारी जाना हुआ था। वहाँ पूज्यश्री ने सनातन धर्म विषय पर केन्द्र के जीवनव्रतियो के एक लघुदल को संवाद की शैली मे प्रबोधित किया था। कार्यक्रम के पूर्व पूज्यश्री श्री शंकराचार्यजी की जन्मभूमि कालडी व केरल के कुछ प्रमुख तीर्थो के दर्शन करते हुए कन्याकुमारी पहुँचे थे। वर्ष 1998 मे विवेकानन्द केन्द्र, गौहाटी के आमन्त्रण पर पूज्यश्री का पूर्वांचल में भी जाना हुआ था। वहाँ के विकट, विषम, चुनौतीभरे वातावरण में केन्द्र-कार्यकर्ता जिस उत्साह, लगन व जीवट से कार्यरत हैं, उसका भी पूज्यश्री के मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे भी रामकृष्ण परमहंस व विवेकानन्द पूज्यश्री के किशोर अवस्था से ही प्रेरणास्रोत रहे है। प्रस्तुत प्रवचनो के पूर्व की भाव-भूमि इस प्रकार से निर्मित हुई।

इन प्रवचनों की रिकॉर्डिंग भी की गई थी। पूज्यश्री के साथ आये श्री स्वामी सुबोधगिरिजी ने उन केसेट्स की प्रतिलिपियाँ बनवा ली। बीकानेर लौटने पर उन्होने पाया कि रिकॉर्डिंग मे न्यूनता रह गई है। उन्होंने पुनः केन्द्र कार्यालय से सम्पर्क करके केसेट्स की प्रतिलिपियाँ मँगवाई। किन्तु उन्होंने पाया कि इनमें भी प्रवचनों का कुछ अंश छूटा हुआ है। श्रीयुत स्वामी सुबोधगिरिजी ने घण्टों-घण्टों बैठकर केसेट्स से प्रवचनों को लिपिबद्ध किया। उन्हीं का प्रबल आग्रह था कि इन प्रवचनो को पुस्तक रूप मे

प्रकाशित किया जाए। उसी का सुपरिणाम है कि आज यह पुस्तक पाठको के समक्ष है। एतदर्थ वे विशेष शिव-प्रसाद के पात्र हैं।

इस प्रवचन-माला को आयोजित करने एवं प्रवचनों की ऑडियो केसेट उपलब्ध करवाने के लिये हम विवेकानन्द केन्द्र, कन्याकुमारी के विशेष आभारी है।

श्री दीनेशचन्द्रजी शर्मा, सहायक केन्द्र निदेशक, आकाशवाणी, सूरतगढ व श्री प्रमोदजी शर्मा, उद्घोषक, आकाशवाणी, सूरतगढ के भी आभारी है, जिन्होंने दिनाक 19-6-04 को स्वामीश्री की जीवनदृष्टि और साधना को लेकर किये गये साक्षात्कार को, जो आकाशवाणी, सूरतगढ से प्रसारित किया गया था, पुस्तक प्रकाशन हेतु उपलब्ध कराया।

पुस्तक का समस्त व्यय-भार श्री पन्नालालजी लोहिया एवं उनके दामाद चिरंजीव श्रीयुत राधाकिसनजी दम्माणी, बाम्बोरी-महाराष्ट्र ने वहन किया है। दोनों महानुभाव साधुवाद के पात्र है।

पुस्तक का प्रकाशन श्री राधाकिशनजी दम्माणी के स्वर्गीय पिता श्री बद्रीदासजी दम्माणी की पावन स्मृति मे किया गया है।

प्रूफरीडिंग के कार्य को श्री दीपसिहजी बडगूजर, श्री सूरजसिह पॅवार एवं श्री माणक तिवाडी 'बन्धु' ने सम्पन्न किया, एतदर्थ हम उनके प्रति आभारी है।

जिस धैर्य व सद्भाव से सांखला प्रिण्टर्स ने मुद्रण कार्य सम्पन्न किया, वह प्रशंसनीय है।

शिवाकांक्षी

**शिवार्चन प्रकाशन**

# भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक मे यद्यपि सनातन धर्म का सम्पूर्ण प्रतिपादन नहीं हो पाया है, तथापि धर्म–तत्त्व के रहस्य को स्पष्ट करते हुए पुस्तक मे पाठक की धर्म–जिज्ञासा को प्रदीप्त करने का प्रयास किया गया है।

सनातन धर्म का आधार वेद है। वेद सनातन, अनन्त व अपौरुषेय है। वेद का अत्यल्प अश आज उपलब्ध है। पुराण, स्मृतियाँ व अन्य ग्रन्थ भी धर्म के विषय मे वेदानुकूल हो तो प्रमाण रूप में स्वीकार्य है।

धर्म की आत्मा वेदान्त दर्शन है। इसके अनुसार जीव, जगत्, ईश्वर के आधार में एक अद्वितीय, पूर्ण सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है। ईश्वर कर्म–सापेक्ष होकर सृष्टि करता है। ईश्वर कर्मफल–प्रदाता है। केवल मनुष्य योनि ही कर्म–योनि है। मनुष्य ही अपने कर्मो के अनुसार नाना योनियों में जाता है। यह जगत् अनादिकाल से चला आ रहा है। यह एक यज्ञ–चक्र द्वारा, देवगणों द्वारा संचालित है। मानव अपनी कामनापूर्ति यज्ञ–चक्र के अनुसार करे, तभी उसका सर्वांगीण विकास सम्भव है। कामनापूर्ति के साथ–साथ मनुष्य के लिए पाँच ऋणों से उऋण होने हेतु नित्य–कर्म रूप से पॉच महायज्ञो को करने का विधान है। इनको समझने व सम्पन्न करने हेतु जिस नूतन दृष्टि की आवश्यकता है, उसे पुस्तक में प्रस्तुत किया गया है। कर्म का सिद्धान्त, पुनर्जन्म, ईश्वर–तत्त्व, आत्म–स्वरूप, जगत्–स्वरूप व समाज के सर्वांगीण विकास हेतु चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ, षोडश संस्कार—इन सब पर ताजगी से चिन्तन व विमर्श करने हेतु पुस्तक मे प्रचुर प्रेरणाएँ है।

यह पुस्तक सभी प्रकार के साधकों के लिये उपादेय सिद्ध होगी—ऐसा विश्वास है।

यह प्रस्तुति परमपूज्य गुरुदेव अनन्तश्री विभूषित स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी महाराज, सवित् साधनायन, आबू पर्वत के श्रीचरणों मे सादर समर्पित है। उनके कृपा–प्रसाद रूप से प्राप्त सवित्–दृष्टि से ही यह अभिव्यक्ति सम्भव हुई है।

शिवाकांक्षी

**संवित् सोमगिरि**

# अनुक्रम

# प्रथम प्रवचन

धर्म एक जीवन्त तत्त्व है। केवल पुस्तको द्वारा इसे नहीं समझा जा सकता। धर्म को समझने के लिए व जीवन मे उतारने के लिए एक जीवन्त आदर्श चाहिए।

धर्म-तत्त्व को समझने के लिए ब्रह्म-तत्त्व का चिन्तन आवश्यक है। यदि ब्रह्म को समझना हो तो धर्म को समझना होगा और यदि धर्म को समझना हो तो ब्रह्म को समझना होगा। धर्म और ब्रह्म—दोनों को समझने के लिए महापुरुषो को समझना होगा।

पाण्डवों के वनवासकाल की घटना है। ...सरोवर के किनारे अपने चारो भाइयो को मृत देखकर युधिष्ठिर शोक में डूब गये। उनकी मृत्यु का कारण पता लगाने के पूर्व उन्होने अपनी प्यास बुझाने के लिए सरोवर में प्रवेश किया। तभी एक यक्ष ने प्रकट होकर कहा—'मैंने ही तुम्हारे भाइयो को यमलोक भेजा है। मेरे प्रश्नों का उत्तर दो और जल पीओ, अन्यथा तुम्हें भी यमलोक भेज दूँगा। यक्ष ने अनेक प्रश्न किये। युधिष्ठिर ने धैर्यपूर्वक उनके उत्तर दिए। यक्ष का एक प्रश्न था–'कः पन्थाः'—मार्ग क्या है?

धर्मराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—

**तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।**
**धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः।।**

महाभारत-वनपर्व 313 117

अर्थात् 'तर्क की कहीं स्थिति नही है, श्रुतियॉं भी भिन्न-भिन्न है; ऋषि कोई एक ही नही है कि जिसके मत को प्रमाण माना जाय तथा धर्म का तत्त्व हृदय-गुहा में निहित है अर्थात् अत्यन्त गूढ है अतः जिससे महापुरुष जाते रहे है, वही मार्ग है।'

आप जिनकी आलोकमय छाया मे जीवन चला रहे हैं, यदि हम उनका ही चिन्तन कर लें तो हमको धर्म और ब्रह्म—दोनों तत्वों का साक्षात्कार हो जायगा। इसलिये थोडा-सा स्मरण करे, अतीत मे थोडी यात्रा करे, जिनके आलोक को लेकर, प्रेरणा को लेकर, पाथेय को लेकर, जिनके पथ को लेकर आप चल रहे हैं—उनका स्मरण करे। सम्भवतः आपको लगेगा कि यह सब तो हम जानते हैं। स्वामी विवेकानन्दजी के बारे मे बहुत-कुछ पढते-सुनते-बोलते रहे हैं आप लोग—पर आज मैं उन्हीं के बारे मे बोलूँगा। कैसे उनका अवतरण हुआ? क्यो उनका अवतरण हुआ? कहाँ उनका अवतरण हुआ? किसलिये उनका अवतरण हुआ? क्या-क्या उन्होने किया? अपनी अल्पायु को उन्होंने इतनी समग्रता से जिया, एक अनुभूति की पराकाष्ठा को लेकर और एक अभिव्यक्ति की पराकाष्ठा को लेकर उन्होने जिया। आज हम अपने प्रथम विमर्श मे उन्हीं का थोडा चिन्तन करेंगे।

12-1-1863 को उनका अवतरण हुआ। विश्वनाथ दत्त और भुवनेश्वरी के यहाँ शिवावतरण हुआ। विश्वेश्वर की कृपा से हुआ। शिव के अश रुप से हुआ। रामकृष्ण परमहंस ने कहा—वह तो कोई सप्त-ऋषियों मे से एक है, वही उतरकर आया है। कैसे उनका बचपन बीता? मानो वे युवा होकर ही पैदा हुए थे। उनकी बचपन की घटनाओं को देखते हैं तो लगता है—वे युवा होकर ही उत्पन्न हुए थे। वे चिरयुवा थे। किस प्रकार उनके जीवन मे एक जिजीविषा जगमगाती हुई, एक उद्दाम जिजीविषा, एक समग्र जिजीविषा, एक अपूर्व जिज्ञासा, एक अद्‌भुत जिगीर्षा—मैं जीता रहूँ, मैं जानता रहूँ, मैं जीतता रहूँ—एक परम स्वातंत्र्य की उत्कण्ठा, एक अद्‌भुत प्रकटन, एक अद्‌भुत सर्जनेच्छा उनमें प्रकट हुई। मानो वह परब्रह्म पूर्णयौवन को लेकर उनके रूप में अवतरित हुआ। उनके जीवन में जहाँ-जहाँ कुछ अद्‌भुत परिवर्तन आया, मैं उसकी ओर इंगित करूँगा। जैसे-जैसे वह बालक किशोरावस्था की तरफ बढा, उसमे जिज्ञासा की लौ उत्तरोत्तर प्रदीप्त होती गई। मै जानूँ, मै जानूँ, मै जानूँ। अन्दर क्या है, बाहर क्या है, सब जगह क्या है? जीवन का तात्पर्य क्या है? कहाँ से यह जीवन प्रारंभ हुआ? कहाँ पर यह जा रहा है? ऐसी जिज्ञासा। पढा, पढा, बहुत पढा। माँ से सीखा, पिता से सीखा, गुरुजनों से सीखा परन्तु निरतर

वह जिज्ञासा की लौ उनके अन्दर जगमगाती रही और सारी–की–सारी जिज्ञासाएँ प्रश्न बनकर उनके अन्दर पनपती रही, बढती रहीं, तीव्र–तीव्रतर होती रही। किसी का पढा, किसी का सुना, किसी का लिखा—किसी को यथावत् स्वीकार किया ही नहीं। बैठ जाते थे अकेले मे। मित्र पूछते थे—क्या कर रहे हो? वे कहते थे—मैं ढूँढ रहा हूँ अपने–आप को, अपने–आप को पूछ रहा हूँ, अपने–आप को टटोल रहा हूँ, अपने अन्दर जा रहा हूँ। अपने अन्दर भी पूछते, अपने बाहर भी पूछते और पूछते–पूछते उनका सारा व्यक्तित्व एक ज्वलन्त प्रश्न बन गया। क्या ईश्वर है? कहीं पर किसी ने देखा है? ईश्वर है? उनके अध्यापक ने कुछ संकेत दिये थे। पर जी भरा नही।

एक दिन वही तत्त्व उनके बिल्कुल नजदीक पडोस में ही आ गया। वे आमन्त्रित हुए, वहाँ पर एक भजन गाया; गुरु का आमन्त्रण मिला—कभी आना, वहॉ पर, दक्षिणेश्वर में। और इस प्रकार से छटपटाते हुए, उस प्रश्न की व्याकुलता को लिये हुए एक दिन वे पहुँच गये वहॉ पर। जीवन में परिवर्तन आना था। पूछा था महर्षियों से, पूछा था गुरुजनों से—क्या आपने ईश्वर देखा है? सबने टालमटोल कर दी, किसी ने सही–सही उत्तर दिया नही। 'नरेन्द्र, तुम्हारी ऑखें योगी जैसी लगती है।' 'हमारे शास्त्रों के अन्दर ईश्वर साक्षात्कार किये हुए महापुरुषो का वर्णन है।' आखिर वे पहुँच गये उनके पास मे, गुरु के पास पहुँच गये। गुरु उनके पास आये या वे गुरु के पास आये या दोनों एक–दूसरे के पास आये। गुरु शिष्य को ढूँढता है या शिष्य गुरु को ढूँढता है या एक–दूसरे को वे ढूँढते हैं। और ज्योंही वहॉ पर पहुँचे, वही प्रश्न फिर आ गया। क्या आपने ईश्वर को देखा है? रामकृष्ण परमहंस ने क्या उत्तर दिया था?

आप सबको उत्तर मालूम है। पर क्या आपने स्वयं ऐसी परिकल्पना की है कि आप स्वय नरेन्द्र बन गये हैं और रामकृष्ण के सामने जाकर प्रश्न उठा रहे है। आपने पढ लिया पुस्तक के अन्दर, परन्तु प्रश्न स्वय आपके अन्दर प्रविष्ट नही हुआ और आपने साक्षात् रामकृष्ण का आवाहन करके इस प्रश्न को किया नहीं, उस उत्तर को पाया नहीं। उस उत्तर को अनुभव नही किया। नरेन्द्र ने पूछा—क्या आपने ईश्वर को देखा है? या सिर्फ पुस्तकों को पढा है? उन्होने कहा—'हॉ, ईश्वर को देखा है। तुमको

भी ईश्वर दिखा सकता हूँ।' क्या कभी ऐसे प्रश्न किया जाता है? जैसा हम पुस्तको के अन्दर पढते है। जब नरेन्द्र ने प्रश्न किया, पूरा-का-पूरा उसका हृदय बाहर आ गया। उसका पूरा-का-पूरा जीवन सिमटकर एक प्रश्न बन गया था। वह मात्र कोई साधारण जिज्ञासा नहीं थी—क्या आपने ईश्वर को देखा है? वही ईश्वर, जो सृष्टि के मूल में है। जो कण-कण के अन्दर समाया हुआ है। जो हमारे सौर-मण्डल के परे, आकाशगगा के अन्दर, Galaxy के अन्दर जो नाच रहा है, सृष्टि के मूल मे जो एक महान् मौन है, एक महान् प्रशान्ति है, एक महान् आनन्द है, वह महामौन एक छोटे-से कंठ के अन्दर से निकला था। सृष्टि के मूल में जो आनन्द है, प्रकाश है, जो जगमगा रहा है तारों के अन्दर, सूर्य के अन्दर, वह उनकी ऑखो के अन्दर उतरकर आ गया था।

शत-शत वसन्त उनके चेहरे पर खिल उठे थे और सहस्रों गुलाब उनके चेहरे पर महकने लगे थे। उत्तर दिया—हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'। वह ब्रह्म स्वय मानो सिमट करके नन्हे-से कलेवर के अन्दर आ गया और बोलने लगा—'हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है।' 'कब देखा है? क्या जाग्रत् में देखा है या स्वप्न मे देखा है या सुषुप्ति मे देखा है? जगते हुए देखा है या स्वप्न में देखा है या सुषुप्ति मे देखा है? तीनों अवस्थाओ में देखा है? तीनो से अतीत होकर देखा है?' *'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'—ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता* है। ऐसा उसको उत्तर दिया गया। तुरन्त उसका जीवन बदल गया। श्रद्धा ऊर्ध्वमुखी हुई। किन्तु जब तक श्रद्धा पूर्ण अनुभूति के अन्दर परिवर्तित नही हो जाती तब तक जिज्ञासा रहती है। वह पूछता रहा, पूछता रहा। जीवन मे और परिवर्तन आना ही था। उसकी तीव्र, प्रखर बुद्धि को स्वीकार्य नही था कि वह अनन्त, अखण्ड, अविभाज्य, अव्यक्त एक कलेवर के अन्दर प्रकट हो सकता है। वह मूर्तिमन्त हो सकता है—यह विश्वास था नही। इसलिये परिवर्तन जीवन मे फिर परिवर्तन। .. वह इतना मेधावी छात्र, प्रज्ञा से युक्त छात्र, स्वयं उसका जीवन उसे *सिखाना चाहता था। पिता का देहान्त हो गया और उसने नजदीक से* देखा—मृत्यु किसको कहते है? मृत्यु के बारे मे जिज्ञासा—मृत्यु किसको कहते है? और वह भटकता रहा। भूख किसको कहते है?

दरिद्रता किसको कहते हैं? सम्बन्ध किसको कहते है? मैत्री किसको कहते हैं? वह खोज रहा था।

वह छटपटाता रहा। उसकी क्षुधा को शान्त करने वाले शब्द नहीं मिले। भूख का अनुभव किया। गुरु के पास गया—'मेरे घर से दरिद्रता दूर कर दीजिये।' तो गुरु ने कह दिया—जाकर मॉग लो मॉ से, मन्दिर के अन्दर। वह मानता नहीं था कि वह अखण्ड, वह अपरिच्छिन्न मूर्तिमन्त हो सकता है, मूर्ति के अन्दर प्रकट हो सकता है। कहकर गुरु ने भेज दिया वहाँ पर। मॉ के मन्दिर मे। यह Turning Point था उसके जीवन का। एक वार गया, दुबारा गया, तिबारा गया। क्या मॉगा? हम क्या माँगते हैं? उसने क्या मॉगा? मुझे ज्ञान दो, मुझे वैराग्य दो, मुझे भक्ति दो। तीन वार वापस भेज दिया। थककर रामकृष्ण परमहस ने कहा—अरे! तुमने अपनी रोजी-रोटी के लिये कुछ माँगा नहीं उससे? उस साक्षात् आनन्दमयी के सामने जाकर वह क्या माँगे? मुझे ज्ञान दो, वैराग्य दो, भक्ति दो। एक परिवर्तन आया उसके जीवन में और फिर चल दिये गुरु। क्या गुरु कभी मरते हैं? पर चल दिये गुरु। अपनी लीला को समाप्त करके चल दिये। और वह युवक, वह प्रदीप्त युवक, अभी भी उसके अन्दर कुछ छटपटाहट थी। वह छटपटाहट वढ रही थी और वह निकल पडे सन् 1888 में। पूरे भारत के अन्दर भ्रमण करते रहे। पूरे भारत के साथ एकाकार हो रहे थे। भारत के अतीत के साथ वे एकाकार हो रहे थे। भारत के वर्तमान का अनुभव कर रहे थे—भारत की अभीप्सा क्या है? उसका दुःख क्या है? उसके अन्दर टूटन क्या है? उसके अन्दर विखराव क्या है? वैशिष्ट्य क्या है? उसकी विलक्षणता क्या है? चप्पे-चप्पे के साथ साक्षात्कार करते हुए राजा से रंक तक, श्रीमन्तों से लेकर भिखमंगों तक, मन्दिरो से लेकर श्मशानो तक, सर्वत्र विचरण करते हुए तीर्थो तक जा रहे थे। वे एकाकी, निःस्पृह, अकिंचन घूमते-घूमते जा रहे थे। सन्तो-विरक्तो से मिलते हुए जा रहे थे। एक ऐसा भी प्रसग आया जब अपने गुरु के ऊपर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया। जो निरन्तर प्रश्नचिह्न लगाता है, जो हर अनुभूति के ऊपर प्रश्नचिह्न लगाता जाता है, उसको विवेकानन्द कहते हैं। पर अभी वह नरेन्द्र था। अनाम होकर विचरण करने वाला परिव्राजक। फिर सम्पर्क हुआ था राजाओ से। जब

वे खेतडी राजा के यहाँ गये थे, प्रसग उठ रहा था विदेश जाने का। उन प्रसंगो के साथ जुडा हुआ यह एक महत्त्वपूर्ण Turning Point जीवन मे आया। जब वे खेतडी राजा के यहाँ पर पहुँचे थे और उनके स्वागत के लिये भजन-सध्या कहूँ या नृत्य-सध्या कहूँ या गीत-संध्या कहूँ— उसका आयोजन था और उसमे अभी कोई जागरूक था तो एक सन्यासी जागरूक था। एक निवृत्तमान, एक साधक उनके अन्दर जागरूक था और जब आमन्त्रण मिला इस नृत्य और गाने के लिये—'आप भी पधारिये'—क्या उत्तर दिया था? 'मुझे इस नृत्य-गान से क्या मतलब? मै सन्यासी हूँ। क्यो उनसे सवाद करूँ? और वह भी ऐसी पतिताओ से?' और तब यह पता लगा भारत की उस मातृमूर्ति को। उस नारी को पता लगा, जो समाज के द्वारा प्रताडित थी, जो समाज के द्वारा दूरीकृत थी, तिरस्कृत थी। पर उसके अन्दर एक भारतीय नारी जीवित थी। उसके अन्दर कोई मीरा जीवित थी। जब उसको यह पता लगा कि वह संन्यासी है और उसने मना कर दिया, तब उसके अन्दर से मीरा फूटकर निकली थी, मीरा गाने लगी थी।

**प्रभु मेरे अवगुण चित्त न धरो।**

उस नर्तकी ने तो सोचा था कि कोई सुरसरि आयी है, कोई गगा आयी है। मैं तो नाली हूँ। समाज ने मुझे नाली बना दिया, मैं इस गंगा के साथ मिलूँगी तो मैं पवित्र हो जाऊँगी और उसने वह भजन गाया। हृदय की गहराई से वह भजन गाया। अब इधर नरेन अपने कमरे मे टहल रहे थे। मना तो कर दिया था पर अन्दर से कोई आवाज आ रही थी—ठीक नही किया। इसलिये टहल रहे थे। एक घायल शेर की तरह टहल रहे थे। अन्दर निरन्तर एक विवेचन, एक विश्लेषण चल रहा था और जब भजन के बोल उनके कानो में पहुँचे—जब वह गन्दी नाली सुरसुरि के अन्दर मिल जाती है तब वह गगा ही बन जाती है—

**इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भर्यो।**
**जब दोनों मिल एक बरन भये, सुरसरि नाम पर्यो।।**

ज्योही यह सुना, दौडकर वहीं पहुँच गये। वह नारी धन्य हुई, वह पवित्र हुई और नरेन्द्र था—वह विवेकानन्द बन गया। वह विवेक करता है—धर्म क्या है? सत्य क्या है, असत्य क्या है? क्या इस नारी मे

जगदम्बा नहीं है? सम्भवतः, वे जो राजा बैठे थे, वे भी देख रहे थे, कैसे मना किया गया था, क्यों मना किया गया था—भॉप रहे थे, समझ रहे थे कि क्यो वे लौटकर आ गये थे? किस विवेक से प्रेरित हो कर लौट आए थे? और नाम रख दिया—यह विवेक है, यह विवेकानन्द है। तब से उनका नाम पडा—विवेकानन्द। राजस्थान ने उनको यह नाम दिया—'विवेकानन्द'। यह घटना एक Turning point थी। नहीं तो नारी से बचते रहते। मै सन्यासी हूँ, मै नारी से बचता रहूँ। क्यो मै स्त्रियो के पास जाऊँ? अगर यह परिवर्तन उनमे नहीं आया होता तो वे सर्वत्र जगदम्बा का दर्शन नही कर पाते।

**विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः।**
**स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।।**

—श्रीदुर्गासप्तशती 11 6

'जगत् मे जितनी स्त्रियाँ हैं वे सब जगदम्बा की ही मूर्तियाँ हैं।' एक परिवर्तन, एक परिपाक उनके जीवन में आया। कामिनी के अन्दर भी वह ईश्वर है। चींटी मे भी ईश्वर है। कनक मे भी ईश्वर है। सर्वत्र ईश्वर है। एक परिवर्तन उनके जीवन में आया। भारत में भ्रमण करते हुए वे चिन्तन करते रहे—यह शिव को पूजने वाला देश, जगदम्बा को पूजने वाला, कृष्ण को पूजने वाला, महापुरुषों को पूजने वाला, यह वीरों का देश, यह महापुरुषो का देश, यह शाश्वत-सनातन देश, इसकी इतनी समृद्ध संस्कृति टूट-टूट करके बिखर कैसे गयी? यह अद्वैत को मानने वाली, ऐसे महापुरुषो की संस्कृति, इसमे इतनी छुआछूत कैसे पनपी? इतने मत-मतान्तरो में यह बिखर कैसे गई? यह अपराजिता पराजित होकर परतन्त्रता की बेडियों मे कैसे बँध गई? यह पीडा उनमें गहरे-गहरे धँसती गयी। गहरे-गहरे धँसती हुई, फैलती हुई, और उनके हृदय मे भी एक पीडा का समुद्र उमडने लगा। उमडने-घुमडने लगा। उनके अन्दर एक सागरीय व्यक्तित्व प्रकट होने लगा। दिखने को दिख रहा था—एक युवा जा रहा है। एक निस्पृह युवा। पर अन्दर-ही-अन्दर एक सागर जन्म ले चुका था। एक सागरीय व्यक्तित्व लेकर वे वहाँ पहुँच गये जहाँ तीन सागर मिलते है। आप-हम भी पहुँच जायेंगे। पर कभी भी हिम्मत नहीं होगी कि सागर के अन्दर छलॉग लगा दें। उस युवक के अन्दर एक सागर उमड-

घुमड रहा था, एक व्यथा का सागर—यह क्यो हुआ? कैसे हुआ? यह महान् देश गुलाम कैसे बन गया? यह कैसे स्वतन्त्र हो? एक सागर उनके अन्दर उमड रहा था और एक सागर उनके सामने भी उमड रहा था। कहते है, उस दिन सागर ने घोर गर्जना शुरू कर दी। हम तो जब अकेले होते है, सागर के गरजने से डर जाते है। लोग पूछते हैं—सागर क्यो उमडता है? क्यो घुमडता है? कहते है कि हवाओं के कारण शायद उमड-घुमड रहा है। कहते है—शायद पृथ्वी घूम रही है इसलिये सागर उमड-घुमड रहा है। हमने कभी सागर से पूछा नहीं—सागर तुम क्यो लहरा रहे हो? सागर से पूछो, तो सागर भी उत्तर देगा। अन्दर भी सागर, बाहर भी सागर, एक साथ तीन-तीन सागर—एक इच्छा का, एक क्रिया का, एक ज्ञान का सागर—Emotion, Cognition Volition—इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति का सागर। उसने सागर मे छलॉग लगा दी। वहाँ पर भी कोई खडी थी। इस पर आप मनन करें। वह एक पैर पर खडी है या दो पैर पर खडी है? और क्यों खडी है? वह खड़ी थी कोई कुमारी। उस पर थोडा विमर्श और अधिक करेंगे। सारे भारत की चेतना, सारी सृष्टि की चेतना वहॉ पर पुंजीभूत होकर, एक चिरकौमार्य को लेकर खडी थी। वरण करना है तो एकमात्र शिव का वरण करना है—इस व्रत को लेकर खडी थी। अब पता नहीं कैसे, उसके साथ एक कहानी भी जुडी है। उस पौराणिक कहानी को भी सुन लीजिये।

बाणासुर नामक एक राक्षस था। 'कुमारी द्वारा ही तुम्हारा वध होगा'—ऐसा उस राक्षस को वरदान था। और इधर वह प्रतिज्ञा में बँधी थी कि मुझे तो शिवजी से ही विवाह करना है। शिवजी आ गये। शिव को भी विवाह की लालसा होती है। वह अखड, अद्वय, उसको भी विवाह की लालसा। इसलिये वह आ रहे थे और ऋषि लोग नही चाहते थे कि विवाह हो, कुमारी भी सम्भवतः नही चाहती थी कि यह विवाह हो, क्योंकि उसको भी पता था कि मुझे बाणासुर को मारना है। और कहते है, उसने प्रेरणा दी इसलिए नारद मुर्गा बनकर बोले। शिव समझे कि भोर हो गयी है और वही पर रुक गये। उस विवाह को सम्पन्न कराने के लिये जो ऋषि-मुनि आये थे, वे हाथ मे हल्दी, कुकुम, अक्षत लेकर आये थे, उनका विसर्जन उन्होने भूमि पर ही कर दिया और कुमारी वही तपस्या में लीन

रही। और यह तो बहुत पुरानी बात है। कभी तो पसीजना चाहिये था शिव को! वे भोलेनाथ है, आशुतोष है। पार्वती का विवाह तो हुआ था। फिर भी वह देवी आज भी कुमारी-रूप से खडी है—यह बताने के लिये कि यदि त्रिताप को नष्ट करना है तो चिरकौमार्य का वरण करना पडेगा। हमारी प्रज्ञा को चिरकुमारी बना रहना पड़ेगा तभी वह त्रितापरूपी असुर (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक—यह त्रिताप) का नाश करेगी। यही तो बाण है, यही तो दुःख है, यही तो शूल है, यही त्रिशूल। हमारी प्रज्ञा में इसको मारने के लिये एक चिरकौमार्य का व्रत लिया जाय। ऐसा व्रत लेकर श्रीपादशिला के ऊपर वह जगदम्बा भगवती खडी है और वहाँ पर नरेन्द्र पहुँच गया। उस आतुरता को, उस दुःख को लेकर पहुँच गया।

हमने पुस्तको मे पढा है कि रामकृष्ण परमहंस से नरेन ने बहुत *आग्रह किया था*—'*मुझे निर्विकल्प समाधि का अनुभव कराएँ।*' और जब अनुभव कराने लगे तो वह चिल्लाने लगे—मेरे घर में पिता है, भाई-बहन हैं। उनके पाद-स्पर्श के द्वारा उनकी चेतना का उत्थान हुआ था। ज्योही चेतना अखंड की तरफ उन्मुख हुई तो वे चिल्लाने लगे। तब रामकृष्ण परमहंस ने कहा—'इसका आस्वादन करवा दिया। अब मै इसे ताला-बन्द करके चाबी अपने पास रखूँगा।' उसका आस्वादन तो कर ही लिया था, इसलिये वे पहुँचे आनन्द की पिपासा को लेकर और उस दुःख की अनुभूति को लेकर। एक मृत्यु की अनुभूति को लेकर पहुँचे। जो सागर को प्यार करता है, वह प्रच्छन्न रूप से मृत्यु को प्यार करता है। और वहाँ पहुँच गये। जब हम भी वहाँ पहुँचते है तो बैठकर चित्त को समाहित करने का प्रयास करते हैं। पर उस समय उन्होने क्षण-क्षण की प्याली के अन्दर शताब्दियों को, युगो को घूँट-घूँट करके पिया था। काल सिमटकर उनके अन्दर आ गया था। तीन दिन तक बैठे हुए उन्होने शताब्दियों को, युगों को पिया था और उनका साक्षात्कार किया था। यह अद्वैत की निर्विकल्प अवस्था नहीं थी। एक विराट् का साक्षात्कार था। एक विश्वरूप-दर्शन जैसा, जैसे अर्जुन ने अनुभव किया था। हरेक का विश्वरूप-दर्शन अलग-अलग होता है। ऐसा दर्शन उन्होंने किया था। ऐसा साक्षात्कार किया था श्रीपादशिला के ऊपर बैठ करके और उनके हृदय मे सारी-की-सारी प्रेरणाएँ जग उठीं थी, जिनको लेकर उन्होंने विचरण किया था पूरे

भारत मे, पूरे विश्व में, विश्वचेतना के साथ में एकाकार होकर। यह एक और Turning Point उनके जीवन मे आया।

आगे वाले Turning Point को मै विस्तार से नहीं कहूँगा। वे समुद्र को लाँघ कर शिकागो पहुँच गये थे और वहाँ पर उस धर्मसभा में उन्होंने कुछ उद्‌गार प्रकट किये थे। उस समय वे कैसे बोले थे—Sisters and brothers of America! कौन बोला था उनके अन्दर से? व्यक्ति कभी व्यक्ति नहीं होता। व्यक्ति में अव्यक्त व्यक्त होता रहता है। व्यक्ताव्यक्त होकर महापुरुषों का जीवन चलता है। विवेकानन्द के अन्दर से रामकृष्ण परमहंस बोले थे या सारे ऋषि बोले थे या भारतीय संस्कृति उनके अन्दर से बोली थी। या हमारी श्रुति, हमारे उपनिषद् उनके अन्दर से बोले थे। अथवा श्रीकृष्ण उनके अन्दर से बोले थे—जब उन्होंने कहा 'Sisters and brothers of America' यह वैखरी वाणी नहीं थी। उनके अन्दर साक्षात् भारतीय संस्कृति की चेतना उमड करके बोल उठी थी। इसलिये करतल-ध्वनि से न जाने कितनी देर तक पूरा-का-पूरा सभागार गूँजता रहा था। कोई अपने स्थान पर बैठा नहीं रह सका। सभी लोग अपने स्थान से उठ कर खडे हो गये थे, आदर से अभिभूत होकर कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए।

देश-विदेश में वेदान्त का शंखनाद करते हुए आखिर वे 'क्षीर-भवानी' पहुँचे। और लोगो ने जब बताया—'यहाँ भव्य मन्दिर था, आततायियो ने उसको तोड़ दिया'। तो उन्होने क्या कहा था? 'यदि मैं होता तो इस मन्दिर को तोडने नहीं देता।' तभी एक आवाज आयी—'तू मेरी रक्षा करता है या मैं तुम्हारी रक्षा करती हूँ?' भगवती ने कहा—'तू मेरी रक्षा करता है?' पर यह विवेकानन्द कौन था? जो सारे विश्व में घूम करके, सारे भारत में घूम करके आ गया था और अब जिसकी क्रीडा का सिमटना प्रारम्भ हो गया था। उस अवसर पर एक Turning Point आया जब आकर भगवती ने कहा—'तू मेरी रक्षा करता है या मै तेरी रक्षा करती हूँ?' उसके बाद से सिमटना प्रारम्भ हो गया। अपने कार्य को सौंपकर वे चले गये—आप सब लोगों को, हम सब लोगों को। और इसलिये उस प्रेरणा को लिये हुए हम बैठे हुए हैं। हम जितना-जितना इन महापुरुषो का चिन्तन करेंगे, उतना-उतना धर्म का तत्त्व हमको प्राप्त होता जायगा।

क्योंकि धर्म का जो तत्त्व है वह गुहा में सन्निविष्ट है, छिपा हुआ है, आच्छादित है।

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्' धर्म-तत्त्व हमारी चेतना की गहराई मे छिपा हुआ है। हमारे स्वयं के द्वारा आच्छादित, हमारी कामनाओ के द्वारा, अभिलाषाओं के द्वारा वह आच्छादित है और वहीं पर ब्रह्म भी छिपा हुआ है—'यो वेद निहित गुहायां परमे व्योमन्'—तैत्तिरीय उपनिषद् 2.1।

वह अन्दर छिपा हुआ है। वह ब्रह्म भी छुपा हुआ है। वह धर्म-तत्त्व भी वहीं छुपा हुआ है। इसलिये कहा—'महाजनो येन गतः स पन्थाः'। जितना-जितना हम इन महापुरुषो का चिन्तन करेगे, मनन करेगे, विमर्श करेगे, जितना-जितना हम उनका परिशीलन करेंगे, अनुगमन करेंगे, उतना-उतना हम उन्नत होंगे। महापुरुष हैं, वे उडते है। उनका पथ है, वह विहग पथ है। वह परमहंसों का पथ है, वह हंसों का पथ है। हंस नीर-क्षीर विवेक करता है। वह तो गगन में उडता है। जब तक हम हंस नहीं बनेंगे तब तक हम विवेक नही कर पायेंगे और तब तक इन महापुरुषों के पथ का अनुसरण नही कर पायेंगे।

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गतः स पंथाः।।

महाजन! हमारे सामने एक महा-महाजन है—स्वामी विवेकानन्द। पर विवेकानन्द को सही ढग से नहीं पकडा तो वह भी जड हो जायेगा। ब्रह्म को भी सही ढंग से नहीं पकडा तो वह भी जड हो जायेगा। ब्रह्म है, जो नित-नित नूतन रूपो में स्पन्दित होता है। एक नव-नव ऊर्जा को लेकर, एक नव-नव स्फूर्ति को लेकर जो स्पन्दित होता रहता है उसको धर्म कहते हैं। तो मैं कहता हूँ विवेकानन्दजी को समझना, उनका अनुसरण करना, उनकी पीड़ा का, उनके आनन्द का अनुभव करना, उनके विवेक को बुद्धि में लाना। यदि ऐसा करेंगे तो धर्म-तत्त्व हमारे अन्दर खिलता चला जायगा।

इसलिये आप सब लोगो के सामने सनातन धर्म क्या है—इसको अधिक बताने की आवश्यकता तो नहीं है। मैंने इस विषय को स्वीकार कर लिया है अतः इस विषय पर कुछ बोलूँगा। आप सब लोगों के साथ-साथ धर्म-तत्त्व का विमर्शन करने का प्रयास करूँगा। आरम्भ में एक साधर्म्य

बताने के लिये, एक साधर्म्य को प्रकटित करने के लिये मैने स्वामी विवेकानन्दजी के बारे मे कुछ कहा। विवेकानन्दजी के बारे में मैंने बहुत पढा है, बहुत सोचा है। उनको जिया है और जीने का प्रयास कर रहा हूँ।

हम वैदिक सनातन धर्म की बात करते हैं पर प्रत्येक शब्द का एक जीवन्त व्यक्तित्व होता है। पता नही, शब्द कब से प्रारम्भ हुआ। सम्भवतः सृष्टि के मूल में विद्यमान एक महामौन ने भी एक प्रथम शब्द किया था। 'In The Begining was the word The word was with the God The word was God'—परिचित है आप लोग। एक महान् नाद प्रकट हुआ, जिसको अनाहत नाद कहते है और जिसको संत लोग कहते हैं अनहद नाद। दोनों अर्थ में लीजिये। आहत कहते हैं आघात करने को। बिना आघात के एक नाद—अनाहत नाद। जो आहत हो नहीं सकता, जो निरन्तर है, जिसमे एक सातत्य है, सनातनत्व है, जो शाश्वत नाद है, एक अनाहत नाद, ओकार नाद। 'सत्‌श्री अकाल एक ओकार।' ओकार नाद, आप लोग जिसका उच्चारण करते हैं, उसका अनुभव करें। सृष्टि के मूल मे वह नाद है इसलिये हम वैदिक सनातन धर्म की बात करते है तो कहते है कि यह ओकारमूलक है, यह वेदमूलक है।

### 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'

अखिल धर्म का जो मूल है, वह वेद है। समस्त धर्म का जो मूल है, वह अखिल वेद है। इसलिये थोडा-सा चिन्तन हम वेद पर करेगे। यह वेद क्या है? सृष्टि के मूल में एक देव-तत्त्व है। देव को ही, थोडा-सा बदल दे, तो वह वेद हो जाता है। अक्षरों का कुछ व्युत्क्रम करे तो देव वेद हो जाता है। सस्कृत में एक शैली है। किसी बात को कहने की शैली है, किसी बात को छिपाने की शैली। क्योकि कला का अर्थ है—किसी तत्त्व को थोडा-सा छिपा दो, कुछ प्रकट करने के लिये कुछ छिपा दो, क्योंकि कोई एक ऐसा तत्त्व है जिसे आप प्रकट नहीं कर सकते। प्रकट करते ही उसकी गरिमा, उसकी महिमा, उसका सौष्ठव समाप्त हो जाता है, क्योकि वह पूरा-का-पूरा Objective नहीं है—इसलिये। सारी सृष्टि क्या है? एक कलामय अभिव्यक्ति है। वह अखण्ड शिव है। वह अद्वैत शिव है। उसकी जटाओ के अन्दर एक द्वैत का चन्द्रमा सुशोभित है। सारी सृष्टि द्वैतमयी है। नाम-रूपात्मक सृष्टि उस अखण्ड की जटाओ मे सुशोभित द्वितीया का चाँद है।

दूज का चाँद है। यह देव, यह महादेव लीलामय-कलामय होकर वेद हो गया। देव शब्द में से, इसकी मात्रा को हटा लिया तो क्या हो जायेगा ? 'दव' हो जायेगा। संस्कृत में 'दव' किसको कहते हैं? दव वन को कहते है और वन ब्रह्म को कहते हैं। दव वन को कहते हैं—जहाँ बिल्कुल एकान्त शान्त है, निर्जन है। उस निर्जन का एक सगीत गूँजता है। 'देव' में मात्रा को हटाया और अक्षरों को बदल दिया तो क्या हो जायगा ? 'वद' हो जायगा। 'वद' का अर्थ होता है 'बोलना'। बिना बोले बोलना। मौन का बोलना, मौन का मुखरित होना। और इसके ऊपर मात्रा को वापस लगा दें तो क्या हो जायगा ? 'वेद' हो जायगा—जानना, जाना हुआ जानना—वेद। जैसे 'हिंस' शब्द है।' हिस माने मारना। इसके अक्षरो को पलट दिया तो क्या हो जायेगा, मात्रा को हटाया, अक्षरों को पलटा तो फिर क्या हो जायेगा ? फिर मात्रा को लगाया तो 'सिंह' हो जायगा। हिंस का सिंह हो गया। उसी प्रकार पश्यक—देखने वाला। वह हो गया कश्यप। कश्यप ऋषि, उनका कश्मीर; जहाँ पर चारों तरफ केसर की गंध फैलती है। आज जहाँ बारूद की गंध है, मृत्यु की गंध है वह पश्यक कश्यप हो गया। इस प्रकार से वेद शब्द को समझें, यह ब्रह्म का विवर्त है। वह अखण्ड, अद्वय ब्रह्म विवर्तित होना चाहता है। जैसे मन्द अन्धकार मे कोई रस्सी पडी हुई हो और आपको दिखाई दिया—यह तो साँप है। या समुद्र के किनारे कोई सीपी पडी हुई हो और आपको लगे—अरे, यह तो चाँदी है। तो सीपी है वह चाँदी जैसी दिखाई देती है। इसी प्रकार सारा-का-सारा ब्रह्म है वह अपने-आप को विवर्तित करता है, अपनी सत्ता को सुरक्षित रखते हुए वह चेतना को विवर्तित करता है। वेद उस ब्रह्म का विवर्त है। वह सीपी है, वह चाँदी जैसी दिखाई देती है। उसी प्रकार से सारा-का-सारा ब्रह्म है—वह अपने-आप को विवर्तित करता है। अपनी सत्ता को सुरक्षित रखते हुए उस चेतना को वह विवर्तित करता है। वेद ब्रह्म का ही विवर्त है। एक अखण्ड, अद्वय, एक सीमा को स्वीकार करता है। देश-काल-वस्तु परिच्छेद को स्वीकार करता है।

यहाँ आने के पूर्व पद्मनाभम् मन्दिर में दर्शन के लिये गये थे। मन्दिरों मे प्रायः एक ही द्वार से दर्शन कर लेते है। इस मन्दिर में तीन द्वार हैं। एक द्वार के अन्दर उनका मुखमण्डल और हाथ और फिर मध्य के अन्दर नाभि-कमल, उसके अन्दर से एक कमल निकला हुआ। नाभि भी

कमल। जैसे चरण-कमल। ऐसा नही समझना कि चरणो में कोई कमल उगा हुआ है। चरण ही कमल जैसे। जैसे कर-कमल—हाथ ही कमल सदृश हैं। नेत्र-कमल। ऐसा नही समझना, नेत्र में कोई कमल उगा हुआ है। उसी प्रकार नाभि-कमल का अर्थ है—नाभि ही कमल है। यह नाभि, यह नभ, सबको आकृष्ट करके रखता है। यह नभ, यह नाभि और उसमे निकला हुआ एक नाल, एक कमल, उसके अन्दर एक ब्रह्मा। जैसे आप सो जाते हैं, हम सो जाते है, कीट-पतंग सो जाते है, पेड-पौधे सो जाते है, सारी सृष्टि सो जाती है, देव, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर सब सो जाते हैं महाप्रलय होने पर और पुनः सृष्टि होती है। पुनः प्रलय होता है, फिर सृष्टि होती है। जैसे हम प्रतिदिन सोते है वैसे ब्रह्मा भी सो जाते हैं। और जैसे हम यहाँ से एक दिन विदा ले लेते हैं उसी प्रकार ब्रह्मा भी एक दिन महाप्रलय मे लीन हो जाते है। और फिर महाप्रलय के पश्चात् फिर सृष्ट्योन्मुखता आती है। और विष्णु के नाभि-कमल के अन्दर से ब्रह्माजी प्रकट हो जाते है और उनको वेद दिया जाता है। वह सृष्ट्योन्मुखी ब्रह्म ब्रह्मा को प्रकट करता है और उसे वेद-ज्ञान देता है— 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं' अनन्ता वै वेदाः'। वेद को हमने क्या बना दिया? एक पुस्तक बना दिया, एक शब्द-राशि बना दिया। अनन्ता वै वेदाः—वेद तो अनन्त हैं। वेद अर्थात् ज्ञान। एक बीज में भी ज्ञान है। एक नीम का बीज, एक आम का बीज, एक कैर का बीज—सबके अन्दर एक ज्ञान भरा है। एक मेटल का कण ले लो, उसमें भी ज्ञान भरा है। एक मिट्टी का कण ले लो, उसमें भी ज्ञान भरा है। उसको तोडो—तोडा तो Electron, Proton, Neutron, particles, subparticles, अब तो गुणसूत्र तक पहुँच गये है। एक जीव-कोशिका का खंडन करो, आप देखेंगे कि वहाँ पर भी एक ज्ञान छिपा हुआ है। सारी सृष्टि ज्ञानमय है। इस सारे-के-सारे ज्ञान को वेद कहते है। 'अनन्ता वै वेदाः'—वेद अनन्त है और वह नाभि के अन्दर से प्रकट हुआ। हम भी नाभि से जुडे-जुडे कुछ पाते हैं। मातृकुक्षि में नाभि से ही जुडे रहते हैं। नाभि के द्वारा पोषण को प्राप्त करते हैं। यह नाभि बडी महत्त्वपूर्ण है।

एक परा वाणी होती है, एक पश्यन्ती वाणी, एक मध्यमा वाणी और एक वैखरी वाणी होती है। आप सब लोग इनसे परिचित है।

शुक्लां ब्रह्म-विचार-सार-परमामाद्यां जगत् व्यापिनीं
वीणा-पुस्तक-धारिणीं अभयदां जाड्यांधकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिक-मालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्।।

वह भगवती सरस्वती हाथ में वीणा लिये हुए है। हाथ में स्फटिक माला को लिये हुए है। हाथ मे पुस्तक को लिये हुए है। श्वेत परिधान है, श्वेत कमल है और हंस है। पूछा किसी ने—यह क्या है? क्या किसी ने कल्पना कर ली? कल्पना करके कुछ आकृतियों को बना दिया या वास्तविकता है कुछ इसमे? यह वीणा ही परा वाणी है और यह माला ही मध्यमा वाणी है और यह पुस्तक ही वैखरी वाणी है। जब आप लोग ओम्कार बोलते हैं तब आपको लगता होगा—कितनी गहराई से बोला! आपको समझाते होंगे। कहते हैं कि नाभि से आवाज को उठने दो। उससे भी गहरे मूलाधार से आवाज को उठने दो, उस नाद को उठने दो। 'ओम्'...जितना-जितना गहराई से आप बोलेंगे—यह मूलाधार में परा वाणी, नाभि में आते ही पश्यन्ती वाणी और हृदय में आते ही मध्यमा वाणी और कण्ठ में आते ही वैखरी वाणी। इन चार प्रकार की वाणियों को आपने सुना। इसका प्रतिपादन उस दिव्य रूप के अन्दर परिलक्षित होता है। नाभि के अन्दर से ब्रह्माजी का प्रकटन और इस पश्यन्ती वाणी के स्तर पर वेद का प्रकटन। वह जो महानाद है, वह अपने-आप को मातृकाओं के रूप में प्रकट करता है। वह नाद गुंजरित होता हुआ, अनुरणित होता हुआ अपने-आप को विविध नादों मे, नवनादों में प्रकट करता है।

9 पूर्ण अंक होता है। नौ को गुणा करते जाओ :

9×2=18 = 8+1=9

9×3 = 27 = 2+7=9

कितने से भी गुणा करो, सबका योग नौ होगा। नौ पूर्ण अंक होता है। पूर्ण है, इसलिये नौ कहा। इसलिये यह एक महानाद अनुरणित होता हुआ नवनादो के अन्दर विलसित होता है। अब फिर उसमे से मातृकाएँ निकलती हैं। ये सारे-के-सारे 16 स्वर, ये आपस में मिल करके सभी व्यंजन प्रकट करते हैं। 'अ'-माने अनुत्तर। जिसके बियॉण्ड (Beyond) कुछ नहीं। सा काष्ठा सा परागतिः। 'अ' माने अनुत्तर, 'आ'=आनन्द,

'इ' माने इच्छा, 'ई' माने ईक्षण, 'उ' माने उन्मेष, 'ऊ'=ऊनता। अ आ इ ई उ ऊ—वस, येही आधारभूत स्वर हैं। ये आपस में मिलकर 'ए ऐ ओ' बाकी सारे स्वर बनाते हैं। और बाकी के सारे व्यंजन इन्हीं स्वरो का स्थूलीकरण हैं। अतः ओम्कार को मातृकासू: कहते हैं। जिसके अन्दर से सारी मातृकाएँ निकलीं। ये मातृकाएँ, ये सप्तमातृकाएँ हैं जो इसके अन्दर से निकलीं। यह सारा विश्व, शब्द–अर्थमय विश्व—यह प्रकट हो गया है। प्रत्येक अर्थ के पीछे एक Vibration है। एक पद है। एक पद और एक अर्थ, तो पदार्थ हो गया। अक्षर–अक्षर मिलकर पद बना। अक्षर–अक्षर मिलकर शब्द, शब्द–शब्द मिलकर के पद बना। और पद से पदार्थ बन गया। सारे–के–सारे ये पदार्थ, सारी जो यह सृष्टि है, यह जो एक स्थूल सृष्टि, सूक्ष्म सृष्टि, कारणभूत सृष्टि, यह सारी–की–सारी शब्दमयी सृष्टि है। यह सारा–का–सारा वेद है। इसलिये पश्यन्ती के स्तर पर यह वेद प्रकट होना प्रारम्भ हो जाता है, मध्यमा के स्तर पर सारे–के–सारे मन्त्र हैं।

'मछली, मेढक, सर्प, फिर सारे जानवर, फिर बन्दर, फिर पूँछें घिस गयीं और आदमी हो गया—आप लोग बहुत–कुछ पढ चुके हैं, पर यह बताने की आवश्यकता है। बडे–बडे intellectual, साहित्यकार, तथाकथित मनीषी, जो हमारी अतीत की परम्परा से जुडे हुए नही हैं, और जो सही ढंग से जुडे हुए नहीं है, वह भी कहते हैं—ये हमारे वेद Composition हैं, कुछ Collections है, कुछ लोगो ने रचना कर दी। वेद अपौरुषेय हैं। जितना–जितना हमारे मन के अन्दर बैठेगा—वेद क्या है ? उतना–उतना हमको पता लगेगा—सनातन धर्म क्या है, वह ब्रह्म–तत्त्व क्या है ?

वेद अपौरुषेय है। इसलिये 'वेद पढो चाहे पढो कुरान। इन दोनों मे तेरा नाम'—इसका कोई सामयिक महत्त्व हुआ होगा। पर हम कभी वेद के समकक्ष किसी ग्रंथ को रख नही सकते। यहाँ तक कि हमारे आचार्य भी कह देते है कि गीता भी स्मृति श्रेणी की है, वेद नही है। गीता के 13वे अध्याय में स्वय श्रीकृष्ण कहते है—

ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक्।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः।।

गीता, 13–4।

श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म का अवतरण; वह परब्रह्म स्वय मुखरित होता है, बोलता है तो कितने लिहाज से बोल देता है—

'ऋषिभिर्बहुधा गीतं' जो ज्ञान मैंने कहा है—वह ऋषियों द्वारा गाया गया है, वेद द्वारा बताया गया है। इसलिये वेद परम-प्रमाण हैं। वेद अपौरुपेय हैं। सृष्टि में निरन्तर वेद-मन्त्र गूंज रहे हैं। जिसके अन्तःकरण में निर्मलता है, एकाग्रता है, सूक्ष्मता है, उसके अन्दर वेद-मन्त्र उद्भासित होते हैं, वह भी वेद का एक अत्यन्त अल्प अंश। तो मैं कह रहा था—

महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।
मद्भावा मानसा जाता येषांलोक इमाः प्रजाः।।

गीता, 10-6

मानसिक सृष्टि की ऋषियों की। उनके तपपूतः अन्तःकरण में वेद का अत्यल्प अंश उद्भासित हुआ और कभी उनके अन्तःकरण मे उद्भासित हुआ तो उनको लगा कि कुछ दिया गया है, कुछ प्रकटित किया गया है, मैंने पाया नहीं। अज्ञेयजी कहते हैं—सारा सृजन हाथ पसार करके लेना होता है। कोई भी वैज्ञानिक, कोई साहित्यकार कुछ भी मौलिक प्राप्त करता है तो उसको लगता है—उस उज्ज्वल निर्मल स्फूर्ति के Intutional Moments में किसी विराट् सत्ता ने, विराट् चेतना ने उसके सामने उससे प्रकटित किया है। उसको यह बताया है, यह दिया है। पर क्योंकि वह अनुशासित नही है, ब्रह्मविद्या की परम्परा में वह दीक्षित नही है, इसलिये तुरन्त बाद में कहता है—यह मैंने पता लगाया है। मैंने इसको किया है। तो अहंकार बाद में आ जाता है क्योंकि मूलभूत अविद्या पडी हुई है। हमारे यहाँ ज्ञानसम्पन्न ऋषियों की एक उज्ज्वल परम्परा है जिनको यह पता था—'यह दिया गया है।' इसलिये हमारे यहाँ कोई भी कवि, शिल्पकार, कलाकार, वह कहता था—सब-कुछ यह उसका दिया हुआ है। यहाँ तक कि हमारे सद्गृहस्थ भी, एक बालक का घर मे जन्म होता है तो कहते है कि यह तो भगवान् का दिया हुआ है। इस प्रकार यह अपौरुषेय वेद है जिसके बारे में कहा गया—

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम् एव
यद् ऋग्वेदो यर्जुर्वेदः सामवेदो अथर्वागिरसः।

(बृ उपनिषद्)

एक कल्पना की—मानो एक विराट पुरुष है और वह साँस ले रहा है और छोड़ रहा है, उस प्रकार से वेदों का प्रकटन हुआ। वेद सिमट जाते हैं। ऐसा वहाँ पर नहीं समझ लेना—वहाँ पर कुछ नथुने हैं, वहाँ पर कुछ फेफड़े है। यह तो हमको अनुभूति की गहराई में ले जाने के लिये बताया। जैसा हमारा स्थूल शरीर है और जितना सहज हमारे रोम-रोम में, चप्पे-चप्पे मे, हमारे जर्रे-जर्रे के अन्दर, हमारे रुधिर के कण-कण के अन्दर वह श्वास जाकर घुल जाता है, मिल जाता है, हमारी अस्मिता और चेतना के साथ मे एक हो जाता है, वैसे ही कुछ वेद उसके श्वास-प्रश्वास की तरह प्रकटित हुए। उसके अन्दर लीन हो जाते हैं। ऐसा यह अपौरुषेय है।

हमारे सौरमण्डल का जो केन्द्र है, वह सूर्य है। सूर्य के केन्द्र में यजुर्वेद के मन्त्र हैं। परिधि मे ऋग्वेद के मन्त्र हैं। इसकी रश्मियो में सामवेद के मन्त्र हैं। ऋषियो ने इसको प्रत्यक्ष किया। हमारे सूर्य से निरन्तर वाइबरेशन्स (Vibrations) निकल रहे हैं, गूँज रहे हैं। हमारे पूज्य गुरुदेव ने अहमदाबाद मे प्रवचन करते समय एक अनुभूति का उल्लेख किया था—हम लोग संन्यास लेते हैं तब गायत्री को अन्तिम प्रणाम कर देते हैं। शिखा-सूत्र का परित्याग करते हैं। गायत्री को ओंकार के अन्दर लीन कर देते है। ओकार मे से ही गायत्री निकली। गायत्री से ही सारे-के-सारे मन्त्र निकले। इसलिये इसे वेदमातरम् कहते हैं। यह वेद-माता है। यह आधारभूत है। यह ब्रह्म-गायत्री है। इसमे ब्रह्म-तत्त्व व धर्म-तत्त्व का उल्लेख है। तो हमारे गुरुदेव पधारे कश्यप महर्षि की भूमि में, कश्मीर में। वहाँ एक जगह है, उसका नाम है 'मटन'। मार्तण्ड का अपभ्रंश हो गया 'मटन'। मार्तण्ड, मृतअण्ड, वह मार्तण्ड। मार्तण्ड माने सूर्य। बड़ा विशाल मन्दिर है। भव्य मन्दिर। वहाँ गुरुदेव बैठ गये। उनके साथ भक्त साधक भी बैठ गये। सूर्यास्त हो रहा था। भगवान् भास्कर अपनी रश्मियों को समेट कर अस्ताचल की ओर प्रस्थान कर रहे थे। और गुरुदेव ध्यान में डूब गये। उस समय उनके सामने स्वर्णिम अक्षरों में गायत्री मन्त्र प्रकट हो रहा था, लीन हो रहा था, प्रकट हो रहा था, लीन हो रहा था। ओकार मे से गायत्री मन्त्र प्रकट होता, लीन होता। अपनी यह अनुभूति गुरुदेव ने स्वय हमें बतायी। सूर्य के अन्दर से ये सारे-के-सारे वेदमन्त्र निकल रहे है।

हनुमानजी ने वेद का ज्ञान किससे सीखा था? सूर्य भगवान् से सीखा। पर यह तो सारी माइथोलोजी (Mythology) है! ये सारे गपोडे हैं! हमारे यहाँ कुछ भी गपोडे नहीं हैं—यह मानकर चलो। पर जिन्होंने हमको दास बनाया, उन्होंने हमको मानसिक रूप से भी दास बना दिया। अभी दासता के वे बन्धन टूटे नहीं हैं, उन शृंखलाओं ने तथाकथित विद्वानों, राजनेताओं को जकड कर रखा हुआ है। कुछ भी माइथोलोजी (Mythology) नहीं, फेक्ट्स (Facts) है। सारी सृष्टि कब से प्रारम्भ हुई? कैसे प्रारम्भ हुई? Big Bang क्या होता है? सारे-के-सारे फेक्ट्स (Facts) है। अप टू दी सैकण्ड (Upto the Second) बताया। कब बिगबैंग (Big Bang) हुआ? कैसे प्रारम्भ हुआ? किसने प्रारम्भ किया? क्यों प्रारम्भ किया? इसलिये हनुमानजी थे, उन्होने सूर्य भगवान् से वेद का ज्ञान प्राप्त किया था। सूर्य भगवान् ने उपदेश दिया। उसी प्रकार से याज्ञवल्क्य महर्षि हुए। उन्होंने भी वेद का ज्ञान सूर्य से प्राप्त किया था। उसको शुक्ल यजुर्वेद कहते है। शुक्ल यजुर्वेद अर्थात् उन्होंने भगवान् सूर्य से वेद-ज्ञान प्राप्त किया था। वह बडी सुन्दर घटना है। ऋषियो ने आराधना करके वेदमन्त्रों का साक्षात्कार किया था। याज्ञवल्क्य महर्षि जिस समय पढते थे उस समय एक सत्र का आयोजन हुआ था, जिसमें उनके गुरुदेव गये थे और कुछ ऐसा घटनाक्रम हुआ कि वे सत्र में विलम्ब से पहुँचे। अपरिहार्य कारणो से विलम्ब हो गया। ऋषियो ने उनको दण्डित किया और कहा कि जाकर प्रायश्चित्त करो। गुरुदेव उदास होकर लौटे। तो शिष्यो ने पूछा—गुरुदेव, आज आप उदास क्यों दिखाई दे रहे हैं? 'आप सब लोग अपने-अपने घर जाओ या अन्य किसी गुरुकुल मे चले जाओ। अब मैं आपको विद्या-अध्ययन नहीं करवा पाऊँगा। क्योंकि मै एक तप-साधना प्रारम्भ करूँगा।'—गुरुदेव ने कहा; शिष्यों ने कारण पूछा। कारण बताया—मै विलम्ब से पहुँचा इसलिये ऋषियो ने मुझे इस प्रकार का दण्ड दिया है—यह प्रायश्चित्त करो। इसलिये मै तपश्चर्या करूँगा। विद्यार्थियों ने कहा—आपके बदले मे हम तपश्चर्या कर लेंगे। आप हमको पढाइये। तो उन्होने कहा—आप सभी कोमल आयु के हैं। इतनी कठोर तपश्चर्या नहीं कर सकते। वे बोले—हम सब मिलकर कर लेंगे। इतने मे एक युवा शिष्य ने कहा—इन छोटे बालकों की आवश्यकता नहीं। मै अकेला ही तपश्चर्या कर लूँगा। जब उसने 'अकेला' कहा तब

गुरुदेव को बात थोडी-सी चुभ गयी। कौन व्यक्ति किस समय किस मनःस्थिति मे होता है, कुछ कह नही सकते। उस समय उनकी अवस्था अवसादमयी थी। आगे तपश्चर्या करनी है—ऐसी मनःस्थिति थी। उस समय युवक ने कुछ कह दिया। हालॉकि उसका भाव अहंकार-प्रदर्शन का नहीं था। उसका भाव तो पवित्र था। एक ऐसे समय में प्रकट हो गया तो गुरुदेव ने कहा—जा, तुमको जो-कुछ सिखाया, सबका परित्याग कर। भूल जायेगा तू। और वह भूल गया। कहते हैं, उस समय उन्होंने गुरु-प्रदत्त ज्ञान का त्याग कर दिया। अन्य शिष्यो ने तीतर पक्षी बन कर उसे चुग लिया। वही ज्ञान तैत्तिरीय उपनिषद् कहलाया। तब उस युवा ने निश्चय किया—अब मै किसी मानव-गुरु के पास नहीं जाऊँगा। मै सीधा सूर्य की आराधना करके विद्या को प्राप्त करूँगा। उसने सूर्य की आराधना करके उस ज्ञान को प्राप्त किया। उसे ही तो शुक्ल-यजुर्वेद कहते हैं। यह हमारी एक आस्था है। हम सूर्य को जड नहीं मानते। हम किसी को जड़ नही मानते। सारी सृष्टि मे वह चैतन्य झिलमिला रहा है। वह परमेश्वर सृष्टि के कण-कण के अन्दर है तो यह जड वाली बात कहाॅ से आ गयी। इसलिये हम सारी सृष्टि को चिन्मय सृष्टि मानते हैं और उसके पश्चात् कहते है यह चिद्-जडात्मक है। जिसको हम जड कहते है उसके जर्रे-जर्रे मे वह चैतन्य झिलमिला रहा है। एक अपराप्रकृति और एक पराप्रकृति। गीता के सातवे अध्याय में बताया—एक पराप्रकृति, एक अपराप्रकृति। अपराप्रकृति के जर्रे-जर्रे में वह पराप्रकृति है। जैसे सोने के हर गहने के अन्दर वह स्वर्ण बैठा हुआ है। सोने के गहने बने हुए हो और मै आपसे कहूँ—सोना-सोना मै लेता हूँ और गहने-गहने आप ले जाइये। सोना-सोना मै रख लेता हूँ, तो आपके पास क्या रहेगा? ऐसे ही अपरा प्रकृति के अन्दर परा प्रकृति है। वह अपरा प्रकृति नाम-रूपात्मक है। सारी-की-सारी सृष्टि नाम-रूपात्मक है। ऐसी यह चिद्-जडात्मक सृष्टि है। वेद इसको धारण किये हुए है। वेद के अन्दर सिर्फ दो बातो को बताया है—एक धर्म-तत्त्व दूसरा ब्रह्म-तत्त्व। यह भी कालान्तर मे सिमटता गया। ऋषियो द्वारा प्रतिष्ठापित मानवीय संस्कृति ज्ञान का जो प्रवाह बहता-बहता आया वह अल्प होता गया। कितने युगो से कल-कल करता हुआ यह प्रवाह बहता-बहता हुआ आया है। अभी वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है, सातवाॅ मन्वन्तर चल रहा है। 14 मन्वन्तरों मे से

सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है और सातवे मन्वन्तर मे 28वाँ कलियुग चल रहा है। ऐसे अविरल काल का एक प्रवाह चला आ रहा है। तभी से वह ज्ञान-प्रवाह चला आ रहा है। निरन्तर बहता हुआ चला आ रहा है। उस वेद-ज्ञान पर आधारित है—हमारी धर्म की अवधारणा, ब्रह्म की अवधारणा।

हम लोगों ने प्रथम सत्र में इस बात को देखा कि सनातन धर्म का मूल क्या है? इसका आधार क्या है? इसकी प्रतिष्ठा क्या है? हम सनातन धर्म की जब बात करते हैं तब यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह मनुष्यकृत नहीं है। हम इसके प्रत्येक शब्द को लेकर, इसको पहचानने की कोशिश करेंगे। अभी मैंने आपसे कहा था—प्रत्येक शब्द का एक जीवन होता है।

ऐसे ही यह 'धर्म' शब्द है। इसका भी एक जीवन है। आज धर्म शब्द के अर्थ मे कई ऐसे अर्थ जुड गये हैं जो जुडने नही चाहिये थे। उनको जोडने वाले भी हम है। उसको खण्डित रूप से समझाने वाले भी हम हैं। और यहाँ तक कि हम धर्मनिरपेक्षता की भी बात करने लगे हैं। इसलिये आज के परिप्रेक्ष्य में वैश्विक परिप्रेक्ष्य मे बदलते हुए परिप्रेक्ष्य में यह अत्यन्त आवश्यक हो गया है कि हम जानें कि सनातन धर्म क्या है? —इसको समझने का प्रयास करें।

तो इसका एक बिन्दु तो हुआ वेद। और वेद क्या है—इसको थोडा समझने और अनुभव करने का प्रयास किया। वह वेद आपके अन्दर छिपा हुआ पडा है। हमारे अन्दर पाँच कोष हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश। आनन्दमय कोश की प्रतिष्ठा क्या है? ब्रह्मपुच्छम्। ब्रह्म उसकी प्रतिष्ठा है। वेद-तत्त्व मनोमय कोश के अन्दर है। तो इस प्रकार से एक छोर वेद है। और वेद की ही बात को पुराण बताते हैं, स्मृतियाँ बताती है, इतिहास ग्रंथ बताते है। वेद के अर्थ का खुलासा करने के लिये ये पुराण, इतिहास और हमारी स्मृतियाँ है। इस प्रकार से हमने दो बिन्दुओं को समझने का प्रयास किया। एक तरफ वेद है, दूसरी तरफ आत्मतुष्टि है। और बीच मे हमारी स्मृतियाँ, हमारे पुराण और हमारे सत्पुरुष है, वे हमको बताते है कि धर्म का तत्त्व क्या है?

# द्वितीय प्रवचन

प्रातःकालीन सत्र मे हम लोगो ने देखा कि धर्म-तत्त्व का प्रामाणिक प्रतिपादन करने वाला एकमात्र अपौरुषेय अनादि सनातन वेद है। इस बात को ब्रह्मसूत्र मे वेदव्यासजी उठाते हैं—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा', 'जन्माद्यस्य यतः', 'शास्त्रयोनित्वात्'। अर्थात् ब्रह्म के विषय में, धर्म के विषय मे हमारे पास एकमात्र प्रमाण है, वह वेद है। वेद स्वयं कहता है कि वह अपौरुषेय है। वेद की अपौरुषेयता के विषय मे एक अनादि परम्परा प्रमाण है। वेद स्वयं प्रमाण है और उस अविरल परम्परा मे आये हुए कोटि-कोटि महापुरुष है, आचार्य हैं—वे प्रमाण हैं। श्रुति, युक्ति और अनुभूति के द्वारा यह सिद्ध होता है कि वेद अपौरुषेय है। वेद को त्रयी भी कहते है। श्रुति भी कहते है। और इस प्रसंग मे हमने भगवान् नारायण, अनन्तशायी पद्मनाभ पर विमर्श करके यह पाया कि किस प्रकार से पश्यन्ती वाणी के स्तर पर यह वेद-ज्ञान प्रकट होना प्रारम्भ होता है। उस सन्दर्भ मे मैने आपको यह बताया था कि एक इन्सपिरेशन (Inspiration), एक इन्ट्यूशन (Intution) हर सर्जक के हृदय में आता है—वह चाहे पेण्टर है, चाहे कोई साहित्यकार है, चाहे वह अन्वेषक है या एक वैज्ञानिक है। जहाँ-कहीं भी मौलिक सर्जन होता है, उस समय एक विजन (Vision) आता है। एक बहुत ही श्रेष्ठ चित्रकार जब अपनी तूलिका को उठाता है तब उसे ठीक-ठीक मालूम नहीं कि वह किस प्रकार के चित्र को चित्रित करने जा रहा है। उसके अन्दर एक झलक आती है, एक Vision आता है। इसी को पश्यन्ती वाणी का स्तर कहते है। इसको दो उदाहरणो के द्वारा आपको समझाने का प्रयास करूँगा।

प्रथम, एक बीज का उदाहरण है। एक बीज है। उसमें जीवन सोया हुआ पडा है। जब हम उसको धरती के अन्दर बो देते है अथवा जब उसके अन्दर सलिल प्रविष्ट होता है, जल उसमें जाता है तो जल उसको

जगाता है और वह अन्दर से फूलता है। आप स्वयं जल के स्थान पर हो जाएँ या बीज के स्थान पर हो जाएँ तब आपको पता लगेगा कि किस शक्ति को लेकर जल उसमें प्रविष्ट होता है। जल उसमें प्रविष्ट होता है या वह जल को पीता है या दोनों ही सही है। उससे बीज फूलना शुरू होता है। मानो वह बीज स्वयं प्रतीक्षा (कर रहा होता है) या मानो वह जल स्वयं प्रतीक्षा (कर रहा होता है) या इससे अलग कोई शक्ति, जो जल को और उस बीज को मिलाती है और तब वह फूलना शुरू होता है। क्या इस बीज की कल्पना हम समष्टि के स्तर पर कर सकते हैं जब सारी सृष्टि एक बीजावस्था में है और उसमें एक प्राइमोर्डियल वाटर ऑफ क्रियेशन (Primordial water of creation) प्रविष्ट होता है, एक इच्छा प्रविष्ट होती है? 'तपसा चीयते ब्रह्म'—हमारे शास्त्र कहते हैं, तप के द्वारा वह ब्रह्म थोडा फूल गया। यह जो एक फूली हुई अवस्था है उसको हम परा-वाणी का स्तर कहते हैं। अब सृष्ट्योन्मुखता आयी है, अब उसके अन्दर एक कुलबुलाहट हुई है, अन्दर बड़ी तीव्र, एक स्पन्दन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई है। ऐसे ही, महाप्रलय की अवस्था में सब-कुछ लीन अवस्था में होता है। सत्त्वगुण, रज़ोगुण और तमोगुण—एक लय की अवस्था मे होते हैं, एक सन्तुलित अवस्था में होते हैं, कुछ भी प्रकट नहीं होता, फिर भी एक सृष्ट्योन्मुखता प्रारम्भ होती है। एक इच्छा का उद्भव होता है—मैं सृष्टि करूँ। 'एकोऽहम् बहुस्याम्'—एक बहुभवन की इच्छा वहाँ पर आती है। यह परा वाणी का स्तर है और उस परा-वाणी के स्तर मे एक 'अँखुवा' निकलता है बीज के अन्दर। बीज के ऊपर एक स्पष्ट बिन्दु-सा प्रकट होता है। मानो यहीं से फूट करके निकलेगा। मानो वह बीज देखना चाहता है आकाश को, तारों को, सूर्य को, चाँदनी को। हवा से मानो वह मिलना चाहता है। उसके अन्दर एक आँख-सी प्रकट होती है। उसको हिन्दी में आँख ही कहते है। यह पश्यन्ती वाणी का स्तर है। उसके पश्चात् उसके अन्दर और थोडी फूलन होती है, उसके अन्दर और अधिक प्रकटन होता है। उसके अन्दर एक द्विदल यानी दो दल एक अव्यक्तावस्था में प्रकट होता है और थोडा-सा आगे बढ जाता है। यह मध्यमा वाणी का स्तर है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और उसके पश्चात् में द्विदल प्रकट हो जाते है। यह वैखरी वाणी का स्तर है।

उसी प्रकार से दूसरा दृष्टान्त देता हूँ। एक दौड़ने की प्रतियोगिता है। उसमे एक व्यक्ति भाग लेना चाहता है। वह मन मे संकल्प कर लेता है कि मैं दौड़ मे भाग लूँगा। यह दौड़ में भाग लेने की उसके अन्दर जो सकल्प की स्थिति होती है वह परा वाणी की स्थिति हो गयी और उसके पश्चात् उसे कहा जाता है—इस स्थान से लेकर उस स्थान तक, इस लाइन से लेकर उस लाइन तक तुम्हे दौडना है। तब वह अपने लक्ष्य को नापना शुरू कर देता है ऑखो के द्वारा—इतनी दूरी है और इसको मुझे पार करना है। वह लाइन पर खडा हो जाता है, वहाँ तक मुझे पहुँचना है। वह लक्ष्य को अपनी दृष्टि के अन्दर बॉध लेता है। यह पश्यन्ती वाणी का स्तर होता है। और उसके पश्चात् जो तीसरा होता है, वह मध्यमा का स्तर है। अब ज्योंही सीटी बज जाती है या एक, दो बोलना शुरू होता है तो उस समय सारी धमनियो के अन्दर, नसों के अन्दर एक प्रकार का आवेग, एक वेग आ जाता है, एक उत्तेजना आ जाती है मानो वह थरथराना शुरू करता है। एक कम्पन प्रारम्भ हो जाता है। यह मध्यमा वाणी का स्तर है। वह झुक जाता है और अपनी दृष्टि को साध करके, सारी-की-सारी शक्ति को एकाग्र करके और बस, उस क्षण की प्रतीक्षा करता है जब उसको कहा जाता है वन, टू, थ्री (One, two, three) और कहते ही वह दौडना शुरू होता है। ज्योंही वह आगे की तरफ बढता है, वह वैखरी वाणी का स्तर है। मैंने स्थूल दृष्टान्त के द्वारा इसको बताने की कोशिश की पर हमें इसको सब्जेकटिवली (Subjectivly) अनुभव करना है। मै अभी कुछ बोल रहा हूँ पर जिस व्यक्ति को उस भाषा का ज्ञान नही है वह कुछ ध्वनिमात्र को ग्रहण करेगा और जो इस भाषा को समझता है वह उस भाषा को, उन अक्षरो को, उन शब्दों को, पदों को ग्रहण करके उनके अर्थ को अपने अन्दर ग्रहण करता है और उनकी चेतना के साथ एक हो जाता है। मैं भी जब एक विवक्षा अर्थात् बोलने की इच्छा रखता हूँ तो चैतन्य परा, पश्यन्ती, मध्यमा होता हुआ वैखरी वाणी में प्रकट होता है। इस प्रकार हमने देखा कि यह सारी सृष्टि ज्ञानमयी सृष्टि है। उस ब्रह्म की एक अभिव्यक्ति है और अखण्ड चैतन्य, जो विवर्त है, उसको हम वेद कहते हैं। सक्षेप में मैने आपके समक्ष रखा है कि यह वेद किस प्रकार से अपौरुषेय है। किस प्रकार से यह सृष्टि ज्ञानमयी है।

अब मैं आपका थोडा-सा ध्यान गीता की ओर आकृष्ट करना चाहूँगा।

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।।15.1

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।।15.2

इन श्लोकों में सारी सृष्टि की परिकल्पना एक महान् वृक्ष के रूप में की गई है। उसकी जड क्या है? ऊर्ध्वमूल। तो आपने कोई चित्र देख लिया होगा, किसी ऐसी पुस्तक में जिसमें पेड की जड़ें ऊपर की तरफ हैं। यहाँ 'ऊर्ध्वमूल' का अर्थ क्या है? सारी सृष्टि का कोई कारण है, वह बड़ा ही सूक्ष्म है, बडा ही श्रेष्ठ है। वह अगोचर है, अदृष्ट है, उसके अति सूक्ष्म होने के कारण ही कहा—वह ऊर्ध्वमूल है। इसलिये सारे-के-सारे जगत् का जो मूल है वह ब्रह्म है। वह शक्तिमान ब्रह्म उस जगत् का मूल है—'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं'। यह निरन्तर बदलने वाला है, निरन्तर बदलता हुआ। अभी इस क्षण में जैसा है, वैसा दूसरे क्षण में नहीं रहने वाला। मैं विशेष रूप से जिस बात की तरफ आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ वह है—

छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्।

वेद को जानने वाला कौन है? जो इस वृक्ष को जान लेता है कि यह ऊर्ध्वमूल वाला है। यह सारा-का-सारा वृक्ष सुन्दर पत्तो के द्वारा आच्छादित है। सम्भवतः आप यदि बड़े आदर और प्रेम के (साथ से) किसी वृक्ष को देखेंगे तो इसका रहस्य अधिक स्पष्टता से समझ मे आ जाएगा। परन्तु हम चीजों को ऊपर-ऊपर से देखते है या फिर सोद्देश्य देखते हैं। अपने उपयोग की दृष्टि से देखते है। अगर हम वृक्ष को वृक्ष की तरह अनुभव करें तब हमको पता लगेगा कि वहाँ पत्तों का क्या स्थान है। वहाँ मूल का क्या स्थान है? वृक्ष को पादप भी कहते है और विटप भी। पादप इसलिये कि यह अपने पैरों से पीता है। पाद के द्वारा पीता है इसलिये पादप। क्योंकि यह भूमि के रस को पीता है। तो यह पादप भी है

और विटप भी है। तो एक वृक्ष में पत्तों का क्या स्थान है? वैसा ही समझो कि सारे ससार मे छन्दो का स्थान है। 'छन्दासि यस्य पर्णानि' उस वृक्ष के पत्तों के स्थान पर छन्द हैं। वेद के मन्त्र हैं। सारी सृष्टि को आच्छादित करके ये वेद-मन्त्र उसको सुशोभित कर रहे हैं। इस प्रकार वेद के स्थान को समझ कर हम थोड़ा और आगे बढते हैं। वेद मे सिर्फ दो बाते ही बतायी हैं—धर्म किसको कहते हैं और ब्रह्म किसको कहते हैं। हमको उस अनन्त वेद के कुछ मन्त्र ही उपलब्ध हैं। आज से 2000 या 5000 वर्ष पहले जितने वेद-मन्त्र उपलब्ध थे उतने आज उपलब्ध नही हैं।

भगवान् भाष्यकार शकर का अवतरण हुआ था, उस समय वेद की जितनी शाखाएँ थी उतनी आज उपलब्ध नहीं हैं। हो सकता है, आने वाले युग में किसी और को और अधिक मन्त्रों का साक्षात्कार हो जाय, प्रकटन हो जाय। मुझे बताया कि दक्षिण भारत में कोई व्यक्ति है जिसको नव-नव मन्त्रो का स्मरण होता है, वह उनका उच्चारण भी करता है। इसलिये हमारे मन मे यह शंका नहीं होनी चाहिये कि विश्व का सारा ज्ञान हमें प्राप्त हुए वेद मन्त्रो में क्यों नही है। तो सारी सृष्टि को जिस ज्ञान ने धारण कर रखा है, उसे वेद कहते हैं। मैंने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में मकान देखे, व्यक्ति देखे, कुछ घटनाओं का अनुभव किया। वह सारी-की-सारी स्वप्न की सृष्टि मेरी चेतना के द्वारा धारित है। उसी प्रकार सारी सृष्टि को जो धारण करने वाला तत्त्व है, जो चेतना या ज्ञान हैं, उसको वेद कहते हैं। वेद में दो ही तत्त्वों का प्रतिपादन है—धर्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व। जो धारण करने वाला तत्त्व है, उसको हम धर्म कहते हैं।

**धारणात् धर्म इत्याहु: धर्मो धारयते प्रजाः**

अर्थात् सारी सृष्टि को धारण करने के कारण ही इस धारक-तत्त्व को धर्म कहते है। यह सारी सृष्टि नाम-रूप वाली है, द्वैत रूप है। यह द्वैत, अद्वैत ब्रह्म मे विवर्त रूप से भासित है।

वेद को प्रकट करने वाला तत्त्व ब्रह्म है और ब्रह्म क्या है? यह बताने वाला वेद है। भगवान् वेदव्यास द्वारा रचित ब्रह्मसूत्र में तीसरा सूत्र है—'शास्त्रयोनित्वात्।' इसके दो अर्थ निकलते है। शास्त्र उसकी योनि है। योनि माने कारण। ब्रह्म का प्रतिपादन करने के कारण वेद-शास्त्र ब्रह्म की

योनि हैं और ब्रह्म वेद-शास्त्र की योनि (माने कारण) है अर्थात् उसे प्रकट करने वाला है।

आज हमे वेद के एक लाख मन्त्र उपलब्ध है—एक शब्दराशि के रूप मे। उसमे अस्सी हजार मन्त्र कर्मकाण्ड से सम्बन्धित है, सोलह हजार उपासनाकाण्ड से सम्बन्धित हैं और चार हजार ज्ञानकाण्ड से सम्बन्धित है। कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड—ये तीन काण्ड होने से इसको त्रयी कहते हैं। कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड मिलकर धर्म-तत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। ज्ञानकाण्ड ब्रह्म-तत्त्व का प्रतिपादन करता है। ब्रह्म-सूत्र उस ब्रह्म-तत्त्व के विषय मे बताता है जो सृष्टि, स्थिति और लय करने वाला है उसको ब्रह्म कहते हैं। 'जन्माद्यस्य यतः' जो सृष्टि को जन्म देने वाला, उसकी स्थिति करने वाला, उसको लय करने वाला तत्त्व है उसको ब्रह्म कहते हैं। यह ब्रह्म का तटस्थ लक्षण है। पर शास्त्र यहाँ पर रुकते नहीं, शास्त्र आगे जाकर बताते है कि स्वरूप-लक्षण क्या है ब्रह्म का। ब्रह्म का स्वरूप-लक्षण है कि वह नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वरूप, देश-काल-वस्तु-परिच्छेद से रहित, सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित एक तत्त्व है। उसको ब्रह्म कहते हैं। यह इसका स्वरूप-लक्षण है। टाइम स्पेस एण्ड कॉजेशन (Time, Space and causation) का कोई भी लिमिटेशन (Limitation) उसको सीमित नहीं कर सकता। एक वस्तु होती है जो देश के साथ लगी होती है, उससे सीमित होती है। अर्थात् एक चीज यहाँ पर है, यहाँ से बाहर नहीं है तो स्पेश (Space) के द्वारा सीमित है। वह ब्रह्म-तत्त्व स्पेश (Space) के द्वारा सीमित नहीं है, न काल के द्वारा सीमित है। कोई चीज अभी यहाँ है, आज से सौ साल, हजार साल पहले नहीं थी और आगे नहीं रहेगी। तो काल के द्वारा भी ब्रह्म सीमित नहीं है। और तीसरा लिमिटेशन (Limitation) आता है वस्तुगत परिच्छेद का। जैसे इस कक्ष के अन्दर नाइट्रोजन गैस भरी हुई हो, आक्सीजन भी भरी हो। एक ही टाइम (Time) मे, एक ही स्पेस (Space) में दो वस्तुएँ हैं। पर नाइट्रोजन नाइट्रोजन है, आक्सीजन आक्सीजन है। यह स्थूल उदाहरण मैने दिया है। क्योकि आप तीव्र तर्क लगाएँगे तो आप कहेंगे—नाइट्रोजन के मोलीक्यूल्स या एटम अलग हैं और आक्सीजन के अलग हैं। वे अलग स्पेस को घेर रहे है। यह स्थूल उदाहरण दिया। तो जो एक वस्तुगत

परिच्छेद है, I-ness है, एक अलगपना है, ऐसा नहीं है ब्रह्म। ब्रह्म से अलग किसी दूसरे की सत्ता-स्फुरता नहीं है या A ब्रह्म या B ब्रह्म ऐसा भी नहीं है। एकमात्र जो सत्य है वह देश-काल-वस्तु-परिच्छेद से रहित है। यह है ब्रह्म का लक्षण। उसी प्रकार से ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेद से रहित है। सजातीय भेद नहीं है। यह तो साठी गाय है, यह सिंधी गाय है, यह देशी गाय है, यह विदेशी गाय—ऐसा गाय का सजातीय भेद हुआ, ऐसा भेद ब्रह्म में नहीं है। गाय और घोड़े में विजातीय भेद है, घोडा घोडा है। घोडा गाय नहीं हो सकता, गाय घोड़ा नहीं हो सकती। ब्रह्म के अन्दर ऐसा विजातीय भेद नहीं है। ब्रह्म में स्वगत भेद भी नहीं है। मेरे अपने शरीर में मेरी आँख, कान, नाक, गला, हाथ, पैर सब अलग-अलग। पर ब्रह्म में यह स्वगत भेद भी नहीं है। सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद से रहित एक तत्त्व है और देश-काल-वस्तु-परिच्छेद से रहित एक तत्त्व है, तो वह क्या शून्य है? नहीं। वह तो नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वरूप सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप है। 'सत्'—मैं हूँ और 'चित्'—मैं जानता हूँ कि मैं हूँ और मैं आनन्द-स्वरूप हूँ। सबको अनुभव हो रहा है—'मैं हूँ' और 'मैं जानता हूँ कि मैं हूँ, मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मैं हूँ और मैं आनन्द-स्वरूप हूँ।' मैं परम प्रेमास्पद हूँ। ब्रह्म का ऐसा एक लक्षण हमारे शास्त्र में किया। इसको वेदान्त के नाम से बताया कि यह जो एक अनुभव करने वाला और सारे विश्व का जो आत्मा है और प्राणीमात्र का जो आत्मा है उसमें कोई भी भेद नहीं है। वेदान्त के लिये भगवान् भाष्यकार आचार्यश्री शंकर ने 'विवेक चूडामणि' में एक श्लोक कहा है—

> वेदान्त सिद्धान्त निरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च।
> अखण्डरूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम्।।
>
> —विवेक चूडामणि 479

हमारे महापुरुष, जिनके आलोक मे, आनन्दमय, कृपामय छत्र-छाया में हम लोग जी रहे है, उन स्वामी विवेकानन्दजी ने कहा था—भविष्य का धर्म वेदान्त का धर्म होगा। वेदान्त को लेकर उन्होने धर्म की बात कही। ब्रह्म की बात की। वह वेदान्त क्या है? एक ही तत्त्व, वह अपने-आप को जगत्-रूप मे प्रकट कर रहा है, जीव-रूप में प्रकट कर

रहा है—ब्रह्म ही जीव बन गया है। वह ब्रह्म ही जगत् बन गया है। निमित्त कारण और उपादान कारण—दोनो ही इस सारे जगत् का स्वयं ब्रह्म ही है। कुम्हार ने घडे को बनाया, तो किससे बनाया? मिट्टी से बनाया, साथ में उसने डण्डे एवं चाक की मदद ली। उस गदहे ने भी सहयोग किया, जो मिट्टी लेकर आया तो कुम्हार ने घड़ा बनाया, क्या परमेश्वर ने इसी प्रकार सृष्टि की रचना की? वेदान्त कहता है—नहीं। वेदान्त के अनुसार वही उपादान कारण बना, वही निमित्त कारण बना। मैं विभिन्न मतों को रखना नहीं चाहता। शंकराचार्यजी ने और विवेकानन्दजी ने हमारे सामने जो दर्शन रखा, वह अद्वैत का सिद्धान्त है। वे कहते हैं—ब्रह्म ही जगत् हो गया है। वही जगत् का उपादान कारण, वही जगत् का निमित्त कारण। जैसे हम अपने स्वप्न में स्वयं अपने स्वप्न को प्रोजेक्ट (Project) करते हैं। जब हमारे अन्दर इतनी शक्ति है जिसको लेकर हम स्वप्न जगत् को पैदा कर देते हैं, तो ब्रह्म में तो अनिर्वचनीय मायाशक्ति है जिसको लेकर वह सारे जगत् को पैदा कर देता है, अपने अन्दर दिखा देता है। ऐसा वह ब्रह्म-तत्त्व है। वह जिस नियम से सारे जगत् को पैदा करता है, उसका पालन करता है, उसको अपने अन्दर लीन कर लेता है। उस नियम को धर्म कहते हैं।

अब सनातन धर्म की परिभाषा आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहा हूँ। हमको जगत् दिखाई दे रहा है और मैं इसका अनुभव करने वाला हूँ। इस जगत् का कारण क्या है? अभी मैं सीधा शास्त्र का अवलम्बन लेकर इस निष्कर्ष को पा लेता हूँ कि सारी सृष्टि उस ब्रह्म का ही एक विवर्त है। उसने इसको प्रकट किया। जिस नियम को लेकर उसने प्रकट किया, उस नियम को धर्म कहते है। जिस कला को लेकर वह सारे जगत् को प्रकट करता है उसको धर्म कहते हैं। जिस प्यार को लेकर वह ब्रह्म सारे जगत् को प्रकट करता है उसको धर्म कहते है। हम उसको किसी एक परिभाषा में बाँध नहीं सकते।

तानसेन का नाम आप लोगों ने सुना होगा। अकबर के दरबार में वह था और वह अद्‌भुत गाता था। एक बार अकबर ने कहा कि 'तुम बहुत अच्छा गाते हो। तुम्हारे गुरुदेव कैसा गाते है?' 'बस, उनका तो कहना ही क्या है? मैने तो उनसे थोडा-सा ही ज्ञान प्राप्त किया है।' 'मै

तो उनके गाने को सुनना चाहता हूँ।' तानसेन ने कहा—'वे जंगल में कुटिया बनाकर रहते हैं। वे इस तरह से गाते नहीं। जन-समाज में आते नहीं।' 'नहीं, मुझे तो सुनना है।' अब राजहठ! तो तानसेन ने कहा—'ठीक है। चलिये वन के अन्दर।' कुछ दूरी पर पहुँच गये और तानसेन ने गाना शुरू किया। गुरुदेव को पता नहीं। अब वह आवाज गुरुदेव के कान में पहुँची। उस गाने मे तानसेन ने थोडी-सी त्रुटि रख दी। वह आवाज सुनी तो पहचान गये। शिष्य आया है। वे वहाँ पर आये। तानसेन ने उनको प्रणाम किया और कहा—'मैं ऐसे ही आ गया था, आपके दर्शन करने।' कभी थोडा गुरु से भी छिपाना पडता है। फिर गुरु ने कहा—'ऐसी गलती कैसे कर रहे हो?' 'अब आप कृपा करें।' तो गुरु ने गाना शुरू किया और अकबर छिपा हुआ उधर सुन रहा था। गाना सुनने के पश्चात् प्रणाम किया, आभार प्रदर्शित किया और तानसेन ने विदा ले ली। अकबर जब तानसेन से मिला तो बोला—'अरे तानसेन, मैं तो दंग रह गया। इतना अद्‌भुत वह गाते हैं! उनको मेरे दरबार में बुलाकर ले आना तू। मैं उनको सोने से आच्छादित कर दूँगा।' उसने कहा कि वे दरबार में नही आ सकते। वे तो जंगल के अन्दर ही गाते हैं। 'तुम वैसा क्यो नहीं गाते? तुम तो उनके शिष्य हो। गुरु गुड, चेला शक्कर हो जाता है न कभी! तुम ऐसा क्यों नहीं गा सकते? तुमको सारी सुविधाएँ प्रदान कर सकता हूँ।' पर उसने कहा—मैं ऐसा नही गा सकता क्योंकि मै आपके लिये गाता हूँ। 'और वे किसके लिये गाते हैं?' 'उसके लिये, प्रभु के लिए गाते हैं, इसलिये मै ऐसा नहीं गा सकता।'

ईश्वर जब सृष्टि को प्रकट करता है तो किसके लिये करता है? वह अगाध-अमित आनन्द है। और जहॉ आनन्द होता है वहाँ सारा जगत् उस आनन्द से उछलता है। हम भी जब स्नानघर मे जाते हैं, मल आदि से निवृत्त होकर, हल्के होकर, स्नान कर लेते हैं तो बाथरूम सिंगर हो जाते है—स्वतः ही गाना निकलना शुरू हो जाता है। आनन्द होगा तो अपने-आप उसकी अभिव्यक्ति करेगा ही करेगा। तो सारी सृष्टि क्या है? उस ब्रह्म का एक गान है। वह ब्रह्म उछलता है, नाचता है, गाता है। सारी सृष्टि उसका एक प्रकटन है। अपने अन्दर से एक अनिर्वचनीय शक्ति के द्वारा प्रकटन है।

यहाँ दो सिद्धान्त हमारे समक्ष आते है। मैने बताया—सारा जगत् ब्रह्म-रूप है। पर हमको तो ब्रह्म-रूप दिखाई नहीं देता! सारी सृष्टि को उसने बनाया। शास्त्र यहाँ तक कह देते है—वह अकेला था, उसका मन नहीं लगा—'स वै नैव रेमे'—बृ.उ. 1 4.3—एकाकी था, उसका मन नहीं लगा। 'एकोऽहम् बहुस्याम्'—उसको भी 'बहु' की इच्छा हुई। उसके मन मे बहुभवन की इच्छा हुई। इसलिये बहु की इच्छा हुई। हिन्दी मे बहू पत्नी को कहते है। उसके बिना तो बहु हो नहीं सकते। इसलिये एक अद्वैत तत्त्व दो हुआ—शिव और शक्ति। वह अनुत्तर तत्त्व, आनन्द और चैतन्य इस प्रकार विभाजित होता-होता, स्थूल होता-होता जगत् रूप हो गया। मैने प्रातःकाल चिद्-जडात्मक जगत् की बात कही थी। सारा जगत् चिद्-जडात्मक है। उसको कहीं से भी विभाजित नहीं कर सकते कि यह तो जड है और यह चेतन है। सारी अपरा प्रकृति में सारी परा प्रकृति या वह अखण्ड-अद्वैत चैतन्य प्रतिबिम्बित होकर, अवच्छेदित होकर, उसके अन्दर विद्यमान है। ऐसा यह चिद्-जडात्मक जगत् है। यह अपने-आप को प्रकट करता है—अधिभूत, अधिदैव व अध्यात्म रूप मे। अभी मैं बात कर रहा था धर्म की। वह जिस आनन्द को लेकर अभिव्यक्त करता है उस आनन्द को धर्म कहते है। जिस आत्मपूर्णता को लेकर वह स्पन्दित होता है उसको धर्म कहते है। इसलिये शिवजी किसके ऊपर बैठकर चलते हैं? वृषः धर्मः। शिवजी वृषभ के ऊपर बैठते हैं। इसलिये शिव मन्दिर मे जब जाते हैं तो सबसे पहले नन्दीश्वर को स्पर्श करके, प्रणाम करके, फिर शिव के दर्शन करते हैं। उसी प्रकार से जो गरुड है, वह धर्म है। जिसके द्वारा वह विष्णु गतिशील होते है। वेद-मन्त्र ही गरुड़ है। उसी प्रकार से वह भगवती जिस सिंह पर बैठकर स्पन्दित होती है, गति करती है, वह धर्म कहलाता है। तो यह जो धर्म-तत्त्व है, जो सारी सृष्टि को धारण करने वाला है, वह सारी सृष्टि मे व्यापक है, वह सारी सृष्टि को जोडकर रखने वाला है। तो सारी परिभाषाएँ देखिये—वह स्पन्दित होता हुआ आनन्द जिस कला को लेकर जगत् को अभिव्यक्त करता है, जिस आनन्द की पूर्णता को लेकर जगत् को अभिव्यक्त करता है और जिस कठोर नियम को लेकर जगत् को अभिव्यक्त करता है—वह धर्म है।

ऐसा कोई कण नहीं है जो विविक्त हो, अकेला खडा हुआ हो। अनुभव करने वाले, जिनका अनुभव किया जा रहा है और अनुभव करने के साधन—ये सारे-के-सारे एक अयुतसिद्ध अवयव, वन इन्टीग्रल होल (One integral whole) हैं। तो मैंने बताया वह अद्वैत तत्त्व चिद्-जड़ात्मक होकर भी अधिदेव, अधिभूत, अध्यात्म रूप से अपने-आप को प्रकट करता है। अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव। अभी हमारे वैज्ञानिक Force field की बात करते हैं। कितने Forces हैं? ग्रेवीटेशनल फोर्स (Gravitational force), इलेक्ट्रोमेगनेटिक फोर्स (Electromagnetic force), न्यूक्लियर फोर्स (Nuclear force)। न्यूक्लियर में ही दो फोर्सेज हैं—वीक न्यूक्लियर फोर्स व स्ट्रोंग न्यूक्लियर फोर्स। अब इन तीन या चार Forces को भी जोड़कर रखने वाला कोई Force होना चाहिये—ऐसा वैज्ञानिक सोच रहे हैं। आजकल वैज्ञानिक बायो-फोर्स और मेन्टल-फोर्स की भी बात करने लगे हैं। इन सब Forces को जोड कर रखने वाला फोर्स कौनसा है—इसे हमारे शास्त्र ने बताया है। कर्म की शक्ति ही इन सबको जोड़ कर रखे हुए है। अभी मैं आपके सामने धर्म की परिभाषा कर रहा हूँ जिसके द्वारा सारा-का-सारा संसार धारित है—ये आकाशगंगाएँ, ये सारे सौरमण्डल और ये सारे चराचर प्राणी, ये जड प्राणी, ये जीवित प्राणी—सारे जिसके द्वारा धारित हैं, उसको धर्म कहते हैं। किस नियम के द्वारा गर्भाशय में दो कण आपस में मिलते हैं? मिलाने वाला कौन है? अरबो, असंख्य कण हैं। उन दो कणों को मिला देता है, उनसे भ्रूण बढता है। वह बढाने वाली जो शक्ति है उसको धर्म-तत्त्व कहते है। बढाकर प्रकट करने वाली शक्ति है उसको धर्म कहते हैं। उसको बाल्य, किशोर, युवा और प्रौढ और जरावस्था से लेकर फिर आगे जो ले जाने वाला तत्त्व है उसको धर्म कहते हैं। सारे संसार को एज ए होल, टोटल (As a whole, total) धारण करने वाला जो तत्त्व है उसको धर्म कहते है और इनडिविजुअली (Indivisualy) प्रत्येक जड-चेतन को धारण करने वाला जो तत्त्व है उसको धर्म कहते है। सूर्य को धारण करने वाला, चन्द्र को धारण करने वाला और इसी प्रकार से पृथ्वी को धारण करने वाला एक तत्त्व है जो इकाई के रूप से सबको धारण करने वाला, अग्नि को धारण करने वाला, जल को, वायु को, आकाश को धारण करने वाला एक तत्त्व है, इसको धर्म कहते है। समग्र रूप से समस्त को धारण

करने वाला जो एक विधान, एक तत्त्व है उसको भी, हमने देखा कि जिनके द्वारा ब्रह्म स्पन्दित होता है उसको धर्म कहते है और Individualy प्रत्येक देव को, प्रत्येक पितर को, प्रत्येक प्राणी को और उस लोक को धारण करने वाला एक तत्त्व है, उसको धर्म कहते हैं। लोक के दो अर्थ होते हैं। प्राणी भी लोक का अर्थ होता है और प्राणी जिसमें निवास करते है उसको भी लोक कहते हैं। प्राणी को भी लोक कहते हैं। लोकन का अर्थ अनुभव करना। जिसके अन्दर लोकन होता है, अवलोकन होता है, अनुभव होता है और जिसमें वह प्राणी रहता है उसको भी लोक कहते हैं। इन दोनों को अलग-अलग धारण करने वाला तथा समग्र रूप से धारण करने वाला जो तत्त्व है, उसको धर्म कहते हैं।

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः

सारी प्रजा—'प्रकर्षेण जायते इति प्रजाः'। प्रकर्ष रूप से जो प्रकटित है उस सबको धारण करने वाला जो तत्त्व है, उसको धर्म कहते हैं। प्रत्येक प्राणी का धर्म अलग है, शेर का धर्म अलग है, हरिण का धर्म अलग। सभी अपने-अपने धर्म के अन्दर बँधे हुए, अपनी मर्यादा के अन्दर रहते हुए अपनी आयु को पूरी करते हैं। सारी सृष्टि उस धर्म में बँधी-बँधी चल रही है। उसमें एक सुन्दरता है, उसमे एक लय है, उसमे एक सौष्ठव है, उसमे एक मर्यादा है। यह सारी सृष्टि है और उस सृष्टि में एक प्राणी है, जिसको मनुष्य कहते हैं। थोडा मनुष्य का चिन्तन करें। ऐतरेय उपनिषद् में आता है—उस ब्रह्म ने सारी सृष्टि को बनाया। उस सृष्टि को आपको भी बनाना पडेगा। जब तक आप उपनिषदों का सब्जेक्टिवली (Subjectivly) अध्ययन नहीं करेंगे तब तक आत्म-ब्रह्म ऐक्य अनुभव नहीं होगा। किताबों में बहुत लिखा हुआ है। आप लोगो का भी बहुत पढा हुआ है। सब्जेक्टिवली इसका अनुभव करना क्योकि आप मे और ब्रह्म मे कोई अन्तर नहीं है। आप अगर चाहे तो उस क्षण मे पहुँच सकते है जब सारी सृष्टि लीन अवस्था में थी और उस परमेश्वर ने सृष्टि करना प्रारम्भ कर दिया। जब-कभी आप मौलिक रचना करते हैं उस समय आपका अनुभव ठीक वही होता है जो उस ब्रह्म का सृष्टि को प्रकट करते समय होता है। आपकी पीडा भी वही होती है जो सृष्टि को प्रकट करते समय उसको होती है—प्रसवन के समय माँ की जो पीडा होती है और सारी सृष्टि को प्रकट करते समय जगत्-जननी

को जो पीडा होती है। क्योकि सृष्टि का प्रकटन करने में आनन्द भी है और परमेश्वर की एक पीडा भी है। क्योकि यह एक बडा अद्भुत तत्व है। मैं थोडा और खुलासा आगे आने वाले अवसरों पर करूँगा। अभी मैं बता रहा था—ऐतरेय उपनिषद् में आया कि उस ब्रह्म ने देवताओं को बनाया और उनको भूख-प्यास से जोड दिया। सृष्टि के मूल मे जरा-मरण, भूख-भय। द्वैत आते ही भय—'द्वितीयाद्वै भय भवति'—वृ.उ. 1.4.2। तो देवताओ को भूख-प्यास से जोड दिया। देवताओ ने कहा—हम को रहने के लिये जगह चाहिए, खाने के लिये चाहिये, आवास के लिये जगह चाहिये। माँग करने लगे तो भगवान् ने सृष्टि की। उसने गाय बनाई, घोडे को बनाया, पशु-पक्षी बनाता गया। देवता सबको नकारते गये, रिजेक्ट करते गये। यह ठीक नहीं है, यह ठीक नहीं है। उसने मनुष्य को बनाया। मनुष्य को बनाते ही सारे देवता बोल पडे—सुन्दर बनाया, सुन्दर बनाया—सुकृतम्-सुकृतम्। हमको पसन्द आ गया। तो उसने कहा—ठीक है, अपनी-अपनी जगह पर जाकर बैठ जाओ। सूर्य देवता आकर आँख में बैठ गये। वरुण देवता आकर जीभ में बैठ गये। अश्विनीकुमार आकर घ्राण में बैठ गये। अभी बताया न, अधिभूत, अधिदैव और अध्यात्म—तीनो मिलकर यह सारी सृष्टि चल रही है। तो देवता जाकर अपनी-अपनी जगह बैठ गये। तब उस ब्रह्म ने सोचा—मेरे बिना अगर ये काम करने लगे तो फिर मेरी क्या विशेषता होगी। मेरे बिना ये कार्यक्षम हो गये तो फिर मेरी क्या विशेषता होगी। उन्होने सोचा, मै भी जाऊँ और इस मनुष्य शरीर के अन्दर वास करूँ। तो ढूँढने लगे, किस द्वार से जाऊँ? अभी नौ द्वार होते हैं। 'नव द्वारे पुरे देही'—शरीर मे नौ द्वार होते है। जिन द्वारों से ये देवता लोग गये उनसे मै नही जाऊँगा। फिर वह पैरो के पास मे गया। इधर से घुसूँ। फिर उसके मन मे हुआ—पैर तो नीचे रहते है। इनसे घुसना ठीक नही है। मै तो सबसे श्रेष्ठ हूँ। इसलिये मुझे इधर से प्रविष्ट नही होना चाहिये। तब फिर वह कपाल को फोडकर हृदय मे आकर बैठ गया—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। —गीता, 18 61

'यो वेद निहितं गुहायाम्'—हृदय गुहा में आकर वह छुपकर बैठ गया। इस परमेश्वर की शक्ति को लेकर ही सारे देवता कार्यक्षम हैं। यह बडी अद्भुत योनि है। यह मनुष्य योनि, जिसके लिये शास्त्र कहते हैं :

आहार-निद्रा-भय-मैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः।।

यह जो मनुष्य का प्रकटन हुआ, यह सारी सृष्टि का केन्द्र है। किस बात मे केन्द्र है? यह सारी सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ है। किस बात में श्रेष्ठ है? भारतीय सनातन दृष्टि क्या कहती है? किसलिये श्रेष्ठ है? क्योकि एकमात्र मनुष्य योनि में कर्म करने की क्षमता है। बाकी सारी-की-सारी योनियॉं, चाहे देव योनि हो, चाहे पितर योनि हो, चाहे कोई और हों—सारी-की-सारी भोग-योनियाँ है और एकमात्र मनुष्य की योनि ही कर्म-योनि है। कर्म करने का स्वातन्त्र्य इस योनि में प्रकट होता है। यह कर्म करता है, एक स्वातन्त्र्य को लेकर कर्म करता है। मानो ईश्वर की तरह कर्म करता है। यह जो सबको धारण करने वाला, सृष्टि को चलाने वाला एक तत्त्व है, जिसको कहते हैं—एक यज्ञ-तत्त्व है, एक यज्ञचक्र है, एक परिवेशीय सन्तुलन है, एक ईको बेलेंस (Eco balance) है, उसको वह डगमगा सकता है, उसको असन्तुलित कर सकता है। ऐसी क्षमता से वह सम्पन्न है। इसलिये मनुष्य किस प्रकार का जीवन बिताये—उसको प्रकट कर दिया वेद के द्वारा। मनुष्य किस प्रकार का आचरण करे, कैसे जिये, कैसे बढे, कैसे वह अपनी आकांक्षाओ को लेकर, अपनी इच्छा को लेकर, अपनी क्रिया को लेकर, अपने ज्ञान को लेकर कैसे वह प्रयोग करे, किस रास्ते को लेकर वह चले, उसको वेद ने बता दिया। उसको भी धर्म कहते हैं। यह धर्म की दूसरी परिभाषा हमारे सामने आती है। मनुष्य किस प्रकार का आचरण करे, कैसे वह अपना अभ्युदय करे, सर्वाङ्गीण विकास करे और कैसे वह परमेश्वर को प्राप्त करे, कैसे वह अपनी कामनाओं की पूर्ति करे, उसको भी बता दिया। उसको धर्म कहते हैं। मनुष्य को जिनको धारण करना चाहिये, उन नियमों, उन विधानों को भी धर्म कहते है। धर्म का यह जो रूप मनुष्य के लिये बताया गया है इसके भी कई आयाम हैं, कई रूप हैं।

वेद की बात बताने के लिये हमारे यहाँ पर पुराण और इतिहास है एवं स्मृतियाँ हैं। मनुस्मृति में बताया कि—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म-लक्षणम्।।

अर्थात् धर्म के दस लक्षण हैं, यथा धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध।

यहाँ धर्म के दस लक्षण गिनाये। भगवद्गीता में भी इसको दैवी सम्पद् के नाम से गिनाया है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः —गीता 16.1-3।

जिसके पालन के द्वारा मनुष्य में एक देवत्व का विकास होता है, जिससे वह ईश्वर की तरफ बढता है, उसको भी धर्म कहते हैं। मनु महाराज ने तो धृति यानी धैर्य, क्षमा, इन्द्रियों को वश में रखना और अस्तेय—दूसरों की वस्तुओ को नहीं लेना, चोरी नहीं करना, अन्दर-बाहर का शौच, इन्द्रियों को वश में रखना, मन को वश में रखना, बुद्धिमत्ता, ज्ञान को प्राप्त करना, सत्य, अक्रोध—इस प्रकार से धर्म के दस लक्षण गिनाये। ये सारे-के-सारे आन्तरिक तत्त्व हैं, इनको हम जीवन में जितना-जितना उतारते हैं उतना-उतना हम ईश्वर की तरफ बढते हैं। धर्म की दूसरी परिभाषा के अन्तर्गत धर्म के दो रूप बताये। एक तो आचरण सम्बन्धी रूप, एक ऐसा रूप जो समय के अनुसार बदलता जाता है, जो देश, काल, परिस्थिति के अनुसार बदलता जाता है और कुछ ऐसे सार्वभौम नियम होते हैं जिनका किसी भी काल में, किसी भी देश में और किसी भी मनुष्य को पालन करना चाहिये। तो धर्म का एक न बदलने वाला रूप होता है जो सार्वभौम, सार्वकालिक, सार्वजनीन है। ये धर्म के दस लक्षण बताये।

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिराम्।
अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः।।

—महाभारत, शान्तिपर्व 162-2

सनातन धर्म क्या है? 'अद्रोहः सर्वभूतेषु' सारे प्राणियों के प्रति एक अद्रोह की भावना, 'कर्मणा मनसा गिराम्' कर्म के द्वारा, मन के द्वारा, वाणी के द्वारा और 'अनुग्रहश्च दानं च सतां धर्मः सनातनः' अनुग्रह करना, दान करना—यह सनातन धर्म है, सत्पुरुषों का धर्म है। तो धर्म के दो रूप हमारे सामने आ रहे हैं। एक रूप वह होता है जो आन्तरिक होता है, जो कभी नहीं बदलता; और दूसरा धर्म होता है जो आचार सम्बन्धी होता है,

वह बदलता रहता है। धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत हमने धर्म के दो रूप देखे—एक न बदलने वाला रूप और एक बदलने वाला रूप। जो बदलने वाला रूप है उसको हम आचार सम्बन्धी रूप कहते हैं। वह व्यक्ति के अनुसार बदलता जायगा। व्यक्ति की अवस्था के अनुसार बदलता जायगा। व्यक्ति की परिस्थिति के अनुसार बदलता जायगा। पर उसके पालन मे भी जो धर्म का स्वरूप है, जो धर्म का तत्त्व है, उसका उल्लंघन नहीं होना चाहिये। अभी मैं आपको बता रहा था—मनुष्य को जिसका पालन करना चाहिये उसको हम सनातन धर्म के अन्तर्गत समझना चाहे तो सारे-के-सारे पुराणो के सार को वेदव्यासजी ने बता दिया—

अष्टादश पुराणेपु व्यासस्य वचन-द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

—महाभारत

सारे धर्म का सार निकालकर बता दिया—परोपकार करना पुण्य है और दूसरों को दुःख देना पाप है और दूसरी परिभाषा में सारी श्रुतियों का सार निकालकर उन्होंने बताया कि—

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

—महाभारत

आपको जो व्यवहार अपने अनुकूल नहीं लगता वह व्यवहार दूसरों के प्रति नहीं करना। धर्म की यह परिभाषा हमारे मस्तिष्क में रहे और यह हम समझें कि मनुष्य के अन्दर स्वतन्त्र कर्म करने की एक शक्ति है। तब धर्म का तत्त्व शनैः-शनैः हमको स्पष्ट होने लगेगा।

मैं आपको बता रहा था—मनुष्य सारी सृष्टि का केन्द्र है। ब्रह्मसूत्र में इस प्रसंग को उठाया कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना की, उस सृष्टि मे इतना वैषम्य क्यों है? इतनी विषमता क्यों है? क्या ईश्वर में पक्षपात है कि वह किसी को तो इतने अनुकूल वातावरण में पैदा कर देता है, किसी को इतने विषम वातावरण मे? इसका उत्तर देते हुए ब्रह्मसूत्र में आया कि ऐसा नही है। वैषम्य नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति —ब्रह्म सूत्र 2.1.34। ईश्वर कर्मसापेक्ष होकर सृष्टि करता है। जैसे प्राणियो के कर्म है वैसी वह

सृष्टि कर देता है। कर्म करने की शक्ति मनुष्य योनि में आती है। मनुष्य योनि मे असख्य बार जीवात्मा ने जन्म लिया और जितनी बार मनुष्य का जन्म लिया उतनी बार उसने कर्म किया। वह कर्म संगृहीत होकर, पडा रहता है। उसको लेकर वह परमेश्वर सृष्टि करता है। इसलिये सृष्टि के अन्दर विषमता का दर्शन होता है। हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर जाना चाहिये कि सारी सृष्टि का केन्द्र मनुष्य किसलिये है?

मनुष्य ही मनुष्य योनि में कर्म करके देवयोनि में जाता है, पितर योनि में जाता है, गन्धर्व योनि मे जाता है और मनुष्य ही निकृष्ट कर्म करके कीट-पतग आदि और स्थावर—यहाँ तक कि पेड-पौधों की योनि में चला जाता है। अतः मनुष्य 84 लाख योनियों में इस प्रकार भ्रमण करता रहता है। इसलिये मनुष्य सारी सृष्टि का केन्द्र है। दूसरे, इसी सृष्टि के अन्दर कामनाओ को लेकर मनुष्य का प्रकटन हुआ है। मनुष्य कामनाओं की पूर्ति कैसे करे? जिस विधान के द्वारा कामनाओं की पूर्ति की जाती है उस विधान को भी धर्म कहते है। 'यतो अभ्युदय-निःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः।' जिसके द्वारा अभ्युदय होता है। अर्थात् सर्वागीण विकास होता और जिसके पालन से ब्रह्म का आत्मरूपेण साक्षात्कार होता है उसे धर्म कहते हैं। तो मनुष्य क्या है? मनुष्य सारी सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। थोडा मनुष्य का चिन्तन करें। किस प्रकार से सारे प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य की योनि श्रेष्ठ है? शरीर की दृष्टि से, इन्द्रियों की दृष्टि से, अन्तःकरण की दृष्टि से? यदि मनुष्य को देखो तो सारे प्राणियो में मनुष्य की योनि श्रेष्ठ है। हम कहेंगे कि शरीर की दृष्टि से तो शेर है, हाथी है, उनका कितना बल है। और ये जो चीटी है, गरुड है उनमें इन्द्रियो की शक्ति मनुष्य से अधिक है। मनुष्य का शरीर की दृष्टि से श्रेष्ठत्व कैसे? कहा कि यह (Spinal cord) स्पाइनल कोर्ड, यह जो रीढ की हड्डी है—यह वैशिष्ट्य है। बाकी सारे-के-सारे प्राणी कमर को झुका कर चलते है। मनुष्य कमर सीधी करके चलता है। रीढ की हड्डी मे सुषुम्ना नाडी है, इडा और पिंगला नाडियॉ है। आप सब लोग जानते है, योग करते हैं आप। यह सीधी नाडी, जिसके अन्दर प्राण स्पन्दित होता है, जिसके अन्दर मन स्पन्दित होता है—यह सुषुम्ना नाडी, फिर मुक्त अगूठा, फिर वाणी का प्रकटन होना। अन्य प्राणियो में वाणी का प्रकटन नहीं है। यह जो परा,

पश्यन्ती, वैखरी के स्तर पर वाणी के प्रकटन की सम्भावना है, यह मनुष्य योनि मे है, दूसरे प्राणियो मे नहीं है, मनुष्य मे एक मनीषा है, उसमें मनन करने की शक्ति है, प्रश्न करने की एक शक्ति है, विवेक करने की एक शक्ति है। यह मनुष्य योनि मे आयी। कर्म करने की स्वतन्त्रता के पीछे शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण का जो वैशिष्ट्य है उसको भी हमको समझना पडेगा, यह उसका वैशिष्ट्य है।

मैने आपको बताया कि मनुष्य कामनाओं को लेकर उत्पन्न हुआ है। आप कहेंगे यह तो कुत्ता, बिल्ली—इनके अन्दर भी तो सारे काम, क्रोध, लोभ, सारी-की-सारी कामनाएँ है। वे सारे-के-सारे वासनान्वित होकर वासनाओ के द्वारा संचालित हो रहे हैं। उनमें भी एक स्वातन्त्र्य प्रकट है। अगर यहॉ पर एक चीटी चल रही है तो कोई भी वैज्ञानिक, सारे-के-सारे वैज्ञानिक मिलकर भी यह समीकरण नहीं बना सकते कि इस रेखा पर चल करके चींटी इस स्थान से उस स्थान पर पहुँचेगी। जहाँ भी चैतन्य है वहॉ स्वातन्त्र्य प्रकट है। पर मनुष्य में जो स्वातन्त्र्य प्रकट हुआ है उसको लेकर वह अपने-आप को ट्रान्सेण्ड (Transcend) कर सकता है। वह सृष्टि के मूल को लेकर प्रश्न कर सकता है। सृष्टि का मूल क्या है? 'कोऽहम्? कथमिदम् जातम्? को वै कर्तास्य विद्यते?' मैं कौन हूँ? यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ? इसका कर्ता कौन है? यह मनुष्य का वैशिष्ट्य है।

शास्त्र जिस धर्म-तत्त्व का प्रतिपादन करता है उस धर्म-तत्त्व को लेकर मनुष्य अपनी कामनाओ की पूर्ति कैसे करे? जिस प्रक्रिया के द्वारा मनुष्य अपनी कामनाओ की पूर्ति करता हुआ भी और आगे बढता जाय, देवत्व की तरफ और आगे बढता जाये, उस विधान को भी धर्म कहते है। तो धर्म की दूसरी परिभाषा हमारे सामने आती है—धर्म कामना-पूर्ति का विधान है। मनुष्य की कामनाओं की पूर्ति का ऐसा विधान, जिसका पालन करने से मनुष्य देवत्व की तरफ बढ़ता है। हमारे सनातन धर्म मे मनुष्य के श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन करते हुए कभी भी इसको नकारा नहीं। इसलिये शास्त्र कहते हैं—धर्म के दो रूप है—एक प्रवृत्ति-लक्षण-धर्म और एक निवृत्ति-लक्षण-धर्म। प्रवृत्ति के अन्दर निवृत्ति और निवृत्ति के अन्दर प्रवृत्ति। दोनों को भी विविक्त करके नहीं बताया। अलग-अलग

समझने की दृष्टि से बताया। पर प्रवृत्ति के अन्दर निवृत्ति-धर्म और निवृत्ति के अन्दर प्रवृत्ति-धर्म। दोनों के समन्वय को लेकर, सन्तुलन को लेकर चलता है वह सनातन धर्म है। वैदिक सनातन धर्म, जो वेद पर अवलम्बित है और वेद के अनुकूल पुराणों, स्मृतियों, आगमों पर अवलम्बित है और जो महापुरुषों के अनुभवों पर अवलम्बित है और आत्म-सन्तुष्टि पर जो अवलम्बित है, वह मनुष्य को कामनापूर्ति का मार्ग भी बताता है। अपने-आप को सही ढंग से स्वीकार करना—यह धर्म की पहली शर्त है। धर्म का तात्पर्य अपने-आप को सही ढंग से स्वीकारना। अपने-आप को सही ढंग से स्वीकारने की समझ जो देता है उसको धर्म कहते हैं। अपने-आप को स्वीकारने के पश्चात् कामनापूर्ति का जो विधान है उसको धर्म कहते हैं। 'यतो अभ्युदय...'— अभ्युदय शब्द के ऊपर थोडा मनन करना। क्योंकि मैंने आपको बताया—धर्म शब्द अपने-आप में बडा अद्भुत शब्द है। हरेक शब्द की अपनी एक महिमा, उसकी एक गरिमा, उसकी एक गहराई है, पर धर्म और ब्रह्म—दो शब्द ऐसे हैं जो अनादि काल से चले आ रहे हैं और हमारी देववाणी संस्कृत के शब्द हैं, उनकी अथाह गहराई का कहना ही क्या! यह जो एक धर्म शब्द चलता हुआ आया, इसके द्वारा अभ्युदय होता है और निःश्रेयस होता है। अभ्युदय का अर्थ है सर्वांगीण उदय। अभ्युदय का मतलब शारीरिक दृष्टि से, इन्द्रियो की दृष्टि से, प्राण की दृष्टि से और अन्तःकरण की दृष्टि से अभ्युदय।

एक बालक है। उसके अन्दर एक संगीतज्ञ छिपा हुआ है और आपने उसे इजीनियर या डाक्टर बनाने का जाल रचा। जन्मान्तर के संस्कार उसके साथ है। अब हम उसके विरुद्ध एक जाल रचते है, उसकी कन्डीशनिंग (Conditioning) करते है, उसको दूसरी दिशा में ले जाते हैं। तो उसका विकास नही होगा। उसका अभ्युदय नहीं होगा। उसके अन्दर कोई वैज्ञानिक छिपा हुआ है, कोई साहित्यकार छिपा है। धर्म-तत्त्व वह है जो उसको पहचान देता है कि तेरे अन्दर कौन छिपा हुआ है? क्या सम्भावित है और उसको कैसे विकसित करना? और मैंने बताया था—धर्म शब्द बडा ही गम्भीर शब्द है। हमारे ऋषियो के मानस मे तो बहुत ही स्पष्ट था और प्राचीनकाल में परम्पराओं के द्वारा वह सुरक्षित

था। इसलिये हमारे यहाँ चाहे गणित हो, चाहे भौतिकी हो, चाहे शिल्प हो, कोई भी क्षेत्र हो, सारा-का-सारा धर्म को लेकर चलता था, क्योंकि धर्म के द्वारा ही अभ्युदय होता है। इसलिये उद्योग में, शिल्प मे, कला मे, नृत्य मे, ललित कलाओं मे, सर्वत्र धर्म का विस्तार था। 'यतो अभ्युदयः'—वह बिना अभ्युदय के निःश्रेयस को पा नहीं सकता। बिना अपरा विद्या मे पारगत हुए वह परा विद्या मे प्रवेश नही कर सकता। इसलिये परा-विद्या, अपरा-विद्या आपस मे संश्लिष्ट है।

परा विद्या अर्थात् The knowledge of the whole, complete. आजकल होलिस्टिक विजन के अन्तर्गत वैज्ञानिक आंशिकरूपेण परा विद्या को समझने लगे हैं। तो धर्म के द्वारा अभ्युदय सिद्ध होता है। अर्थात् 'धर्मादर्थश्च कामश्च'—धर्म के द्वारा अर्थ-पुरुषार्थ सिद्ध होता है, काम-पुरुषार्थ सिद्ध होता है और धर्म के द्वारा मोक्ष-पुरुषार्थ सिद्ध होता है। तो यह जो एक धर्म-तत्त्व है यह हमारे अभ्युदय को सिद्ध करता है। अर्थात् हमारी सारी सम्भावनाओं को उत्कर्ष की तरफ ले जाता है। और इस ढंग से ले जाता है कि हम निःश्रेयस की तरफ निरन्तर बढते चले जाते हैं। क्योंकि जो निःश्रेयस या मोक्ष-पुरुषार्थ है वह किसी देश में अटका हुआ नहीं है, किसी काल में बँधा हुआ नहीं है, वह हमारी निजता है, वह हमारी तथता है, हमारी वास्तविकता है, हमारी पूर्णता है। मोक्ष को यदि अलग कर दिया तो इसका मतलब सब-कुछ कटा हुआ हो जायेगा, सब-कुछ बँटा हुआ हो जायेगा, टूटा हुआ हो जायेगा। तो धर्म के द्वारा अभ्युदय की सिद्धि—इसके ऊपर थोड़ा मनन करना। इसलिये हमारे शास्त्र ने कहा—मनुष्य सर्वप्रथम अपने-आप को स्वीकारे, वह क्या है? वह कामनाओं को लेकर ही जन्म लेता है। कामनाओ सहित उसका जन्म होता है। इस बात को शास्त्र जानते हैं। इसलिये शास्त्र ने कामनापूर्ति का मार्ग बता दिया कि किस प्रकार से कामनाओं की पूर्ति करे। धर्म कामनापूर्ति का मार्ग है। वह मार्ग कौन-सा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।। गीता, 3/10

प्रभु ने सारी सृष्टि को उत्पन्न करके यज्ञतत्त्व को उत्पन्न कर दिया, जोडने वाले तत्त्व को उत्पन्न कर दिया। जिससे देवता और सारे प्राणी जुडे

हुए है। यह मनुष्य, यह जीव, चराचर जगत् निरन्तर एक सुन्दर चक्र मे घूम रहे है। एक ईको सिस्टम Eco-system, दूसरा Eco-system, तीसरा Eco-system......ऐसे अनन्त Eco-system हैं, एक-दूसरे से कनेक्टेड (Connected) है और निरन्तर वे घूम रहे है, कुछ दे रहे है, कुछ ले रहे हैं, पार्टीसिपेट (Participate) कर रहे है। वैज्ञानिक मानने लगे है कि यह संसार पार्टीसिपेटरी युनिवर्स है और इसके अन्दर मनुष्य कामनाओं की पूर्ति करना चाहता है, तो कैसे कामनाओं की पूर्ति करता है? 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ (गीता 3/11) अर्थात् देव और मानव परस्पर भावना करते हुए, लेते और देते हुए अपनी कामनाओं की पूर्ति करे। 'एष वोऽस्त्विष्टकामधुक्'—कामधुक् माने यह यज्ञ कामधेनु की तरह है। इस प्रकार कामनापूर्ति का मार्ग हमारे शास्त्र मे बताया। शास्त्र जिस विधि का विधान यहाँ करता है उसको हम धर्म कहते है। दूसरी धर्म की परिभाषा है—जिसके द्वारा पाप का प्रक्षालन होता है। जो हमारे अन्दर एक रुकावट आ गयी है अपने को अभिव्यक्त करने के लिये, अपने को पूर्णता की तरफ बढाने के लिये रुकावट आती है, उस रुकावट को दूर करने वाला जो तत्त्व है उसको भी धर्म कहते है। 'धर्मेण पापम् अपनुदति'—धर्म के द्वारा पाप का निवारण होता है। धर्म वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पाप का निवारण होता है, कामनाओं की पूर्ति होती है और निःश्रेयस की तरफ बढते है। मनुष्य के द्वारा आचरणीय ऐसा व्यवहार शरीर के स्तर पर, इन्द्रियों के स्तर पर, अन्तःकरण के स्तर पर—जिसके द्वारा मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस की तरफ बढता चला जाता है, उसको धर्म कहते है। यह धर्म की द्वितीय परिभाषा हो गयी। मनुष्य अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करे, अपनी कामनाओं की पूर्ति करता हुआ भी वह देवत्व की तरफ बढता चला जाय उसको धर्म कहते है। इस प्रकार से धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत सारी सृष्टि को धारण करने वाला तत्त्व और मनुष्य के द्वारा धारणीय अर्थात् मनुष्य को जिसे धारण करना चाहिये वह तत्त्व शामिल है। इस प्रसग में हम देखते हैं कि मनुष्य का जो धर्म है वह अपनी अवस्था के अनुसार, परिस्थिति के अनुसार बदलता जाता है। बालक का धर्म अलग है। युवा का धर्म अलग है, ब्रह्मचारी का धर्म अलग और गृहस्थी का धर्म अलग है, वानप्रस्थी का धर्म अलग है, संन्यासी का धर्म अलग है।

किसी भी संस्कृति को नष्ट करना हो तो उसकी भाषा को प्रदूषित कर दो और भाषा मे जो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं उनका छेदन कर दो, उनको प्रदूषित कर दो और हमारे साथ यही हो रहा है। धर्म के विषय में हमारी जो धारणा थी वह शास्त्रो के अलावा हमारे लोक-जीवन मे, लोकभाषा मे, लोक-व्यवहार में भी पडी हुई थी, उसको धीरे-धीरे करके हम लोग भूलते जा रहे हैं। हम लोगो का बहुलांश भूलता जा रहा है। स्त्रियो में होने वाला मासिक धर्म क्या हिन्दू होता है या बौद्ध होता है या जैन होता है या ईसाई होता है? वह तो नारी-शरीर का मासिक धर्म है। मासिक धर्म के लिये हम धर्म शब्द का प्रयोग करते है तो वह शरीर का धर्म है, स्त्री-शरीर का धर्म है। हम धर्म शब्द का अर्थ धीरे-धीरे भूलते जा रहे हैं। स्त्री-शरीर का धर्म अलग, पुरुष-शरीर का धर्म अलग। धर्म की यह अवधारणा शनैः-शनैः करके हम विस्मृत करते जा रहे है। इसलिये धर्म के सारे-के-सारे अर्थो को एक साथ लाकर हमको रखना पडेगा। तब जाकर हमको समझ में आयेगा—यह सनातन धर्म क्या है? सनातन धर्म का आधार क्या है, इसका स्वरूप क्या है, इसका रूप क्या है; इसका न बदलने वाला रूप क्या है और इसका बदलने वाला रूप क्या है? जो निरन्तर बदलता रहता है, जो हर बदलाव को स्वीकार करता रहता है और जो बदलने की एक शक्ति प्रदान करता है उस शक्ति को धर्म कहते हैं। तो इस प्रकार धर्म की मीमासा के अन्तर्गत हमारे समक्ष वह वैदिक सनातन धर्म आता है जो अविरल भाव से युगों-युगों से चलता हुआ आज भी जीवित है। क्यों भई! मर तो नहीं गया? जितना-जितना विज्ञान आगे बढेगा उतना-उतना सनातन धर्म क्या होता जायेगा? स्वीकृत होता जायेगा। मानव-मात्र के द्वारा वह स्वीकृत होता चला जायेगा।

जो हमको एक भय जैसा हो रहा है—ग्लोबलाइजेशन (Globalisation) का, कि किस प्रकार से सारा विश्व एक होता जा रहा है, उससे हमको तनिक भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यदि हमने सनातन धर्म के हार्द को पकड लिया, उसके तात्पर्य को पकड लिया, उसके स्वरूप को पकड लिया तो हर परिवर्तन में, हर परिस्थिति में हम सारे विश्व को दिशा दे सकते है। इसलिये मैंने प्रारम्भ में नमन किया था

जिन महापुरुषो को, वे धर्म के विषय मे प्रमाण बनते हैं। वे चरितार्थ करके बताते हैं कि धर्म-तत्त्व क्या है? ऐसा ही शंकराचार्यजी के युग मे हुआ था। ऐसा ही वेदव्यासजी के युग मे हुआ था। कृष्ण भगवान् के युग मे हुआ था।

वेदव्यासजी आये वेद को लेकर। वेद को लेकर भी एक जडता आ गयी थी। वेद में प्रतिपादित धर्म को लेकर भी एक जडता आ गयी थी। इसलिये भगवान् कृष्ण आये और धर्म को एक नूतन परिभाषा दी। हमारी समझ में आता नहीं, क्यों उन्होने युधिष्ठिर को यह झूठ बोलने की प्रेरणा दी—'अश्वत्थामा हतो नरो वा कुजरो'?

धर्म के कई स्तर होते हैं। धर्म का एक न बदलने वाला रूप और एक धर्म का अवस्था के अनुसार बदलने वाला रूप, धर्म का वर्ण के अनुसार बदलने वाला रूप, परिस्थिति के अनुसार बदलने वाला रूप है। युधिष्ठिर को कह दिया—धर्म के मूल मे सत्य है। और युधिष्ठिर से झूठ बुलवा दिया। जो धर्म की स्थापना के लिये आये थे उन्होंने युधिष्ठर से झूठ बुलवा दिया।

ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम—ये चार आश्रम हैं, उसी प्रकार से चार वर्णो की बात हमारे यहाँ आती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चार वर्ण आये—

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम्।। गीता 4/13

प्रथम पंक्ति में आया—'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः'। दूसरी पंक्ति मे आया—उसका कर्ता होते हुए भी मुझे अकर्ता और अव्यय समझो। इस पक्ति को ढक देते है, भूल जाते है और प्रथम पंक्ति को भी तोड-मरोडकर प्रस्तुत करते है—चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था भगवान् ने बना रखी है। चार आश्रम और चार वर्णो की व्यवस्था—इसके अन्दर भी एक तत्त्व छिपा हुआ है।

चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

गुण और कर्म छिपा हुआ है। गुण और कर्म के आधार पर वर्ण-व्यवस्था बनी हुई है—इस बात को भूल जाते है। आश्रम-धर्म इसलिये

जडता को प्राप्त होता है और वर्ण-धर्म भी जडता को प्राप्त होता है। इसलिये विवेकानन्द जैसे ब्रह्मपुरुष आते हैं, ब्रह्मवित् आते है और इस जडता के ऊपर प्रहार करते है। उसको तोड़ते हैं, उसको एक नयी दिशा देते है। तो वैदिक सनातन धर्म वह है जो सब प्रकार की जडता को तोडकर आगे बढता है।

सनातन से प्रारम्भ हुआ, सनातन को ले जाने वाला, जो सनातन है वह सनातन धर्म है। सनातन से यह पैदा हुआ और सनातन को ले जायगा। जो काल से अतीत है वही तो सनातन है। सनातन के दो अर्थ होते हैं। सनातन माने सतत होना, फैलना, विस्तृत होना। तो यह सनातन से प्रारम्भ हुआ, जो काल से अतीत तत्त्व है उससे प्रारम्भ हुआ और कालातीत की तरफ ले जाने वाला। सनातन से सनातन की ओर ले जाने वाला और जो सदा रहने वाला—वह सनातन धर्म है। हम वैदिक सनातन धर्म की बात करते हैं तो सनातन क्या है—इसको समझ लिया। ब्रह्म ही सनातन है। यों तो संसार को भी कहते हैं कि अनादिकाल से चला आ रहा है। जीव भी अनादिकाल से चला आ रहा है। प्रवाहरूपेण अनादिकाल से चला आ रहा है। यह वैदिक सनातन धर्म वह है जिसका सनातन मूल है और सनातन जिसका लक्ष्य है। सनातन को लेकर सनातन में ले जाने वाला। सनातन—सदा रहने वाला जो धर्म है, उसको सनातन धर्म कहते हैं।

इसके इन विभिन्न रूपों को हम लोगो ने देखा। इस प्रकार से इसका मूल क्या है, इसका गन्तव्य क्या है, इसके अन्तर्गत इसकी सारी व्यवस्थाओ मे सनातन के हार्द-भाव को देखेंगे, तब हम उन व्यवस्थाओं में परिवर्तन कर सकते हैं, उनमे संशोधन कर सकते हैं। उनमें परिवर्द्धन कर सकते हैं और उनमें एक नूतन ओज को ला सकते हैं। धर्म वह तत्व है जो हमारी प्रत्येक अभिव्यक्ति को और उसकी प्रत्येक अनुभूति को विश्व-ताल के साथ मे, विश्व-लय के साथ में, विश्व की हारमनी (Harmony) के साथ में हमको जोडता है। इसलिये धर्म के शासन से कोई भी बच नहीं सकता। कोई भी मनुष्य इस धर्म के अनुशासन के बाहर नहीं है। ऐसी वैदिक सनातन धर्म की अवधारणा को लेकर हमको, हममें से प्रत्येक को व्यक्तिशः और सामूहिक रूप से भी नित्य-निरन्तर विमर्श करना पडेगा।

जितना-जितना हम धर्म का आचरण करते जायेंगे—उतना-उतना धर्म-तत्त्व क्या है, इसका हमको पता लगने लगेगा। हम किसी भी पुस्तक को—यही सब-कुछ है, ऐसा नहीं मानते। वेद स्वयं कहता है—मेरे परे जाओ। वेद ही स्वय कहते हैं—जो मेरे परे नहीं गया उसका श्रुति क्या करेगी? 'यस्तं न वेद कि ऋचा करिष्यति'(श्वे. उपनिषद् 4.8)—जिसने उस तत्त्व को नहीं जाना उसका ऋचा क्या करेगी? वैदिक सनातन धर्म स्वय मनुष्य को उसके अतिक्रमण का आदेश देता है। वैदिक सनातन धर्म एक ऐसे मार्ग को रखता है, ऐसी अभिव्यक्ति के मार्ग को, ऐसी अनुभूति के मार्ग को, जिसके द्वारा व्यक्ति तथा समाज निरन्तर परिपक्व होता हुआ पूर्णता की तरफ चला जाए। किन्तु जैसा मैंने आपको कहा—धर्म के तत्त्व का स्मरण करके और अपनी वर्तमान परिस्थितियो को देखते हुए आपको धर्म के शाश्वत स्वरूप को उजागर करना पड़ेगा क्योकि इन संस्थागत रूपों के अन्दर भी एक नहीं बदलने वाला रूप है और एक बदलने वाला रूप है। चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ—इनके अन्दर भी एक शाश्वत रूप छिपा हुआ पडा है और एक बदलने वाला रूप भी पडा हुआ है। अतः आपको स्वरूप की सुरक्षा करते हुए बदलाव को स्वीकारना है और स्वय भी बदलाव लाना है। अन्यथा बदलने के नाम पर यदि आपने इस सनातन रूप की पहचान को भुला दिया, विस्मृत कर दिया तो फिर हम सनातन धर्म को मानने वाले नही रहेंगे, हम भारतीय नहीं रहेगे। वैदिक सनातन धर्म का संक्षेप में आपके सामने यह स्वरूप और रूप रखा है। हम फिर इसके ऊपर और विमर्श करते रहेगे।

प्रश्न : विषमता, विषमता का कारण, कर्म-सापेक्षता—इनको और अधिक स्पष्ट करे।

उत्तर : इसका उत्तर जिज्ञासु के स्तर के आधार पर देते है। अब सामने श्रेष्ठ जिज्ञासु बैठा है तो उसे बताया जाता है—ईश्वर के अलावा किसी का अस्तित्व नहीं है। तुम भी ईश्वर हो। 'असी ब्रह्म-तुसी ब्रह्म' पंजाबी मे कहते है—मैं भी ब्रह्म हूँ, तुम भी ब्रह्म हो। सब-कुछ ब्रह्ममय है। सब-कुछ परमेश्वर है और यह बात ठीक है कि सब-कुछ ब्रह्ममय है। पर मुझे अपने-आप का अनुभव हो रहा है, जगत् का अनुभव हो रहा है। और यह जगत्

विभिन्नता को लिये हुए, विषमता को लिये हुए है। इसक
कारण क्या है? अब उसको बताते है सुनो—

जैसे तुम 24 घण्टे में जाग्रत्, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था में चले जाते हो वैसे ही सारी सृष्टि लीन अवस्था में चली जाती है, उसको बता रहे हैं। उस जिज्ञासु को बता रहे है जो सर्वत्र ईश्वर को नहीं देख सकता है। श्रेष्ठ जिज्ञासु को तो बता दिया—सब–कुछ ब्रह्ममय है। उसको तो पूर्णता की प्राप्ति हो गयी। जैसे सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार गये थे—दक्षिणामूर्ति के सामने, दक्षिणामूर्ति ने सिर्फ चिन्मुद्रा दिखाई और उनका अज्ञान नष्ट हो गया। पर एक साधारण जिज्ञासु को ज्ञान नही होता है, उसको समझाते हैं। सुनो भाई, सुनो! कोई भी कार्य होता है उसका कोई–न–कोई कारण होना चाहिये। एक घडा बना हुआ है। उसको किसी ने बनाया। संसार बना हुआ है। उसको किसने बनाया? सृष्टि लीन अवस्था में थी। लीन अवस्था में सारे प्राणी पडे हुए थे, जीव पडे हुए थे और अनादिकाल से चले आ रहे हैं। तो अपने कर्म को लेकर बैठे हुए थे। उसे कर्मफल देने के लिये सृष्टि प्रारम्भ की। क्योकि जो करेगा, सो भरेगा। कर्मफल का भोग किये बिना कर्मफल का क्षय नहीं और इसलिये उस कर्मफल को देने के लिये सृष्टि प्रारम्भ हुई। तो एक प्रक्रिया को बता दिया—सृष्टि कैसे प्रारम्भ हुई। सृष्टि प्रारम्भ हुई तो उसके अन्दर कर्मफल का अनुभव करने के लिये अपने–अपने कर्मो की पोटली को लेकर सारे प्राणी आये। एक कुत्ता है वह कार में बैठा हुआ घूम रहा है। और एक कुत्ता है वह गली के अन्दर सड रहा है। प्राणियों को भी देखेंगे, सब अलग–अलग प्रारब्ध को लेकर आये। मनुष्य में भी देखेगे, सब अलग–अलग प्रारब्ध को लेकर आये। घर–घर के अन्दर देख लो—दो भाई है तो सुख–दुःख का प्रवाह अलग–अलग ढग से पाया। ऐसे कर्मसापेक्ष होकर—जैसे प्राणियों के कर्म थे वैसे ही प्रभु ने सृष्टि कर दी। भगवान् ने अपनी तरफ से किसी को स्वस्थ शरीर, सम्पन्न कुल के अन्दर भेज दिया और किसी को दूसरे हीन कुल में भेज दिया—ऐसा नहीं किया। इसको कहते है—कर्मसापेक्ष होकर सृष्टि की। आने वाले प्रवचनो मे पुनर्जन्म, कर्मवाद को लेकर विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्रश्न : सृष्टि क्यों की? जब ब्रह्म पूर्ण है तब सृष्टि क्यों?

उत्तर : पहले भी बताया—अभी एक जिज्ञासु को एक उत्तर दिया जाता है। जैसा जिज्ञासु का स्तर है उसके अनुसार उत्तर दिया जाता है। जो अत्यन्त श्रेष्ठ है उसको कह देगे—भगवान् ने सृष्टि की ही नहीं। उससे जो नीचा है उसको कह देगे—उसकी लीला है। वह आनन्द से भरा हुआ है इसलिये लीला करता है। आनन्द आता है तो उसे अभिव्यक्त किये बिना रह नहीं सकता। और इससे नीचे के स्तर मे आकर बताते हैं कि कर्म है। ऐसे कर्म के कारण सृष्टि कर दी। क्योंकि उसके बिना फलभोग होगा नहीं उसका, इसलिये सृष्टि कर दी। इससे भी नीचे का स्तर होता है उसमें द्वैतवाद को लेकर या प्रकृति है, प्राणी है और एक परमेश्वर है—वह सृष्टि को कर रहा है। तो अनेक प्रकार की दार्शनिक स्थापनाएँ हमारे समक्ष आयी है। जैसा जिज्ञासु का स्तर होता है, उसके अनुसार उसको बता देते हैं।

प्रश्न : हम पूर्ण के अंश हैं। फिर उससे क्यों अलग होते हैं? फिर पुन: क्यों उसी में मिल जाते है?

उत्तर : आपको भूख लगती है? लगती है। आपके अन्दर जानने की इच्छा होती है? इच्छा होती है। 'क्यो होती है इच्छा?' 'मालूम नहीं।' माने आपके अन्दर की इच्छा आपको मालूम नहीं। इच्छा तो होती है। तो जो जानने की इच्छा, पूर्ण होने की इच्छा, वह आपके जीवन में ही पडी हुई है। इच्छा के बाद प्रश्न नही उठता कि वह क्यो होती है? आपके अन्दर इच्छा क्यो होती है? 'मालूम नहीं।' इच्छा तो अपने-आप पैदा होती है। इच्छाशक्ति उसी को कहते हैं जिसके बारे मे क्यो लगता नहीं।

प्रश्न : क्यो हम पूर्ण से अलग होते है और फिर पुनः उसी मे मिल जाते है?

उत्तर : ऐसा है, एक जिज्ञासु को उत्तर दिया जाता है। जिज्ञासु कौन है? जिज्ञासा क्या है? उसको अच्छी तरह पकडना। जब हम कहते हैं—हम पूर्ण का उससे अलग हुआ अंश हैं, तो इसमें त्रुटि पडी

हुई है। हम उसके अंश नहीं हैं। क्योकि वह अंश के अन्दर विभाजित हो नहीं सकता। वह तो अखण्ड है। अखण्ड का कभी खण्ड हो नहीं सकता। पूर्ण है तो पूर्ण का टुकडा हो नहीं सकता। पूर्ण की परिभाषा यही है कि वह टुकडों में नहीं बँट सकता। उसके अवयव हो नहीं सकते। पर चूँकि हमारी अनुभूति परिच्छिन्नता की है इसलिये यह अनुभूति यह आकांक्षा करती है कि वह अपनी पूर्णता की तरफ जाये। भूख लगी है तो भूख यह अपेक्षा करती है कि उसकी पूर्ति हो। जिज्ञासा है तो जिज्ञासा यह अपेक्षा करती है कि मुझे शान्त करो। एक बन्धन की अनुभूति है, वह यह अपेक्षा करती है कि स्वातन्त्र्य का अनुभव करे। तो हमारे जीवन मे ही हमारा जो प्रश्न उठ रहा है इसका उत्तर पडा हुआ है। हम चाहते है या मै चाहता हूँ कि मै मुक्त हो जाऊँ। 'मैं क्यों चाहता हूँ?' 'तो मत चाहो।' पर मैं चाह रहा हूँ। तो एक व्यक्ति को लेकर उसके सामने कुछ बातें रखी जाती है। वस्तुतः तो, सिद्धान्ततः तो ईश्वर के अलावा किसी अन्य का अस्तित्व ही नहीं है। इसलिये एक व्यक्ति को लेकर हमारे यहॉ आगे विचार चलता है। वह व्यक्ति कौन है ? अगर वह व्यक्ति दुराचारी है तो उसके सामने दूसरी बात बतायी जाएगी। अगर वह सदाचारी है तो धर्म और ब्रह्म के सम्बन्ध में एक दूसरे स्तर की बात बतायी जायगी। इसलिये प्रायः इन बातों को लेकर बडा कन्फ्यूजन (Confusion) चल रहा है। सत्संग के नाम पर, अध्यात्म-साधना के नाम पर बहुत बडा पाखण्ड भी चल रहा है, कन्फ्यूजन (Confusion) भी चल रहा है। तो यह ब्रह्म-तत्त्व और धर्म-तत्त्व अत्यन्त गहन है। जब तक हम अपने-आप को अच्छी तरह से समझने की कोशिश नहीं करेगे, परिभाषित नहीं करेंगे, तब तक न धर्म-तत्त्व हमारे सामने प्रकट होगा, न ब्रह्म-तत्त्व ही प्रकट होगा। इसलिये मैं एक साथ कई बातो को कह देता हूँ जो परस्पर विरोधी है। ईश्वर अत्यन्त करुणामय है, ईश्वर अत्यन्त कठोर है। इसलिये प्रारम्भ मे ही काव्यमय भाषा में बोला था—धर्म उसका वात्सल्य है, यह उसका प्यार है, यह उसकी कला है, यह उसके प्यार की अभिव्यक्ति है। तो उसके

प्यार की अभिव्यक्ति को धर्म कहते हैं। फिर मैंने कह दिया—उसका कठोर शासन है। उसका वात्सल्य भी है और उसका कठोर शासन भी है। इसलिये गीता के 16वें अध्याय मे कहा—जो दुराचारी व्यक्ति होते हैं उनको पकडकर मूढ योनि के अन्दर फेक देता हूँ।

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी। —गीता 16-14

जो इस प्रकार से आसुरी सम्पत्ति वाले हैं उनका मै नियमन करने वाला ईश्वर हूँ।

यह जिज्ञासा है, इसको दबाना नहीं। इसको सुरक्षित रखना और व्यवस्थित करना। धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो जायगा। क्योकि यह प्रश्न बार-बार आयेगा। जो भी सत्सग करेगा उसके मन मे यह प्रश्न बार-बार आयेगा—ईश्वर ने सृष्टि क्यों की? जब यह पूछते हैं तब राजस्थानी भाषा मे कह देता हूँ 'फलाणे ने ढींकडा काम क्यों किया?' X ने Y काम क्यो किया? भगवान् भी अनडिफाइन्ड (undefined) है और सृष्टि भी अनडिफाइन्ड (undefined) है। इसका पूरा बोध हमारे पास है नहीं। तो मैं कह दूँ—भगवान् ने सृष्टि की नहीं। इससे जिज्ञासा शान्त नहीं होती। अतः मै जिज्ञासा को दबाता नहीं। जो भी श्रेष्ठ, अच्छा साधक होगा उसके मन मे यह प्रश्न बार-बार आयेगा—भगवान् ने सृष्टि क्यों की? एक साधक हर बार इस प्रश्न को उठाता है। मैं इसको दबाता नही। हर बार उसका उत्तर देता हूँ। जैसी मन की स्थिति होती है उसके अनुसार उत्तर दे देता हूँ, ताकि धीरे-धीरे करके उसमे परिष्कार आ जाय। जिज्ञासु को पता लगने लगता है कि धर्म-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व क्या है? कैसा है?

प्रश्न : 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्।'—इसका अर्थ क्या है?

उत्तर : धर्म-तत्त्व है वह हृदय की गुहा में छिपा हुआ है। दोनों बिन्दुओ को मिलाना पडेगा—एक तरफ वेद है और एक तरफ आत्मा है। जितना-जितना धर्म का आप पालन करेगे उतना-उतना आपमे धर्म-तत्त्व को पहचानने की और उसके अनुसार आचरण करने की शक्ति आयेगी। जितना-जितना आपमे ईश्वर का प्रेम

उत्पन्न होगा, ईश्वर-तत्त्व का साक्षात्कार होगा, उतना-उतना धर्म-तत्त्व को समझने की शक्ति आयेगी आपमें और उसे हमको उत्पन्न करना है। उसके बिना धर्म-तत्त्व को समझ नहीं सकते, आचरण करना तो बहुत दूर की बात है। विवेकानन्द के पूरे जीवन को देखो, किस प्रकार से धर्म-जडताओं के ऊपर प्रहार करते गये। इसलिये वे बहुत क्रान्तिकारी लगते है। ऐसे ही शकराचार्यजी को देखो। अब तो शंकराचार्यजी को लेकर भी कुछ लोग जडता में चले गये। उन्हीं शंकराचार्यजी के अनुयायी हैं और धर्म की जडता में चले गये। धर्म के जड रूप से चिपककर बैठ गये। इसलिये जो ईश्वर को नहीं मानते, शास्त्र को नहीं मानते, परम्पराओं को नहीं मानते किन्तु भले लोग हैं, ऐसे व्यक्तियों को मैं कनविन्स (Convince) कर देता हूँ कि वे बहुत धार्मिक हैं। कुछ क्षणों में बहुत धार्मिक हैं। कोई भी सर्जक, कोई भी कलाकार, कोई भी कवि जब वह सर्जन के क्षण में होता है तो वह अत्यन्त धार्मिक होता है, क्योकि वह ईश्वर की लय को प्रकट करता है। विश्व की हारमनी (Harmony) को, सौन्दर्य को प्रकट करता है—चाहे वह पेण्टिंग हो, चाहे नृत्य हो, चाहे कविता हो। ईश्वर में एक हारमनी (Harmony), एक लय, एक सौन्दर्य निरन्तर झिलमिला रहा है, उसको जो प्रकट करता है, उस समय वह नितान्त धार्मिक होता है। विश्व की एक लय है, एक (Harmony) है। इसलिये एकान्त मे चले जाओ तो सागर उपदेश देगा—धर्म क्या है, ब्रह्म क्या है? वह उछल-उछल करके, गा-गा करके बताएगा—यह पेड़ बता रहा है, सारी सृष्टि बता रही है—धर्म-तत्त्व क्या है और ब्रह्म-तत्त्व क्या है? सत्पुरुष के अन्दर एक इन्स्पिरेशन, एक इन्ट्यूशन, एक प्रेरणा, एक स्फुरण होता है—इसको धर्म कहते हैं। तो इसका मतलब यह नही, मै किसी को मार दूँ और कह दूँ कि ऐसा स्फुरण हुआ। जैसे दुर्योधन कहता है—मै धर्म को भी जानता हूँ, अधर्म को भी जानता हूँ। धर्म में प्रवृत्ति नही है, अधर्म से निवृत्ति नही है। मेरे हृदय के अन्दर कोई है, वह जिसमे लगा देता है, वह मैं करता हूँ। तो एक दुष्ट व्यक्ति भी कह देगा—मेरे अन्दर से यह

इन्स्पिरेशन (Inspiration) आयी है। धर्म के विषय में यह प्रमाण नहीं है। इसलिये साथ में महापुरुषों को रख दिया, ऋषियों को रख दिया, स्मृति तथा वेद को रख दिया। तो बाहर की दृष्टि से देखेंगे तो पता नहीं लगा सकेंगे कि धर्म क्या है? अर्जुन ने इतने लोगों को मारा। धर्म किया या अधर्म किया? न धर्म किया, न अधर्म किया।

जहाँ भी कोई करने वाला बैठा है वहाँ धर्म भी होगा और अधर्म भी होगा। जहाँ पर कोई करने वाला ही नही रहा—'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' (गीता 11.33)—इसलिये सारे युद्ध के पश्चात् अर्जुन ने बताया कि जब मैं तीर छोडता था तब आगे-आगे एक त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र, जटाधारी जाता था। वह पहले मारता था, मेरा तीर तो बाद में जाकर लगता था। यह रहस्य है। इस पर हम मनन करेंगे तब जा करके 'त्यज धर्मं अधर्मं च' का रहस्य खुलेगा।

धर्म के कई सोपान होते हैं। उन पर चढते जाना है और अन्त में 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'—'सभी धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आजा' (गीता 18/66)—यहाँ तक पहुँचना है।

# तृतीय प्रवचन

हमने देखा कि किस प्रकार वैदिक सनातन धर्म अपौरुषेय, अनादि, सनातन वेद पर अवलम्बित है और उस वैदिक सनातन धर्म के अनुसार सारी सृष्टि के केन्द्र में मनुष्य है। केन्द्र में मनुष्य का तात्पर्य है कि सृष्टि मे उसका एक विशेष दायित्व है। वह परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। मानो उस रूप में परमेश्वर स्वयं अपने-आप को पाना चाहता है, छूना चाहता है। अपनी पूर्णता का अनुभव करना चाहता है। और इसी सन्दर्भ में हमने देखा कि किस प्रकार से वेद भगवान् के द्वारा प्रतिपादित धर्म एक समष्टि को लेकर भी धर्म की बात करता है। सम्पूर्ण सृष्टि एक बहुत बडा ईको सिस्टम (Eco-system) है और उस सृष्टि के अन्तर्गत भी प्रत्येक लोक, प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक घटक, प्रत्येक इकाई का अपना एक ईको सिस्टम (Eco-system) है। एक ईको सिस्टम के अन्दर दूसरा ईको सिस्टम है, परस्पर जुडे हुए ईको सिस्टम है। और ये सारे निरन्तर एक सुन्दर लय को लेकर, एक सौष्ठव को लेकर, एक तात्पर्य को लेकर गतिमान हैं। इस संसार में असंख्य ईको सिस्टम्स है। जो संसरण करता रहता है उसको संसार कहते हैं—'संसरति इति संसारः। 'गच्छति इति जगतः'—जो निरन्तर चलता रहता है उसको जगत् कहते हैं।

आज हम इस सन्दर्भ में देखें—यह जो मनुष्य है वह कामनाओं को लेकर आता है। इसलिये कामनाओं की पूर्ति का मार्ग क्या है—वह तो वेद भगवान् ने बता दिया। और उस सन्दर्भ में मैने आपको बताया था—कामना-पूर्ति के लिये एक व्यक्ति के सामने चार पुरुपार्थ रखे जाते है और चार आश्रम उसके सामने आते है, पर व्यक्ति कभी भी अकेला नहीं होता। व्यक्ति समाज का एक अंग होता है। समाज व्यक्तियों को लेकर बनता है। व्यक्ति के अन्दर एक समाज होता है और समाज का भी एक व्यक्तित्व होता है। इसलिये व्यक्ति और समाज का हमारे यहाँ कोई संघर्ष नहीं रहा। समाज का भी एक व्यक्तित्व होता है। राष्ट्र का भी एक

व्यक्तित्व होता है। समाज को लेकर वह भी एक विकास की तरफ बढ़े, इवोल्व (Evolve) हो। उसका भी एक उत्क्रमण हो, उसकी भी एक उत्क्रान्ति हो, इसलिये समाज की दृष्टि से चार वर्णों की बात की, व्यक्ति की दृष्टि से चार पुरुषार्थों की एवं चार आश्रमों की बात की। इस पर हम विस्तार से बात करेंगे। भगवान् कहते हैं—'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं'—चार वर्ण मैंने बनाये। ऐसा कहने वाला कौन है? यह जो कहने वाला तत्व है उसके अलावा सृष्टि मे और किसी का अस्तित्व नहीं है। वह परब्रह्म स्वयं कह रहा है। उस परब्रह्म मे सृष्टि की दृष्टि से, मनुष्य की अपेक्षा से एक ईश्वरत्व भी है। इसलिये ईश्वर-तत्व और धर्म-तत्व निरन्तर परस्पर एक-दूसरे से जुडे हुए और नाना प्रकार के आयामो को लेकर अपने-आप को अभिव्यक्त करते हैं। इसलिये आज हम इस पर बात करेंगे।

वैदिक सनातन धर्म वर्तमानजीवी धर्म है। वह अतीत की उपेक्षा नहीं करता, पर अतीत मे जाकर डूब भी नहीं जाता। अतीत के बहुमूल्य रत्नो को ले करके, प्रेरणाओं को ले करके, जीवन-मूल्यों को ले करके उसका वर्तमान में संस्करण करता हुआ आगे बढ़ता है। वह भविष्य में किसी सुख की कल्पना को लेकर उसमें खो नहीं जाता, भविष्य पर दृष्टि रखता है। वर्तमान में अतीत के मूल्यों को लेकर वह भविष्य मे स्पन्दित होता है, गति करता है। इसलिये हमारे वैदिक सनातन धर्म मे काल की एक अद्भुत अवधारणा है।

वह एक अकाल को काल के अन्दर लेकर और फिर काल के प्रत्येक क्षण में शताब्दियों को घूँट-घूँट कर पीने वाले पौरुष को व्यक्ति के सामने रखता है। क्षण-क्षण की प्याली के अन्दर शताब्दियों को, युगो को घूँट-घूँट कर पिएँ—हम ऐसे जिएँ। कविवर अज्ञेयजी लिखते है—'काल की दुर्वह गदा को एक बाल-क्षण तोलता है।' हमें उस बाल-क्षण को पाना है। क्योकि उस क्षण में सारा-का-सारा काल आकर समाहित हो जाता है। इसलिये हमारे यहाँ पर प्रतिदिन की पूजा के संकल्प में देश और काल के अतिक्रमण का संस्कार उत्पन्न होता है। हमारे यहाँ राष्ट्र की बात भी की है। उससे ज्यादा सूक्ष्म एवं स्वतन्त्र बात भी की है। देश को लेकर हम देश के अतीत भी होना चाहते है। हम काल के अतीत भी होना चाहते है। हम अपने-आप के भी अतीत होना चाहते है। हम स्वयं

अपना अतिक्रमण भी चाहते है। इसलिये प्रतिदिन, पूजा के पूर्व हम सकल्प लेते हैं—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणः द्वितीय परार्द्धे श्वेतवाराह कल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरे अष्टविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे, भारतवर्षे, .क्षेत्रे, नगरे, ...नाम संवत्सरे, .. अयने, ..ऋतौ, ..मासे, .. पक्षे, पुण्यतिथौ . .वासरे, सर्वेषु ग्रहेषु यथा-यथा राशिस्थानस्थितेषु, ...नामा, गोत्रोत्पन्नोहं . देवता प्रीत्यर्थे पूजन करिष्ये।

हम इसको बोलते तो हैं पर पूर्णतः इसका अर्थ नहीं समझते। सृष्टि को किसने प्रारम्भ किया है? हम कहते हैं—यह प्रतीक है। बडा दिव्य प्रतीक है। पद्मनाभ के अन्दर से वह सृष्टि प्रकट हो रही है। आज हम इसका थोड़ा चिन्तन करेंगे। हमारा सोलर सिस्टम घूम रहा है। हमारी गैलेक्सी में स्थित एक केन्द्र के चारों तरफ यह घूम रहा है। एक चक्र पूरा करने मे यह जितना समय लेता है उसको एक मन्वन्तर कहते हैं। एक मन्वन्तर में 30 करोड़, 67 लाख, 20 हजार वर्ष होते हैं। एक मन्वन्तर में 71 चतुर्युग होते है। एक चर्तुयुगी होती है 43 लाख, 20 हजार वर्ष की। इसमें कलियुग होता है 4 लाख, 32 हजार वर्ष का, द्वापर 8 लाख, 64 हजार वर्ष का, त्रेता 12 लाख, 96 हजार वर्ष का और सत्ययुग 17 लाख, 28 हजार वर्ष का होता है। कलियुग का दुगुना द्वापर, कलियुग का तिगुना त्रेता, कलियुग का चौगुना सतयुग होता है। ब्रह्माजी के एक दिन को कल्प कहते है। एक कल्प मे 14 मन्वन्तर होते है। प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में एक जल-प्रलय या सन्धि होती है। एक सन्धि सत्ययुग-मान (17,28,000 वर्ष) की होती है। 14 मन्वन्तरों मे 15 सन्धियॉ होती हैं। इस प्रकार कल्पमान 4 अरब 32 करोड वर्षो का हुआ। यह ब्रह्माजी का एक दिन है। उतनी ही उनकी रात होती है। इस प्रकार से उनका महीना, इस प्रकार से उनका वर्ष, ऐसे सौ वर्ष बीत जाते हैं तब ब्रह्माजी की आयु पूर्ण हो जाती है। अभी ब्रह्माजी के 51वे वर्ष का पहला दिन चल रहा है। इसमें भी 7वें मन्वन्तर के अन्तर्गत 28वीं चतुर्युगी का कलियुग चल रहा है। पूजा-संकल्प में काल के इस विस्तार का उल्लेख होता है। मनुष्य के सामने काल का ऐसा स्वरूप आता है। वह भयभीत जैसा हो जाता है जब

काल के पार जाने का एक दिव्य लक्ष्य उसके सामने रखा जाता है। काल के पार जाना, देश के पार जाना। अपनी लघु अस्मिता को लेकर देश, काल, वस्तु के पार, उस अन्तरात्मा का साक्षात्कार करना है—ऐसी हमारे सामने अवधारणा रखी जाती है, ऐसा लक्ष्य रखा जाता है। हमारे सामने जब चार पुरुषार्थ रखे जाते है—धर्म-पुरुषार्थ, अर्थ-पुरुषार्थ, काम-पुरुषार्थ और मोक्ष पुरुषार्थ तो इनके अन्दर सबसे महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थ है वह मोक्ष है, जिसके द्वारा व्यक्ति में, पूरे समाज में, पूरे राष्ट्र में एक ऐसी त्वरा आती है, एक ऐसा वेग आता है जिससे कि वे सर्वांगीण समृद्धि को प्राप्त करते हैं। भावावेश मे कभी कोई कह सकता है कि मुझे मोक्ष नहीं चाहिये या मोक्ष एक स्वार्थ की भावना है। पर वैदिक सनातन धर्म जब मोक्ष की बात करता है, उसमें और एक अन्य पन्थ को मानने वाला जब मोक्ष की बात करता है उसमें, जमीन-आसमान का अन्तर है। इसलिये

**वेदान्त सिद्धान्तनिरुक्तिरेषा ब्रह्मैव जीवः सकलं जगच्च।**
**अखण्ड रूपस्थितिरेव मोक्षो ब्रह्माद्वितीये श्रुतयः प्रमाणम्।।**

—विवेक चूडामणि

ब्रह्मरूप हो जाना ही मोक्ष है। आत्मा-ब्रह्म-एकता का अनुभव करना ही मोक्ष है। परन्तु अपने-आप को स्वीकार करना मनुष्य का धर्म है। सारे प्राणियो के अन्दर कुछ-न-कुछ एक Common चीज है। यदि उनके अन्दर वह तत्त्व Common है तो हम कहते हैं वह उनका धर्म है। मैं यहाँ पर एक अग्नि के स्फुलिंग को छुऊँ और अमेरीका में जाकर छुऊँ और दोनो जगह एक ही दाहक शक्ति का अनुभव करूँ तो कहते है—यह अग्नि का धर्म है। जल का अपना एक धर्म है। पृथ्वी का अपना धर्म, वायु का अपना धर्म, सिंह का अपना एक धर्म है। वैसे ही मनुष्य का धर्म क्या है? सारे मनुष्यो के अन्दर एक मनुष्यत्व है, एक ऐसा तत्त्व है जो उसके अन्दर नही रहे और निकल जाये तो वह मनुष्य, मनुष्य नहीं रहेगा। वह तत्त्व क्या है? उसको हम धर्म कहते है। कल मैने आपके समक्ष एक महत्त्वपूर्ण बात कही थी—सारे-के-सारे Eco-System को धारण करने वाला एक तत्त्व है, वह अनन्त तत्त्व है, वह अनन्त नाग है। उसको भी हम धर्म कहते हैं। और उसमें प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक प्राणी का अपना एक धर्म है। पर

मनुष्य है उसमे एक वैशिष्ट्य प्रकट होता है और कर्म करने की एक क्षमता, एक स्वातन्त्र्य प्रकट होता है। तो मनुष्य का स्वयं का धर्म क्या है—इसको पहचानना पडेगा। वेदव्यासजी कहते है—

न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं ही किञ्चित्

जो युनिवर्सल (Universal) सत्य है वह अपने-आप को मनुष्य में प्रकट करता है, मुखरित करता है। वह उसमे से झॉकता है, अपने-आप को वह अभिव्यक्त करना चाहता है। यह मनुष्य की मनुष्यता है। इसलिये उसके विरुद्ध मनुष्य यदि किसी भी प्रकार का आचरण करेगा तो वह अपने धर्म से च्युत हो जाएगा। इसलिये मैंने आपको बताया कि मनुष्य ऐसा कौन-सा आचरण करे, जिसके द्वारा मनुष्य का मनुष्यत्व सुरक्षित रहे? क्योकि उसमे उसके विरुद्ध जाने की एक क्षमता है। कर्म करने की एक क्षमता है, एक स्वातन्त्र्य है उसमें, मनुष्य कौन-सा आचरण करे, जिसके द्वारा उसका मनुष्यत्व, उसका मूलभूत स्वभाव, उसका स्वधर्म सुरक्षित रहे? उसको भी हम धर्म की संज्ञा देते है और उसके लिये कहा—धर्म के दस लक्षण हैं। मनु महाराज ने बताया था—धृति, क्षमा, इन्द्रियसंयम आदि ये सारे-के-सारे शाश्वत धर्म हैं। न बदलने वाले धर्म हैं। आज हम मनुष्यत्व का चिन्तन करेंगे।

मनुष्य कामनाओं को लेकर आता है और इसलिये वेद कामनापूर्ति का मार्ग बताता है। कामनापूर्ति का मार्ग क्या है, इसके लिये कल आपको संकेत दिया था। कामनाओं को दबाना वैदिक धर्म नहीं सिखाता। प्रयोग करने की वह एक स्वतन्त्रता देता है। कई ऋषियों ने प्रयोग किया मन को लेकर, अन्तःकरण को लेकर। प्राण को लेकर मन को स्तब्ध करने का प्रयास किया। पर वैदिक सनातन धर्म का मूल स्वर है—अपने-आप को स्वीकारना। जैसे हम है वैसा स्वीकार कर लेना। सीधे ही अपने-आप को मैं ब्रह्म हूँ, सोऽहम्-सोऽहम् कहना प्रारम्भ कर देना—यह वैदिक सनातन धर्म नहीं सिखाता। क्योंकि एक स्वस्थ मनुष्य के सामने आती है उसकी कामनाएँ। 'काम' को तीन में विभक्त किया—पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा। इसलिये कामनापूर्ति के लिये वैदिक सनातन धर्म कहता है—तुम इस सृष्टि के अंग हो। बेशक महत्त्वपूर्ण अंग हो और एक बडा दायित्व तुम्हारे ऊपर है क्योकि तुम्हारे अन्दर कामनाएँ हैं। मनचाहे ढंग से

कामना की पूर्ति नहीं कर सकते। अन्य सारे प्राणी अपने वातावरण के द्वारा नियन्त्रित होकर अपनी कामनाओं की पूर्ति करते हैं। मनुष्य मे स्वातन्त्र्य है, इसलिये वह अपनी कामनाओं से अपने पर्यावरण में एक असन्तुलन, एक प्रदूषण पैदा कर सकता है, उसका शोषण कर सकता है। इसलिये शास्त्र कहते हैं—वह उसका दोहन करे, शोषण नहीं करे। न उसका प्रदूषण करे, न उसका शोषण करे, परन्तु उसका दोहन करे, जैसे गाय को दुहते है। पर वैसे गाय को नहीं दुहना कि इजेक्शन लगा दिया और उसका जो वत्स है, पुत्र है उसको दूध से वंचित कर दिया और खूब-सारा दूध निकाल लिया। गाय को कुछ ऐसा भोजन खिला दिया कि उसके अन्दर से जबरदस्ती दूध निकल पडे। महात्मा गॉधी को जब यह पता लगा कि गाय को इंजेक्शन देकर अधिक दूध निकाल लिया जाता है तो उन्होंने गाय का दूध पीना ही बन्द कर दिया। इसलिये सारे पर्यावरण का दोहन करना। उस दोहन की प्रक्रिया में पहले पोषण करना आवश्यक होता है। पहले पोषण, फिर दोहन। तब जाकर कामनाओं की पूर्ति करना—ऐसा हमारा शास्त्र कहता है। और उसको बहुत ही सुन्दर ढंग से भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में बताया—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्।।

—गीता 3.10

यज्ञ तुम्हारी कामनाओ को पूरा करने वाली एक गाय के समान है। गाय का भी चिन्तन करेंगे। हम गाय में, गोविन्द में, गंगा में, गीता मे, इन प्रतीकों मे कहीं उलझ नही जाएँ। इसलिये बहुत गहराई में जाकर ऋषियों के तात्पर्य को समझना पडेगा। गाय में 33 करोड देवता है। इसके रोम-रोम मे देवता हैं। 33 कोटि देवता हैं। सस्कृत में कोटि का मतलब केटेगरी (Category) यानी प्रकार होता है। 33 कोटि यानी 33 प्रकार के देवता इस सारे ब्रह्माण्ड को चला रहे है—11 रुद्र है, 8 वसु है, 12 आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। कहने को कितने ही देवता कह दो, पर वेद मे बताया 33 प्रकार की चिन्मय शक्तियॉ हैं जो सारे ब्रह्माण्ड को चला रही है।

अतः यज्ञ की प्रक्रिया को सामने रख दिया। यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा प्रत्येक ईको-सिस्टम (Eco-System) चल रहा है। एक मनुष्य को पैदा

किया। मनुष्य मे भी एक यज्ञ की प्रक्रिया चल रही है, पर अपनी कामनाओं के जोर के कारण और अपने को प्राप्त स्वातन्त्र्य के कारण, अपने को प्राप्त वैशिष्ट्य के कारण उस यज्ञ की प्रक्रिया को वह पूरा कर नहीं पाता। उसमे एक खलल पैदा कर देता है, उसमें एक बाधा उत्पन्न कर देता है, उसमे एक असन्तुलन उत्पन्न कर देता है—वह चाहे कुछ सीमित काल के लिये ही हो। और जो हमारा एक पर्यावरण है, एक हमारा बृहद् ईको सिस्टम है, वह अपने उस काल के आयाम के अनुसार चाहे एक वर्ष मे, चाहे दो वर्ष मे, चाहे दस वर्ष में, चाहे सौ वर्ष मे वापस उसका Repair करता है। उसको ठीक करता है और वह दण्ड भी देता है। यह पर्यावरण एक बडा ही जीवन्त तत्त्व है। इस पर भी हम चिन्तन करेगे। अभी हम यज्ञ की बात कर रहे थे—

**देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।**
**परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।।** —गीता 3.11

परस्परं भावयन्तः—एक घर में भी इस श्लोक के अर्थ को लगा सकते है। एक शरीर मे भी इसके अर्थ को लगा सकते है। एक समाज मे, एक राष्ट्र में इसके अर्थ को लगा सकते हैं और पूरे ब्रह्माण्ड को लेकर भी इस श्लोक का अर्थ किया जाता है। इसी के सन्दर्भ में इस श्लोक में बताया कि ये देवता भी हमसे अपेक्षा करते है कि हम उनके प्रति कुछ अर्पित करें। इनको भी अपेक्षा है। हम इनको अर्पित नहीं करते हैं तो ये क्षुब्ध होते हैं, रुष्ट होते हैं। गलत ढंग से हम अर्पित करते है तब भी उनके अन्दर एक प्रकोप आता है।

इसलिये रामजी की एक बात आपके सामने रखूँ। भगवान् श्रीराम सीता के वियोग में विलाप करते हुए घूम रहे थे। साथ में लक्ष्मण भी थे। राम का विलाप, राम का दुःख संक्रमित होकर लक्ष्मण में गया और फिर राम ने कहा कि इससे तो अच्छा है, मैं जीवन को समाप्त कर दूँ। जब अगस्त्य ऋषि को इस बात का पता लगा तो आये उनके सामने और राम व लक्ष्मण को समझाते हुए बोले—राम! तुम इतने दुःखी क्यों हो? तुम इतना विलाप क्यों कर रहे हो? उन्होंने कहा कि मेरी पत्नी का अपहरण हो गया। इससे क्या हो गया? यह शरीर पैदा हो जाता है, नष्ट हो जाता है और यह शरीर क्या है? यह तो हाड-मास का पुतला है। इसके अन्दर

रक्त और मल आदि भरे पड़े हैं। उसके लिये इतना विलाप करने की आवश्यकता क्या है? तब रामजी कहते हैं—'क्षत्रियोऽहम् मुनिश्रेष्ठ'—हे मुनिश्रेष्ठ मैं क्षत्रिय हूँ। मेरे सामने वेदान्त की बात अभी मत कीजिये। मेरा खून खौल रहा है। मैं दुःखी अवश्य हूँ पर मेरा खून खौल रहा है। आप सिर्फ मुझे ऐसा उपाय बताइये जिसके द्वारा मैं अपनी पत्नी को प्राप्त कर सकूँ। इसलिये रामजी को उन्होंने शिव की उपासना में दीक्षित किया। रामजी ने आराधना की। शिव प्रकट हुए और आपस में संवाद चल रहा था, उस प्रसंग की बात है। शिवजी कहते हैं राम से—तुझे मैंने जो यह ज्ञान दिया है, शिवगीता के नाम से प्रसिद्ध है। वेदान्त का पूरा सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें धर्म-तत्त्व, ब्रह्म-तत्त्व का पूरा प्रतिपादन है। उसका वर्णन करते हुए शिवजी कहते है—राम, तुम इस ज्ञान को हर एक व्यक्ति को मत दे देना। तो कहा—क्यो? इसको देने से क्या होगा? इससे देवता नाराज हो जायेगे और उसके काम मे बाधा डालेगे। तो उन्होंने कहा कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर की प्राप्ति के लिये आगे बढ रहा है, देवता बाधा डालेगे तब उस मनुष्य की क्या औकात है कि उनका मुकाबला कर सके? तब शिव कहते है—यदि उसमें दृढ संकल्प है, दृढ भक्ति है, तो शिव के प्रति दृढ भक्ति को देखकर देवता पलायन कर जायेंगे।

इसलिये याद रखना—आप लोग घर छोडकर निकलना चाहते हैं, तो सारे देवता क्षुब्ध होगे। यह जो इसका दाय था, मुझे देना था, वह दे नहीं रहा है, यह निष्काम कर्म के रास्ते पर चल रहा है, त्याग के मार्ग पर, संन्यास के मार्ग पर चल रहा है। तो देवता उसमे बाधा डालेंगे। देवता अपेक्षा करते हैं। क्योकि मनुष्य की रचना ही ऐसे हुई है कि वह पार्टिसिपेट (Participate) करे। उन देव तत्त्वो के साथ मे परस्पर भावना करे। आदर और कृतज्ञता के साथ उनको वह कुछ दे। उसके ऊपर ऋण पडा हुआ है। देवऋण पडा हुआ है। मै ऋण की भी आगे बात करूँगा। देवऋण, ऋषिऋण, भूतऋण, मनुष्यऋण व पितृऋण—ये पाँच ऋण हैं। कामना-पूर्ति के साथ-साथ ऋण भी चुकाए। तो कामना-पूर्ति के मार्ग के लिये बताया कि 'परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।' मनमाने ढंग से कामना की पूर्ति करेगे तो कामना तीव्र हो जाएगी। कामना कहाँ से पैदा हुई? जन्म-जन्मान्तर से वे संस्कार आते है। नन्हे-मुन्ने बालक के अन्दर वे

सस्कार छिपे हुए रहते है। ज्यो-ज्यो आयु बढती है, वे संस्कार अन्दर से निकलना शुरु होते हैं। कहने को कह देते है—बच्चा भगवान् का रूप है। बच्चा बडा सुन्दर, बडा कोमल और एकदम निर्मल, निश्छल प्रतीत होता है, जैसे दूर्वांकुर निकलते हैं, कितने कोमल-कोमल, कितने सुन्दर लगते है। इसलिये बच्चा कितना निश्चिंत, कितना भोला। वह ऊपर-ऊपर से भोला है क्योंकि उसके सस्कार अभी अकुरित नही हुए हैं। सिर्फ भोलापन प्रकट हुआ है। सिर्फ बताने के लिये कि आत्मा इतनी भोली-भाली है। आत्मस्वरूप भोलेनाथ इतने भोले हैं, यह बताने के लिये। आत्मतत्त्व का रूप प्रकट होता है। हमारा सद्योजात रूप प्रकट होता है। युवावस्था मे उस आत्मतत्त्व का एक और प्रखर रूप प्रकट होता है। ईश्वर का रूप प्रकट होता है। वृद्धावस्था में आत्म-तत्त्व का कुछ और आयाम प्रकट होता है। इसलिये नन्हे-मुन्ने बालक की सारी-की-सारी कामनाएँ बडा होने पर प्रकट होंगी। इसलिये कामनाओं की पूर्ति करने के लिये बताया कि एक नियम है। उस नियम को एक यज्ञ का नियम कहते हैं।

आप कहेंगे कि हम अपने मनमाने नियम बना लेंगे। यह मनुष्यकृत नियम है और उसके अनुसार हम कामनाओं की पूर्ति करेंगे, पर धर्म तो मनुष्यकृत नही है। मनुष्य द्वारा आविष्कृत तो हो सकता है पर मनुष्य द्वारा कृत नहीं है। वह आविष्कृत भी एक काल के प्रवाह मे होता है। मनुष्य की प्रज्ञा में, उसके अन्तःकरण में प्रकट होता है। अन्तःकरण मे राग-द्वेष के कारण कुछ मलिनता आती है तो पुनः ऋषियों की एक दीप्त प्रज्ञा के द्वारा या अवतार के द्वारा उसका समुद्धरण होता है। उसका प्रकटन होता है।

कामना की पूर्ति के द्वारा वह परम श्रेय को प्राप्त कर सकता है। क्या कभी आपने दूसरे दर्शन में इस बात को सुना है? कामनापूर्ति को हेय नहीं माना। 'धर्माविरुद्धो भूतेपु कामोऽस्मि भरतर्षभ' (गीता 7/11)। 'धर्म के अविरुद्ध काम मैं हूँ।' भगवान् कहते हैं—यह मेरा ही रूप है। जो दर्पित कन्दर्प है, वह तो दण्डित होता है परन्तु जो भक्त कन्दर्प है, जो शिव के द्वारा प्रसवित है, देवी के द्वारा प्रसवित है—वह कन्दर्प या काम तो हमारे लिये ग्राह्य है। यदि उस यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा कामना की पूर्ति होगी तो चित्त के अन्दर से अनावश्यक सवेग दूर होंगे। चित्त के अन्दर एक

निर्मलता आयेगी, चित्त के अन्दर एक कोमलता आयेगी। चित्त के अन्दर एक लालित्य आयेगा, चित्त के अन्दर एक सौष्ठव आयेगा। इसलिये कामनापूर्ति करते-करते भी उसके अन्दर निष्कामता के संस्कार आते। तो मनमाने ढंग से कामनापूर्ति नही करते। इसलिये गृहस्थ में कामनापूर्ति के लिये प्रवेश करवाया जाता है और उसके पश्चात् कामनाओं की पूर्ति यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा पूरी की जाती है। और देखिये—

**इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।** —गीता 3/12

यज्ञ के द्वारा भावित होकर देव क्या करेंगे—'इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते'—देवता श्रेष्ठ वांछित भोगों को प्रदान करेंगे।

**तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ।।** —गीता 3 12

उनके द्वारा प्रदान किया हुआ यह शरीर, ये इन्द्रियाँ, ये भोग आपको मिले। किसके द्वारा? देव के द्वारा ही तो मिले हैं। देव के दो अर्थ होते हैं—प्रारब्ध और सारे संसार को चलाने वाली चैतन्य शक्तियाँ। जो बिना इनको अर्पित किये भोग करता है, वह चोर है। गीता कहती है—

**यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।**
**भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।** —गीता 3/13

जो यज्ञ का अवशिष्ट है, जो यज्ञ का बचा हुआ भक्षण करते हैं वे सारे पापों से छूट जाते है। और जो लोग अपने शरीर-पोषण के लिये ही अन्न पकाते है, वे पापी पाप को ही भोगते है।

गीता आगे कहती है कि जो परमेश्वर द्वारा चलाए हुए यज्ञचक्र के अनुसार नहीं जीता वह पापमय जीवन जीता है और वह इन्द्रियो का दास व्यर्थ ही जीता है (गीता 3/16)। वह मनुष्य नही है। वह तो वृथा ही जीता है। वह तो पशु से भी नीचा गया। इसलिये एक मनुष्य के सामने विकल्प है कि उसे ऊपर की तरफ जाना है या नीचे की तरफ जाना है मनुष्य के अन्दर तीनो है। मनुष्य के अन्दर मनुष्य भी है, मनुष्य के अन्दर असुर भी है, मनुष्य के अन्दर देवता भी है। मनुष्य के अन्दर ये तीनो हैं इसलिये तीनो गये प्रजापति के पास और कहा—उपदेश दीजिये। तो क्या उपदेश दिया, मालूम है आपको? 'द द द' बादल गरज रहे थे। बादल

गडगडाये 'द द द'। असुरो ने समझा—हमारे अन्दर क्रोध बहुत ज्यादा है तो हमे दया करने का सकेत दिया। और देवों ने सोचा—हमारे अन्दर कामनाओं का जोर बहुत ज्यादा है इसलिये दमन करना चाहिये, इन्द्रियों को वश मे करना चाहिये। मनुष्य ने सोचा—मेरे अन्दर लोभ बहुत ज्यादा है इसलिये मुझे दान करना चाहिये।

गीता कहती है—

**यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।** —गीता 18/5

यज्ञ, दान, तप—ये मनुष्य को पवित्र करने वाले है। तो यह एक यज्ञ की प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी कामना की पूर्ति भी कर सकता है और ईश्वर को भी प्राप्त कर सकता है।

**यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।** (यजुर्वेद)

ये सारे-के-सारे धर्म कब उत्पन्न हुए? सृष्टि के प्रारम्भ में देवताओं ने उस संकल्प-रूप मानस यज्ञ के द्वारा परम पुरुष प्रजापति का यजन किया। उससे उत्पन्न हुए उनके वे धर्म (नियम या सृष्टि-उत्पति के विधान) सबसे मुख्य हुए। अतः यज्ञधर्म संसार में सबसे उत्कृष्ट है। इसलिये हमारे यहाँ यज्ञ करने के लिये बहुत जोर दिया है। इस यज्ञ की प्रक्रिया का बहुत विस्तार है। एक अत्यन्त जटिल प्रयोग है, एक परीक्षण है। इसको आप ऐसा नहीं समझना कि किसी ने कल्पना करके, अग्नि को प्रज्वलित करके कुछ डालने का कहा है। यज्ञ का स्पष्ट विधान अमुक प्रकार से वेदी का निर्माण, अमुक उसकी साइज, अमुक वस्तुओं की उसके अन्दर आहुति। उसमें भैंस का घी या डालडा नहीं चलेगा। इसलिये यज्ञ की प्रक्रिया के लिये वस्तु का भी महत्त्व है। गाय को हमने नहीं बनाया। जिसने सृष्टि को बनाया, मानव को बनाया उसने गाय को भी बना दिया। इसलिये गाय है, उसके पंचगव्य का प्रयोग करके ही यज्ञ सम्पन्न हो सकता है। यज्ञ में कीकर की लकडियाँ डाल दो तो यज्ञ सम्पन्न नहीं होगा। उसके लिये कौन-सी लकडियाँ चाहिए? उसके लिये समिधाएँ चाहिए—दिव्य वृक्ष, दिव्य पौधे। पर्यावरण-समृद्धि के नाम पर और वृक्षारोपण के नाम पर, क्या आप सर्वत्र कीकर लगा देंगे? नही। हर एक पेड का अपना एक व्यक्तित्व होता है। उसका अपना एक स्पन्दन

है—पीपल का अलग, वटवृक्ष का अलग, विल्व का अलग और शमी का अलग। प्रत्येक वनस्पति का अपना एक स्थान विश्व-संरचना मे है। इसलिये यज्ञ की प्रक्रिया बहुत ही जटिल है। यह सारे देवताओं के साथ मे आपको जोडेगी। दिखने मे आपको कुछ स्थूल-सी क्रियाएँ दिखती हैं, पर यज्ञ करने के लिये मन की पवित्रता चाहिये। मन के अन्दर एक तीव्र सकल्प चाहिये, इन्द्रियों का सयम चाहिये, मन्त्रो का स्पष्ट तथा सही उच्चारण चाहिये। ऐसा नहीं कि गुटखा खा रहे हैं और मन्त्र बोल रहे हैं या मन्त्रो का अशुद्ध उच्चारण कर रहे हैं। मै इन कलियुगी यज्ञो की बात नहीं कर रहा। पता नहीं, पैसा कहाँ से आ रहा है? पाप का पैसा, उस पैसे के द्वारा अशुद्ध सामग्री, अशुद्ध उच्चारण, अशुद्ध आचरण वाले येन-केन प्रकार यज्ञ कर लेते हैं। इससे हानि की सम्भावना है, लाभ की सम्भावना नहीं। इसलिये हमारे यहाँ पुत्रप्राप्ति के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ, और वर्षा के लिये कारीरी यज्ञ करते है। सन्तानप्राप्ति, यशप्राप्ति, धनप्राप्ति के लिये यज्ञ है। इसके लिये विशिष्ट व्यक्ति होते थे, पवित्र जीवन बिताने वाले और ईश्वर के प्रति आस्तिकता से भरे हुए। सत्त्वगुण से भरपूर व्यक्ति होते थे और उनको क्या कहते थे? ब्राह्मण कहते थे। वह एक वर्ग था जिसने सारी विद्याओं को सुरक्षित रखा था। मै यज्ञ की बात कर रहा था। यज्ञ मे आदर और कृतज्ञता के साथ कुछ अर्पित किया जाता है। तो वैदिककालीन यज्ञ मे भी कुछ प्रदूषण आया। करने वाले मे प्रदूषण आया। करने वाले के अन्तःकरण में प्रदूषण आया। काल के प्रवाह के कारण एक प्रदूषण आया।

इसलिये यज्ञ की प्रक्रिया में जब दोष आ गया तब भगवान् कृष्ण का अवतार हुआ। क्योंकि धर्म है वह एक यज्ञचक्र है। उसके अन्दर कलुष आ गया तो वह सुदर्शनचक्रधारी आया। सनातन धर्म निर्गुण, निष्क्रिय निराकार को मानता है और सगुण-निराकार को भी मानता है, सगुण-साकार को भी मानता है, अवतार को भी मानता है। कण-कण के अन्दर परमेश्वर को मानता है। हृदय में छिपे हुए परमेश्वर को मानता है। इन सभी रूपो में ईश्वर को मानने वाला वैदिक सनातन धर्म है। इसलिये भगवान् कृष्ण ने आकर यज्ञ की एक नूतन परिभाषा दी। हर काल मे एक महापुरुष आते है, अवतार आते हैं, धर्म मे परिष्कार करते है। क्योंकि

काल के प्रवाह के अन्तर्गत उसमें एक जडता आ जाती है। वेद के मन्त्रो को लेकर जडता आ गयी तो वेदव्यासजी आये और आकर वेद-मन्त्रों का विभाजन एवं सम्पादन किया। 'सत्यमेव जयते' संस्कृत को जानने वाले बैठे हैं, इसमे अशुद्धि पडी हुई है। जब हमारे राष्ट्र के लिये एक आदर्श प्रेरणा वाक्य को चुना—'सत्यमेव जयते'। पण्डित लोग बोले— इसमें त्रुटि है—'जयते' नहीं होकर 'जयति' होना चाहिये था। पर यह छांदस प्रयोग है। वेद-मन्त्र है। इसमें परिवर्तन नहीं कर सकते। शेक्सपियर ने अपने नाटक मे एक स्थान पर त्रुटि कर दी थी। तो सारे विद्वानो ने हिम्मत नही की कि उसके अन्दर परिवर्तन कर दे। यह तो साक्षात् वेद है। अपौरुषय श्रुति है। इसके तात्पर्य को हम क्या समझेगे। इसलिये इसको यथावत् स्वीकार कर लिया। तो वेदव्यासजी आये। वेदों का विभाजन किया। मैंने कल आपको बताया कि ये मन्त्र सारे विश्व मे व्याप्त स्पन्दन हैं। प्रत्येक मातृका की एक शक्ति होती है। हमारे सौर मण्डल के अन्दर ये स्पन्दन हैं।

वाणी और अर्थ सारी सृष्टि में व्याप्त हैं। उसमें भी वेदव्यासजी ने, जो साक्षात् ज्ञानावतार थे परब्रह्म के, सोचा कि इसका विभाजन करूँ। आगे तो बडे मलिन अन्तःकरण आयेंगे। पूर्व में सुनकर धारण कर लेते थे और वह आगे प्रवाहित करते थे। आगे धारण करने की वह शक्ति ही नहीं वह स्मृतिशक्ति ही नहीं रहेगी। अतः वेद का विभाजन कर दिया। पहले आपस में संश्लिष्ट थे, ग्रन्थित थे, मिले-जुले थे। उनका विभाजन कर दिया—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद। फिर उनको भय लग गया, शका हो गयी कि मैने यह उचित कार्य किया या नहीं किया। तो ध्यान किया वेद भगवान् का। वेद भगवान् ने उनको दर्शन दिये और कहा—तुमने ठीक किया है। सही विभाजन किया। नम्रता देखो उनकी। इसलिये महापुरुष आते है। इसलिये भगवान् कृष्ण आये। उन्होने कहा 'वेदो के अर्थवाद में रत अर्थात् वेदों को लेकर केवल कामनापूर्ति मे लगे लोग पूर्णता को नही पा सकते।' (—गीता, 2/42-44)

यद्यपि उन्होंने अर्जुन से कहा था कि—तू अगर मर भी गया तो स्वर्ग चला जाएगा या जीत कर पृथ्वी को भोगेगा। पर बाद में कह

दिया— 'पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक की प्राप्ति होती है' (गीता, 9/21)। तथा यह भी कहा—ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोक पुनरावर्ती हैं (गीता, 8/16)।

**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।**

ब्रह्मलोक मे भी चला गया तो वापस चला आयेगा। इसलिये कामना की पूर्ति करते-करते एक सावधानी रखी जाती है। तो मैं यह कह रहा था, भगवान् कृष्ण आये और उन्होंने यज्ञ का विस्तार कर दिया। जो यज्ञ वैदिक मन्त्रो द्वारा होता था, शुद्ध उच्चारण एवं सामग्री की शुद्धता, संकल्प की शुद्धता को लेकर , तेजस्विता को लेकर जो यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे, उनको उन्होंने दैनन्दिन जीवन के क्रिया-कलापों मे करने की विधि बताई। हम खाते हैं वह यज्ञ, पीते हैं वह यज्ञ, हम सांस लेते हैं उसको यज्ञ बना दिया, हम संयम करते हैं उसको यज्ञ बना दिया। हम जो-कुछ भी करते हैं, खाते है, पीते हैं, चलते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, सूंघते है—सबको यज्ञ बनाया जा सकता है। पर यज्ञ के लिये भी क्या चाहिये आवश्यक तत्त्व? आदर और कृतज्ञता चाहिये। एक भावना चाहिये उसके अन्दर। भावना नहीं तो यज्ञ नहीं। मन चंगा तो कठौती में गंगा—यह एक बहाना भी हो सकता है। यह कहने वाला तो रैदास था। वह वेद-मन्त्र को जानने वाला कोई पण्डित नहीं था। पर याद रखिये वेद-मन्त्रों का तात्पर्य क्या है? समझे नहीं? हमारे यहॉं पर कहा कि गुरु श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिये। श्रुति के अन्दर निष्णात होना चाहिये। क्या रामकृष्ण परमहंस श्रोत्रिय थे? श्रोत्रिय का लोगों ने अर्थ लगा लिया कि उसको वेद-मन्त्र आने चाहिएँ। वे तो सही ढंग से हस्ताक्षर भी करना नहीं जानते थे। संस्कृत भाषा की तो बात ही क्या! इसलिये श्रोत्रिय का कुछ और अर्थ लगाना चाहिये। एक व्यक्ति प्रतिदिन वेद-मन्त्र बोलता है—सत्य वद्, धर्म चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव। पर वह झूठ बोलता है, माता-पिता व गुरु का अनादर करता है, कपट करता है, द्रोह करता है, कामी-क्रोधी है।

कौन श्रोत्रिय है, कौन वेद का आचरण कर रहा है—हम इसको भूल गये। जिन्होंने इन मन्त्रो को याद रखा था उन्होने उनके ऊपर अपनी ठकुराई लगाना शुरू कर दिया। इसको उन्होंने ऐसे कहना प्रारम्भ कर दिया

मानो उन्ही की बपौती है। इसलिये भगवान् कृष्ण आये और उन्होंने यज्ञ की एक नूतन व्याख्या कर दी। इसलिये हमारे यहाॅ राजाओ के लिये, क्षत्रियो के लिये, ब्राह्मणो के लिये, सबके लिये अलग-अलग यज्ञों— राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ आदि का विधान था। उनमें विधि-विधान से विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर बहुत बडा यज्ञ किया जाता था। पर ध्यान रहे, बिना तप के यज्ञ नही हो सकता। बिना तप के दान भी नहीं हो सकता। बिना तप और दान के यज्ञ नहीं हो सकता—यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। तो यज्ञ, दान और तप—तीनों को लेंगे।

युधिष्ठिर ने बहुत बडा यज्ञ किया था विधि-विधान से। शास्त्र के मन्त्रो सहित और प्रचुरमात्रा में दान-दक्षिणा सहित किया और बैठे हुए बडी तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। इतने में वहाॅ एक नेवला दौडता हुआ आया और जहाॅ पर यज्ञ हुआ था, यज्ञ-मण्डप के अन्दर, यज्ञ-कुण्ड के आस-पास में इधर-उधर लोट-पोट होने लगा। और लोट-पोट होने के पश्चात्, वह जोरदार बोलने लगा—बेकार है, बेकार है। यह क्या यज्ञ है, बडा निकृष्ट यज्ञ है। बोलने लगा। सबने सुना। अरे! यह नेवला मनुष्य की वाणी में बोल रहा है। तो वहाॅ पर बैठे थे कृष्ण भगवान्। 'अरे भाई, इधर आना, इधर आना। क्या कह रहे हो तुम?' 'यह क्या यज्ञ है! मै तो बडी आशा को लेकर आया था कि धर्मराज युधिष्ठिर ने बडा-भारी यज्ञ किया है, इसलिये मैं जाऊॅगा तो मेरा जो आधा शरीर सोने का बना हुआ है वह पूरा-का-पूरा सोने का बन जाएगा।' 'अरे भाई! तू बता तो सही, तेरा आधा शरीर सोने का कहाॅ से हो गया?' 'एक बहुत बडा यज्ञ हुआ था। उस यज्ञ में मैं गया था। उसका जो-कुछ अवशिष्ट था, उसको कुछ मैंने खाया और कुछ मेरे अंगो मे लगा तो मेरा आधा शरीर सोने का हो गया। तब से मैं घूम रहा हूॅ। जहाॅ-कहीं यज्ञ होते हैं, वहाॅ जाता हूॅ और वहाॅ जो-कुछ बचा-खुचा होता है यज्ञ वेदी के पास, उसको खाता हूॅ, लोट-पोट होकर शरीर में लगाता हूॅ। पर अभी तक शरीर ऐसा ही है। बडी आशा लेकर आया था कि युधिष्ठिर (धर्मराज) ने यज्ञ किया है तो मेरा यह पूरा शरीर सोने का हो जाएगा।' युधिष्ठिर का चेहरा यह सुन कर मुरझा गया। तब कृष्ण भगवान् ने पूछा—बताओ, कौन-सा यज्ञ हुआ था? तब वह यज्ञ का वर्णन करता है।

कई वर्षों तक अकाल पडा हुआ था। मैं भी भूखा-प्यासा इधर-उधर जा रहा था। एक घर के अन्दर पहुँच गया, कुटिया के बाहर। मेरे सामने एक घटना घटी थी। बडी मुश्किल से इधर-उधर के चीजों को लेकर, उनको पीसकर उसका घोल बनाकर एक परिवार वाले—एक ब्राह्मण दम्पति एवं उसके पुत्र खाने ही वाले थे। इतने में द्वार पर आकर किसी ने आवाज दी भिक्षा के लिये। आवाज दी तो उस दम्पति ने अपने हिस्से को दे दिया। फिर बच्चा ने अपने हिस्से को दिया। सबने अपने-अपने हिस्सों को दे दिया। आपस में थोडी देर तक विवाद हुआ। बच्चो! तुम आगे जीवित रहना। हम तो वृद्ध हो चुके हैं, हमको देने दो। बच्चों ने भी जिद पकड ली। हम भी अपने हिस्से को देंगे। अतिथि तृप्त नहीं हो रहा था और वे सारे अपने हिस्से को देते जा रहे थे और उनके प्राण उड गये। उड नहीं गये। सामने साक्षात् नारायण आये थे। जाने किस भेष में नारायण मिल जाये। आये और घरवालों ने सब-कुछ अर्पित कर दिया। उस यज्ञ के बराबर यह कोई यज्ञ नहीं है। आदर एवं कृतज्ञता के साथ दिया जाता है। सामने जिसको अर्पित कर रहे हैं, वह होना चाहिये एक महान् तत्त्व।

इसलिये बड़ी तपस्या करते हुए, भूख-प्यास सहते हुए, बडी तितिक्षा करते हुए तीर्थयात्री आ रहे थे, गोमुख से, गंगोत्री से जल को लेकर जा रहे थे रामेश्वरम् में अर्पित करने। सनातन धर्म को देखा! कितना अद्‌भुत धर्म है। यह सनातन धर्म कितना अद्‌भुत है। इसके अनुसार तीर्थ है, मन्दिर है और किस प्रकार से विविध संस्थाओं को लेकर यह आगे बढता जा रहा है। तो आ रहे थे तीर्थयात्री और एक जगह गदहा पडा है प्यासा। जिसको कुछ देने जा रहे हैं, जिससे मिलने जा रहे हैं, वह तो हमेशा पास ही रहता है। तो उस गदहे को देखकर एकनाथजी रुक गये और अपने पानी को उसके मुँह में डालने लगे। सबने कहा—'यह क्या कर रहे हो? यह क्या कर रहे हो? इस जल को तो रामेश्वर को अर्पित करना है।' 'मेरे तो रामेश्वर यहीं पर है।' वही पर ईश्वर का दर्शन किया, वहाँ पर गदहे को नहीं देखा, प्राणी को नहीं देखा, इसलिये उस दम्पति ने—नारायण आये हैं मेरे द्वार पर, यह अनुभव किया। मै इसको अर्पित कर रहा हूँ आदर और कृतज्ञता के साथ। तो वह यज्ञ बन गया।

इसलिये कुत्ता आता है, और रोटियाँ बना रहे हैं सन्त। कुत्ता रोटी लेकर भागता है तो पीछे से घी लेकर संत—'अरे नारायण! अभी तो इसको घी लगाया नही।' नामदेवजी दौड पडते है—'अरे घी तो लगा लेने दो, फिर ग्रहण करना।' तो यह यज्ञ सम्पन्न हो जाता है।

शिवमहिम्नःस्तोत्र में—

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदे कोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम्।।

प्रतिदिन बोलते हैं। पूरे भारतवर्ष जहाँ-कहीं दशनाम सम्प्रदाय के मठ है, मन्दिर है वहाँ पर प्रतिदिन इस महिम्नःस्तोत्र का पाठ होता है।

किस प्रकार से एक घर चलाना चाहिये, किस प्रकार एक संस्था को चलाना चाहिये, किस प्रकार एक राष्ट्र को चलाना चाहिये—सारा रहस्य इस श्लोक मे छिपा हुआ है। हरि और हर में अभेद है। हरि हर के हृदय हैं और हर हरि के हृदय हैं। एक छोटी-सी 'इ' भी तो है इसके अन्दर। यह 'इ' है, यह देवी है, 'हरि' 'हर' और बीच में देवी। हरि-हर तो एक ही तत्त्व है, एक ही ब्रह्म-तत्त्व है। उसके ये अलग-अलग आयाम हैं ताकि हम उसकी उपासना कर सकें, ताकि हम उसके साथ एक हो सकें।

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोः

तो प्रतिज्ञा करके, संकल्प लेकर भगवान् हरि शिव की अराधना करने बैठ गये। एक हजार कमल पुष्पो से मै इनकी अर्चना करूँगा—ऐसा संकल्प लेकर बैठ गये। पूजा प्रारम्भ कर दी, संकल्प लेकर आसन पर बैठ गये और 999 कमल के फूल चढा दिये। अब हाथ गया तो देखा एक भी फूल नही है। तब भगवान् हरि को स्मरण आया 'मै तो कमलनयन हूँ। मेरे चरणकमल, मेरे करकमल, मेरा नाभिकमल, मेरा मुखकमल—पाँच कमल हैं हरि के रूप में। भगवान् शिव के कितने मुँह हैं? पचानन हैं। सृष्टि करना, स्थिति करना, लय करना, निग्रह करना, अनुग्रह करना—ये ब्रह्म के पचकृत्य है। तो भगवान् में क्या हैं? ये चरणकमल, करकमल, नाभिकमल, मुखकमल और नेत्रकमल; नाभिकमल से सृष्टि होती है,

चरणकमल से स्थिति होती है, करकमल से गदा लेकर चूर-चूर कर देते है, मुखकमल से अनुग्रह करते हैं और नेत्रकमल से निग्रह करते है।

ये हरि हैं, ये भोले बाबा नहीं है, टेढी नजर से ऐसे देखा तो अर्जुन का सारा पौरुष, सारा ज्ञान धडाधड गिर गया। अर्जुन कहता है— अच्युत, मेरे रथ को दोनो सेनाओं के मध्य में स्थापित करो। भगवान् कहते हैं—मुझे 'अच्युत' कहता है ? क्या समझकर कहता है ? जो उन्होने देखा, जो अर्जुन पर नजर पडी तो अर्जुन मोहाविष्ट हुआ। नेत्रों से निग्रह की शक्ति काम करती है।

**गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।**
**या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि:सृता।।**

यह जो पद्मनाभ है उनके मुखपद्म से यह अनुग्रह रूपी गीता निकली है अतः मुखपद्म क्या है? अनुग्रह करने की शक्ति। इसलिये भगवान् ने सोचा—मैं तो कमलनयन हूँ, कमलापति हूँ, मेरे नेत्र कमल हैं।

नेत्रकमल के द्वारा देखा जाता है। जीवन की दृष्टि। वह जीवन-दृष्टि क्या है? उस दृष्टि को उखाडा और उसको अर्पित किया। मेरे नेत्र ही तो कमल हैं। भगवान् शिव ने देखा—अरे यह नेत्रकमल को ही अर्पित कर रहा है। तो अर्पित करते ही वहाँ पर

**गतो भक्त्युद्रेक: परिणतिमसौ चक्रवपुषा**

उसके अन्दर भी एक ज्वार उठा। वह शिव देख रहे थे। इसलिये अपनी दृष्टि को वहाँ पर अर्पित किया। अपने अद्वैत को, अपनी आत्मा को अर्पित किया।

मै कुछ सोचता हूँ, वह कुछ सोचती है। मै इधर जाता हूँ, वह उधर जाती है। भूल जाते है—सप्तपदी करते समय हमने क्या प्रतिज्ञा की थी। दोनों दृष्टि मिलाकर चलेंगे। अब इसकी दृष्टि इधर, उसकी दृष्टि उधर। संस्था की दृष्टि इधर और कार्यकर्ता की दृष्टि उधर। कैसे काम चलेगा? दृष्टि दोनों की मिली हुई। उसमें भी एक भाव। भावशून्य संस्था कोई संस्था थोडे ही होती है! भावशून्य परिवार कोई परिवार थोडे ही होता है! जो अपने प्रत्येक घटक के प्रति भावना से भरा हुआ है। पर परिवार के अन्दर एक माँ की भावना होती है, एक पत्नी की भावना होती है, एक पति का भाव

होता है, एक भाव सारे परिवार को ओत-प्रोत करके सींच-सींच करके रखता है। एक दृष्टि होती है, एक भाव होता है। इसलिये इसमें एक दृष्टि और उसमें एक भाव का ज्वार। इसमे भी भाव, उसमे भी भाव, दो भावो का ज्वार मिल करके क्या हुआ? एक सुदर्शनचक्र बन गया। दृष्टि-दृष्टि मिली और सुदर्शन हो गया, सुदर्शनचक्र हो गया—

**गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा।**
**त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर! जागर्ति जगताम्।।**

निरन्तर यह जगत् घूम रहा है। सारा संसार घूम रहा है। न्यूट्रोन, प्रोटोन, इलेक्ट्रोन—सब-कुछ घूम रहा है। कितनी गति से घूम रहा है! सारी गेलेक्सीज (Galaxies) नृत्य कर रही है। ये सब परस्पर जुड़े हुए हैं, परस्पर अवलम्बित हैं, उनमे एक सम्बन्ध है—भावमय, ज्ञानमय। यह जगत् सारा-का-सारा घूम रहा है। यहाँ पर सोचो तो आपको पता लगेगा—यज्ञ किसको कहते है। आदर और कृतज्ञता के बिना, एक समझ के बिना, यह सम्पन्न नहीं हो सकता। यह हरि और हर की बात बतायी। मनुष्य के द्वारा कब यज्ञ सम्पन्न होगा? जब उसके अन्दर एक ममत्व का विस्तार हो, एक अहंता का विसर्जन हो। ममत्व का अर्पण, ममत्व का विस्तार। ममत्व को काटूँ। यह कहूँ या ममत्व का विस्तार कहूँ। दोनों को कहना पड़ेगा। इसलिये ममत्व का विस्तार और अहंता का अर्पण हो तब जाकर यज्ञ सम्पन्न होता है।

कामना की पूर्ति यज्ञ की प्रक्रिया से करें। वैदिक सनातन धर्म कभी नहीं कहता कि तुम अपनी कामनाओ को इस प्रकार से दबाकर रखो। अपनी क्षमताओ को, अपनी रुचियो को, और अपने मे जो प्रतिभा छिपी है उसको पहचानना, उसको अभिव्यक्त करना और उसका प्रयोग करना। वह परमेश्वर चाहता है कि हम कम्प्यूटर बनाएँ। वह चाहता है कि हम सुपर कम्प्यूटर बनाएँ, हम जेट बनाएँ, हम आकाश में उपग्रह छोड़ें। पर कैसे करे? रुद्री-पाठ में आया है—'अणिमा च मे महिमा च मे, ... वित्त च मे .. लोहं च मे सीसं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।।' मै उसमे जोडता हूँ कम्प्यूटरं च मे, स्कूटर च मे, कारयानं च मे, उपग्रह च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्। यज्ञ की दृष्टि के द्वारा हमारे यहाँ एक भौतिक समृद्धि को प्राप्त किया था। पर ज्योंही हमने सोचा—'यह मैने किया', तब क्या हो

जाता है? अहकार वढ जाता है। यह आसुरी सम्पत्ति हुई। इसलिये इसको रोकने के लिये यज्ञ की प्रक्रिया को ठीक ढंग से समझना पडेगा। मनुष्य कोई भी चीज नूतन कर नही सकता। मनुष्य ने कम्प्यूटर बनाया है तो भगवान् ने सुपर-सुपर, सुपर-सुपर कम्प्यूटर बना कर रखा है। मैं विद्यार्थियो के बीच में जाता हूँ, मैं बच्चों से पूछता हूँ—बच्चो, आपका कम्प्यूटर ठीक काम कर रहा है या नहीं? आपके पास ऐसा कम्प्यूटर है जो दिन मे भी काम करता है, आपके स्वप्न मे भी काम करता है। छोटे-छोटे बच्चे अपने सिर पर अंगुलि रख कर कहते हैं—हॉ, ठीक काम करता है। इसलिये हमने कम्प्यूटर बना लिया तो क्या बना लिया? हमने उपग्रह छोड दिया तो क्या छोड दिया? देखो, चारों तरफ ज्योति-पुज ब्रह्माण्ड मे किस प्रकार घूम रहे है। मनुष्य नया कुछ नहीं कर सकता। ईश्वर की अनुकृति करें। कृतज्ञता का अनुभव करें। जब क्लोनिंग हुई। अपने-आप को विद्वान समझने वाले कहने लगे—अब ईश्वर को मानने की जरूरत नहीं है। हम ही प्राणियों को बनाना शुरु करेंगे। कैसे बनाओगे? तुम्हारे पास मेटीरियल (Material) क्या है? तुम्हारे पास जो बुद्धि है वह प्रभु द्वारा प्रदत्त है। पता नही कहॉ से एक अहंकार आ गया—मै करता हूँ। सारा-का-सारा क्षेत्र ईश्वर के द्वारा प्रदत है, अपरा प्रकृति के अन्तर्गत आ गया। अपरा प्रकृति क्या है? इसे गीता में देख लो। हमारी ये इन्द्रियॉ, हमारा यह मन, हमारे प्राण—सब-कुछ अपरा प्रकृति के अन्दर आयेगा। सातवे अध्याय में अष्टधा प्रकृति की बात कही—अव्यक्त, महत्-तत्त्व, अहकार और पच-तन्मात्राएँ—यह है अष्टधा प्रकृति और जीवरुपा है परा-प्रकृति। ईश्वर को जानना है, जगत् को जानना है, तो आपको अपने शास्त्र का अवलम्बन लेना पडेगा। हम क्या नया बनाते हैं? अरे इतने कृतघ्न मत बनो! भगवान् चाहते है कि हम नूतन-नूतन सर्जन करे, अद्भुत सर्जन करे। एटम बम बनाओ, मना कौन करता है? जब मैं अहिसा-दर्शन को मानने वालो के बीच मे यह बात कहता हूँ तो वे बौखला जाते है—ये महात्मा होकर इस प्रकार की बात करते हैं! अर्जुन के पास जाकर वेदव्यासजी ने कह दिया—जाओ, तपस्या करो, पाशुपत अस्त्र को प्राप्त करो। तुम्हारे सामने इतने बडे-बडे योद्धा है, द्रोणाचार्य हैं, भीष्म हैं, कर्ण है, तुम उनका मुकाबला कर नही पाओगे क्योकि इनके पास अनेक दिव्य अस्त्र हैं। जाओ, शिव की अराधना करो, पाशुपत अस्त्र को प्राप्त

करो। अस्त्र-शस्त्र को प्राप्त करो। पर यज्ञेन कल्पन्ताम्—यज्ञ की प्रक्रिया से प्राप्त करो। यज्ञ अर्थात् सबके परम कल्याण का विधान।

सारी सृष्टि यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा चल रही है। इसलिये उस यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा कामनापूर्ति करें और साथ-ही-साथ हमारे अन्दर छिपी हुई प्रतिभाएँ हैं, रुचियाँ है, सम्भावनाएँ हैं—उनको अभिव्यक्त करे, उनको ऊँचाई तक ले जाएँ विश्व की Harmony को, विश्व के संगीत को सुरक्षित रखते हुए, विश्व के सौन्दर्य को सुरक्षित रखते हुए। तभी यज्ञ की प्रक्रिया के द्वारा हमारे अन्दर एक शुद्धि आयेगी, हमारे अन्दर एक वैराग्य आयेगा, हमारे अन्दर एक आकुलता आयेगी, हमारे अन्दर प्यार का एक समुद्र उमडने लगेगा।

**'तमेतम् वेदानुवचनेन ब्राह्मणाः**
**विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसा अनाशकेन'** —बृ उ 4 4 22

एक विविदिषा उत्पन्न होगी। वह जीवन ही क्या, जिसके ढलते-ढलते उसमें एक आग उत्पन्न नही हुई। रोम-रोम के अन्दर एक आग उत्पन्न हो जाय कि कब उससे मिलेंगे, कब उससे मिलेगे? जीवन बीता जा रहा है। बुद्धि कब आकुल-व्याकुल होकर मीरा की तरह कहेगी—'मेरा दर्द न जाने कोय'। हमारी प्रज्ञा मीरा की तरह व्याकुल हो जाय। इसलिये जीवन के बीतते-बीतते एक निश्चय आ जाय, एक आकुलता आ जाय, एक व्याकुलता, एक प्रीति आ जाय। तब समझो आपका जीवन एक धन्य जीवन है। उसके लिये हमारे यहाँ पर विधि बतायी गयी है। जो आश्रमों का विधान है, जो पुरुषार्थो का वर्णन और जो समाज को लेकर एक चिन्तन है, वर्तमान सन्दर्भ मे हम उसको लेकर कैसे चलें—उसके ऊपर आपको, हमको, सबको चिन्तन करना पडेगा। क्योंकि आज जगत ग्लोबलाइजेशन (Globalisation) के कारण एक घर जैसा हो रहा है। उसमें एक साथ आसुरी शक्तियाँ भी काम कर रही हैं और दैवी शक्तियाँ भी काम कर रही हैं। क्योकि इस जगत् की रचना ही ऐसी है। गीता में कहा है।

**द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।** गीता, 16/6

अर्थात् इस लोक मे भूतो की सृष्टि दो प्रकार की है—दैवी और

आसुरी। आज के युग में वह दैवी तत्त्व और आसुरी तत्त्व हमारे अन्तःकरण में भी विद्यमान है। ऐसा नहीं सोच लेना कि हम सारे-के-सारे देव-पक्ष के है। इसलिये इस श्लोक का अर्थ केवल आध्यात्मिक ही नही लगा लेना। सारी सृष्टि को लेकर यह गीता का श्लोक वर्णन कर रहा है और हमारे अन्तःकरण का भी इसमे सांकेतिक उल्लेख है।

इस प्रकार से यह जो हमारा वैदिक सनातन धर्म है वह कामनापूर्ति के मार्ग को भी हमारे सामने प्रस्तुत करता है और साथ में यह विधान भी करता है कि प्रतिदिन प्रत्येक गृहस्थ को पंचमहायज्ञ करने चाहिएँ। क्यो करने चाहिएँ? क्योकि हमारे ऊपर पॉच ऋण है। कुत्ता, गाय, शेर—इनके ऊपर कोई ऋण नही है। हमारे ऊपर ऋण हैं क्योंकि मनुष्य में मनुष्यत्व है। हमारे अन्दर प्रज्ञा है। मनुष्य पर पॉच ऋण है—देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, मनुष्यऋण एवं भूतऋण। मनु स्मृति में तो तीन ऋणों का उल्लेख है, कही पर चार ऋणों का उल्लेख है। आप विस्तार से समझना चाहे तो आप पॉच ऋणों को समझें क्योंकि इनसे सम्बन्धित पंचमहायज्ञ हैं। ऋणो से उऋण होने के लिये है पंचमहायज्ञ—देवयज्ञ, ऋषियज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ व भूतयज्ञ। प्रत्येक यज्ञ को प्रतिदिन करना चाहिये। बाली द्वीप में आज भी ये पाँचो यज्ञ किये जाते हैं। आप बुरा नहीं मानना, इस्लाम मतानुयायी भी पॉच यज्ञो को करते हैं, चाहे बिना समझे ही करते हो। उनका देव भी पता नहीं कैसा देव है? उनके पास कॉन्सेप्ट (Concept) नही है यज्ञ का। पर वे करते अवश्य है, संकुचित रूप मे करते हैं। एक त्रुटिपूर्ण ढग से करते हैं। पर हमसे तो अच्छे हैं जो कुछ नहीं करते। हमसे तो गॉव के लोग अच्छे है, जो भावना सहित इन यज्ञो को करते हैं, चाहे इनके रहस्य से अनभिज्ञ हों। बिना आदर एवं कृतज्ञता के यज्ञ नही होता। एक गॉव का व्यक्ति है, किसी झरने में स्नान कर रहा है और स्नान करता-करता पानी लेकर कुछ नही बोलता, सिर्फ जल-अंजलि को अर्पित करता है सूर्य की ओर मुख करके; और एक व्यक्ति जो मन्त्रों सहित कर रहा है सध्या-वंदन, पर कोई भावना नही है। तो इसके सन्ध्या-वंदन से उसका संध्या-वंदन श्रेष्ठ है। इसलिये पाँच महायज्ञ क्या हैं, आप सबको गम्भीरता से चिन्तन करना पडेगा। क्योकि आप ऐसी संस्था के साथ जुडे हुए हैं जो एक पवित्र व महत्त्वपूर्ण काम कर रही है।

एकनाथजी रानाडे ने किसी भाव को लेकर, किसी लक्ष्य को, प्रेरणा को, चिन्तन को लेकर इस सस्था को प्रारम्भ किया। विवेकानन्दजी ने तो इसको प्रारम्भ नही किया था। एकनाथजी ने किया था। पर विवेकानन्दजी का यहाँ पर अवतरण हुआ था। अब वह अवतरण आप सबके अन्दर हो रहा है। आज विवेकानन्द स्वय होते तो पता नहीं इस सस्था को किस प्रकार से चलाते! चलाते कि नही चलाते! चलाते तो कैसे चलाते! शकराचार्यजी आज होते तो पता नहीं किस प्रकार से मठों का सचालन करते! मठों का स्थापन करते! महर्षि दयानन्द आज होते तो हो सकता है वे अग्रेजी मे भी बोलना शुरू कर देते। उस समय तो विरोध किया था कि सहशिक्षा नहीं होनी चाहिये। पर आज हमारे बीकानेर की दयानन्द पब्लिक स्कूल में लडके व लडकियो को साथ-साथ शिक्षा दी जाती है। वे जीन्स पहनती हैं। दयानन्दजी के सत्यार्थ प्रकाश के अनुसार तो यह सही नहीं है। लडके-लडकियाँ एक साथ पढ रहे है। बहुत बडी चुनौती है हमारे सामने। इसलिये आपके सामने बडी चुनौती है धर्म को समझना, सर्वांगीण रूप से समझना, शास्त्र के तात्पर्य को, महापुरुषों के तात्पर्य को समझना। बुरा नहीं मानना, विवेकानन्द स्वयं भी इवोल्व (Evolve) हो रहे थे। उनमें परिवर्तन देखते हैं, उनके पत्रों में परिवर्तन देखते हैं। उनके सामने एक परिस्थिति थी, जो लोग थे, उनके सामने एक अमुक प्रकार की अभिव्यक्ति की उन्होने। आज हमारे सामने विवेकानन्द होते तो हमारे सामने क्या बोलते? अतः रोज आह्वान करे विवेकानन्द का। विवेकानन्दजी के अन्दर से कौन बोल रहा था? एक विराट् बोल रहा था। उनके अन्दर से एक महान् सस्कृति बोल रही थी। सनातन धर्म, परब्रह्म उनके अन्दर से अपने-आप को अभिव्यक्त कर रहा था। उसको समझना होगा। देवऋण क्या होता है? यदि यहाँ पर त्रुटि रह गयी तो आपका ऋषिऋण पूरा नहीं होगा, जिसके अन्तर्गत राष्ट्र की सेवा आती है। ऋषिऋण के अन्तर्गत ही राष्ट्र की सेवा आती है। इसे शास्त्र आपको बतायेगा नही, आपको मनन करना होगा। आपको बहुत विस्तार से देखना पडेगा कि संस्कृति किसको कहते है, राष्ट्र किसको कहते हैं, ऋषि किसको कहते हैं। दूसरे कितने-कितने आयाम इसके अन्तर्गत हैं। देवऋण क्या है? कैसा है? कैसे उससे उऋण हो?

हम देवऋण तो उतारते रहें पर ऋषिऋण का ध्यान नही करें, हम

पितृऋण का ध्यान नही करे, मनुष्यऋण का ध्यान नही करे, भूतऋण का ध्यान नहीं करे और खूब देवऋण को उतारने के लिये माला फेरते रहें, जप करते रहें, तीर्थाटन करते रहें, पूजा करते रहें, और बाकी के सारे ऋणों को न उतारे तो चित्त मे शुद्धि नहीं आएगी और देव-पूजन मे भी रस नहीं आएगा। क्योकि ये पाँचों तत्त्व अलग-अलग नही हैं।

ऋषिऋण को उतारने के लिये आप जो-कुछ कर रहे हैं वह भी ठीक ढंग से नहीं कर रहे, पूरे भाव से नहीं कर रहे, बिना समझे हुए कर रहे है, इसलिये ऋण उतरेगा नही। इसलिये देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, भूतऋण—इन सबको उतारने के लिए हमको प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करने हैं। ये करेंगे तो चित्त में एक हल्कापन आयेगा, एक निर्मलता आयेगी, तेजस्विता आयेगी, दिव्य संस्कार उत्पन्न होगे।

मनु महाराज कहते हैं—

**ऋणानि त्रीणि अपाकृत्य मनो-मोक्षे निवेशयेत्।**

अर्थात् तीन ऋणो से उऋण होकर मन को मोक्ष में लगाएँ। आप सोचते है कि हम बूढ़े हो जाएँगे तब मोक्ष की साधना करेंगे। तो इसका अर्थ आपने मोक्ष को समझा ही नहीं। मोक्ष की साधना शुरू होती है गर्भाधान संस्कार से। हम मोक्ष की साधना गर्भाधान संस्कार से शुरू कर देते हैं। वह जो जीव आने वाला है, जिसको हम बुला रहे हैं, उसके लिये लिये पवित्र वातावरण प्रदान करते है। 'शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि'—तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरजन है, संसार-माया से रहित है। पालने में लेटे अपने पुत्र को मदालसा इस प्रकार की लोरियाँ सुना रही है। तो गर्भाधान से वह प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जिसका मै आह्वान करूँगा वह मुक्त हो जायेगा, उसके शोधन की, परिष्कार की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी जाती है। और ज्योही वह शिशु होश सम्हालता है, उसके अन्दर पौरुष जाग्रत् होता है, कर्तृत्व उसके अन्दर जाग्रत् होता है, तब वह स्वय प्रयास करना शुरू कर देता है। इसको हम दीक्षा संस्कार कहते हैं, उपनयन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार कहते है। इस प्रक्रिया को अपनाते हुए थोडा चिन्तन और आगे करेगे। आज इसको यही विराम देते है।

# चतुर्थ प्रवचन

जब तक अविद्या रहती है तब तक शरीर, इन्द्रियों व अन्तःकरण के साथ एक तादात्म्य सम्बन्ध बना रहता है। देह-अध्यास या आइडेण्टिफिकेशन के कारण एक व्यक्ति कहता है—मैं पुरुष हूँ, वृद्ध हूँ, अमुक वर्ण का हूँ। यह अध्यास देह-सम्बन्धियों के साथ तथा जहाँ-कहीं भी ममत्व है, वहाँ भी हो जाता है। ऐसा व्यक्ति जब भी अपने से किसी बडे के प्रति अर्पण करता है तो वह सीमित ही होता है। इस अर्पण में अपने से बडे के प्रति यदि आदर व कृतज्ञता का भाव हो तो यह अर्पण यज्ञ-रूप होने लगता है। माता, पिता, गुरु, अग्रज, कुल, समाज, राष्ट्र, विश्व—ये सभी बृहत्तर होती हुई चेतना के रूप हैं। जितनी बडी चेतना के प्रति अर्पण किया जाता है उतने बडे यज्ञ-चक्र में ही अर्पण का समावेश हो जाता है। यदि दृष्टि सूक्ष्म व सस्कारित हो, श्रद्धा सात्त्विक हो, तथा भाव परिशुद्ध हो तो एक अतिलघु प्राणी में भी विराट्-चेतना देखी जा सकती है और तब उसके प्रति किया गया अर्पण भी यज्ञ-रूप हो जाता है।

यज्ञ-तत्त्व को समझने लिये पेड को देखो। किसी भी चीज की स्टडी (Study) करनी हो—किसी फिनोमिना (Phenomena) का, संस्था का, प्रक्रिया का, मशीन का अध्ययन करना हो तो उसके चारों तरफ एक कन्ट्रोल वोल्यूम (Control Volume) की कल्पना कर लो, फिर देखो कि उसके अन्दर क्या-क्या एण्टर (Enter) हो रहा है, और उसके अन्दर से क्या-क्या निकल रहा है। कल्पना करें—एक नीम का पेड है। उसकी स्टडी (Study) करने के लिए उसको चारो तरफ से कवर कर लिया। उसके अन्दर क्या जा रहा है, किधर से जा रहा है—इसका निरीक्षण करो। पेड को पादप कहते है अर्थात् जो पैर से पीता है, जो अपने मूल से, जडो से भोजन लेता है। पेड अपनी पत्तियो से भोजन लेता है, पत्तो से प्रकाश को लेता है, चाँदनी को लेता है, उष्णता को लेता है और वायु

लेता है। वैज्ञानिक बता रहे है कि वह रात में कुछ तत्त्व लेता है, दिन मे भिन्न तत्त्व लेता है। तो वैज्ञानिक थोडा-सा बता रहे है—कुछ लेता है और कुछ निकालता है। पर वह लेता क्या है? कार्बनडाई-ऑक्साइड, सूर्य की रोशनी को लेता है। सूर्य की रोशनी के अन्दर वह कौन-कौन-सी एनर्जीज को ले रहा है? अभी पूरा पता नहीं। कुछ उसमे एण्टर (Enter) हो रहा है।

मै कभी बच्चो से प्रश्न पूछता हूँ। एक बार मैंने बच्चो के सामने घडा रख दिया, बच्चो को बुलाया और कहा—देखिए, इसमें झाँको, बताओ इसमे क्या है? तो सारे बच्चों ने खाली घडे में झाँका। फिर मैने बच्चों से पूछना शुरू किया। इस घडे मे क्या है? तो सबने कहा—कुछ नहीं है। मैने कहा कि अच्छी तरह से देख लो। उन्होंने फिर आकर देख लिया। बच्चो के देखने और हमारे देखने में फर्क होता है न! आकर देखा—'कुछ नहीं इसके अन्दर'। मैने कहा—अच्छी तरह से सोच कर बोलो। तो फिर उन्होंने बोलना शुरु कर दिया। इसके अन्दर हवा है, ऑक्सीजन है, नाइट्रोजन है, सब बोलना शुरू कर दिया। फिर मैने कहा—और बताओ इसके अन्दर क्या है? मैंने उन्हे संकेत देने की दृष्टि से कहा—मान लो इस कमरे मे एक रेडियो रखा हुआ है, उस रेडियो को ऑन (On) किया तो उसके अन्दर गाने आने शुरू हो गए। तो यहाँ कहाँ गाने है? कहाँ से गाने आने शुरू हो गए? तो बच्चे बोले वेव्ज (Waves) है। फिर वे तुरन्त बोले इस घडे मे भी वेव्ज (Waves) है। कुछ तो तरंगे होंगी उसके अन्दर। टी वी ऑन है तो उसके अन्दर चित्र आने शुरू हो जाते है। इस तरह कितनी चीजे बतायी बच्चो ने—सूक्ष्म कण हैं, इसमे बैक्टीरियाज है। सब धीरे-धीरे बताते गये। फिर बताया—जिसने घडा बनाया उसकी कला है, उसकी ममता है, उसकी भावना है—इस घडे में। तो इस प्रकार वे बताते गये।

पेड हमारे सामने एक जीवन्त व्यक्तित्व है। इतने ज्यादा साइन्टिस्ट (Scientist) नही बनो, थोडे कवि भी बनो। उसके अन्दर क्या-क्या प्रविष्ट हो रहा है? हमारी दृष्टि उसमें जा रही है, जिसने पेड को लगाया। उसका ममत्व, उसकी आत्मीयता, कितनी-सारी तरगे हैं, जो उसके अन्दर जा रही हैं। तो ये इसमें अन्दर जा रहे है। इसके अन्दर से कुछ निकल रहा है, कुछ उसके अन्दर प्रविष्ट हो रहा है। तो यह जो निकलना

है वह कैसा निकलना है, क्या-क्या निकलता है, उसका क्या-क्या प्रभाव होता है? एक पेड हमको कितना देता है? फल देता है, फूल देता है, खुशबू देता है, और फिर छाया देता है और ठण्डक देता है। तो कितना उसके अन्दर से निकलता है, गीत गाता हुआ। हवा आती है, वह लहराता है, वह गाता है, झूमता है, नाचता है, कितना कलामय उसका एक विस्तार है।

यह जो पेड़ के द्वारा निकलता है उसको ग्रहण करने वाले कितने-सारे प्राणी हैं। सिर्फ आदमी को लेकर विचार पर्याप्त नहीं। कितने प्राणी हैं जो पेड पर पल रहे हैं। करोडो-अरवो जीवाणु हैं, वे पेड पर पल रहे हैं। उन सबको मैं ईको-सिस्टम (Eco-system) कहता हूँ। उन सबका खुद का अपना एक ईको-सिस्टम (Eco-system) है। थोडा ध्यान से देखो, वहाँ कितने कीडे हैं, कितने पक्षी आकर उसको खाते हैं? कितना हम पेड के पास जाकर उसको प्यार करते हैं। सब उस पेड मे प्रविष्ट हो जाते हैं। पेड ने जैसा लिया वैसा का वैसा तो नहीं निकलता। यह लेता है उसको अपने कुछ काम में लेता है और उसको रिफाइन करता है, शुद्ध करता है, उपयोगी बनाता है और उसको बाहर निकाल देता है। केवल अपने लिये ही काम मे नहीं लिया। फिर बाहर के जीवन के लिये वह प्रसारित कर देता है। इसलिये पेड भी यज्ञ कर रहा है। जहाँ पर ज्यादा पेड़ हैं वहाँ पर वर्षा होती है। कहीं बादलो को बुलाता है। कितने कोयलों के गीत उसके अन्दर हैं, कितने कौवे हैं, कितने मोर उसके ऊपर प्रश्रय पाते हैं? तो एक पेड़ कितने-सारे जीवो के साथ जुडा हुआ है! पेड़ पत्तों से सजता है, रस-भरे पुष्प निकालता है, फिर अनेक फलों को उत्पन्न करता है। बीज से पेड, फिर फल, फलों में अनेक बीज, फिर अनेक वृक्ष—देखो तो एक पेड अपने मे कितने पेडों को लिये हुए है! बीज का अर्पित होना, फैलना, पेड का सिमटना और बीज बनना—अस्तित्व का कैसा विकास है! पेड से परिपक्व पत्तियाँ झडती हैं, अपने अस्तित्व को मिटाकर खाद बनती है, पेड पुनः उस खाद को ग्रहण करता है—एक चक्र हो गया। यज्ञ को समझने के लिये पेड़ एक सुन्दर उदाहरण है।

समुद्र यज्ञ कर रहा है, नदी यज्ञ कर रही है, बादल यज्ञ कर रहा है। समुद्र को ध्यानपूर्वक देखो—सोचते-सोचते पूरे ब्रह्म-तत्त्व का और धर्म-

तत्त्व का साक्षात्कार हो जायेगा। समुद्र के साथ में एकाकार हो जाओगे। समुद्र बडा जीवन्त है।

समुद्र के अन्दर से वाष्प उठती है। सूर्य की रश्मियों को थामकर ऊपर चढती है, बादल बनती है। घूमती है, फिर बरसती है। क्या कभी बादल का बरसना अनुभव किया? बादल का गरजना, दामिनी (बिजली) का चमकना—फिर रिमझिम-रिमझिम। इस प्रकार समुद्र है वह महान् यज्ञकर्ता है। वह निरन्तर गाता है—गरजता है। समुद्र क्यो हिलक रहा है, उछल रहा है, उल्लसित हो रहा है? लहर-पर-लहर, लहर-पर-लहर, मानो वह अपनी अगाध गहराई को प्रकट करना चाहता है। मानो वह उठकर आकाश को छूना चाहता है। इस प्रकार से वह बादल बनता है। बादल कहाँ-कहाँ जाता है, कहाँ-कहाँ बरसता है? कभी खुले में, छोटी-छोटी बूँदें बनकर बरसता है। बरसने के भी कई प्रकार हैं—रिमझिम-रिमझिम, कहीं फुहारें, कभी मूसलाधार। तो समुद्र बादल बनकर बरसता है। उत्तुंग पहाडों पर जाकर बादल ठहर जाता है। समुद्र वहाँ जाकर जम जाता है। बर्फ मे भी आग होती है, शायद तभी तो बर्फ पिघलती है। बर्फ पिघलने से ही नदी-झरने बनते हैं, और नदी बहती-बहती आती है। और सींच-सींच कर कितनी फसलो को तैयार करती है। कितने प्राणियो की प्यास बुझाती है। किस-किस को साथ लेती हुई नदी आती है। हर नदी की एक चेतना है। वह नदी आती है और उसका मीठा-मीठा पानी न जाने कितनी सभ्यताओं की, संस्कृतियो की स्मृतियों को लिये हुए, कितनों को अपने अन्दर समेटे हुए वह नदी समुद्र के अन्दर समाहित हो जाती है। क्या कभी नदी का सागर में मिलना देखा है? सागर को सरित-पति कहते हैं। नदी पर्वत की पुत्री कहलाती है। जिस प्रकार से एक कन्या घर से विदा लेकर अपनी ससुराल जाती है, पति के घर में जाती है तो जाते समय एक मिलन का भाव, पहले वह कैसे उछलती हुई जाती है और सागर के पास में जाकर कितनी गम्भीर हो जाती है क्योकि यह मिलन का क्षण है, यह मिलन की वेला है।

इस प्रकार सागर एक महान् यज्ञ को कर रहा है। इसी प्रकार से बादल यज्ञ को कर रहे हैं, नदी यज्ञ को कर रही है। यह एक जो चक्रिक गति है, उसको हम यज्ञ कहते हैं।

सभी प्राणी, सभी वनस्पतियॉं यज्ञ कर रही है। इनका जो यज्ञ है वह विष्णु के अति बृहद् यज्ञ-चक्र का अग है, विष्णु के सुदर्शनचक्र का एक अंग है।

मनुष्य में आकर यह यज्ञ-चक्र मानो टूट जाता है। क्योकि मनुष्य में एक मनुष्यत्व है। जिसके नहीं रहने से मनुष्य मनुष्य नहीं रहता।

नीतिशास्त्र में कहा है—

**येषां न विद्या न तपो न दानं,**
**ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।**
**ते मृत्युलोके भुविभारभूता,**
**मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।।**

जिसके अन्दर विद्या, दान, तप, ज्ञान, शील, गुण व आचार नहीं हैं—वह मनुष्य नही है। ये मनुष्य के धर्म हैं। इनके नहीं रहने से मनुष्य मनुष्य नहीं है। युनिवर्सल ट्रुथ (Universal truth), वह सत्य, वह ऋत, मनुष्य के अन्दर उत्कृष्टतम रूप से अभिव्यक्त होता है। तो वह परमेश्वर है सत्-चित्-आनन्द स्वरूप। यह सत्-चित-आनन्द ही अपने-आप को इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति एवं ज्ञान-शक्ति के रूप में प्रकट करता है। इच्छा-शक्ति, क्रिया-शक्ति एवं ज्ञान-शक्ति—ये भी इदंता होकर सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण हो जाती हैं। मनुष्य के अन्दर सत्-चित्-आनन्द का स्फुरण अन्य प्राणियो की अपेक्षा स्पष्टतर होता है। यह उसका मनुष्यत्व है। वह स्वतत्र रहना चाहता है। वह किसी के द्वारा हैण्डल (Handle) होना नही चाहता। अगर होता है तो कहते है यह पशु से भी गया-बीता है। यह मनुष्य का धर्म है।

मनुष्य यज्ञ करे। इसके करने से उसका कर्तृत्व व भोक्तृत्व कम होगा। कर्तृत्व अर्थात् डूअरशिप, आई हेव डन, आई हेव टू डू, आई विल डू (I have done, I have to do, I will do)—इस कर्तृत्व का नाश कैसे होता है, इसके लिए एक सुन्दर दृष्टान्त दिया है दुर्गासप्तशती मे। भगवान् विष्णु लेटे हुए थे और उनके नाभिकमल से ब्रह्माजी प्रकट हुए। महाप्रलय की समाप्ति होने को थी। महाप्रलय मे काल का बहुत बडा माप होता है। काल-तत्त्व पर आप खूब चिन्तन करे। मैं सृष्टि करूँ—यह इच्छा

परमेश्वर मे हुई। इससे मूल प्रकृति मे त्रिगुणों का असन्तुलन प्रारम्भ हो जाता है। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण में जो एक लय की अवस्था होती है उसमे असन्तुलन होना प्रारम्भ होता है, तव सृष्टि शुरू होती है।

ब्रह्माजी प्रकट हुए उसी समय विष्णु भगवान् के कान के मैल से दो असुर पैदा हुए। एक का नाम मधु, दूसरे का नाम कैटभ। उत्पन्न होते ही युवा हो गये। देवीभागवत मे यह कहानी कुछ और अधिक सुन्दर ढग से बतायी है। बात वही है। थोडा-सा फर्क है। मैं देवीभागवत के आधार पर बताता हूँ। राक्षस उत्पन्न होते ही जवान हो गये। और जवान होते ही उन्होंने चारो तरफ दृष्टि डाली। देखा--चारो तरफ पानी ही पानी। यहाँ कहाँ से आ गया पानी? कैसे आ गया पानी? बैठकर ध्यान करने लगे, किसने ऐसे पानी भर दिया। पानी अर्थात् प्राइमोर्डियल वाटर्स ऑफ क्रियेशन (Primordial waters of creation)। अप् शब्द है, उससे आप्। यह कर्मजल है। और यह कर्मजल और उसके ऊपर जो शेष है--कर्म का अवशिष्ट। उस शेषनाग पर सोई हुई चेतना, वही तो विष्णु है। असुरो को लगा--कहाँ से आ गया यह जल? वे तपस्या करने लगे। तपस्या करने लगे तो उनको तेजोमय 'ऐं' बीज का दर्शन हुआ। 'ऐ' किसका बीज है? सरस्वती का बीज है। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए और बाद में 'ऐ', उसमें अनुस्वार लगे तो 'ऐं'। तो 'ऐं' सरस्वती का बीज है। हर देवता का एक बीजमंत्र होता है। तो 'ऐ' का उनको दर्शन हुआ। अब एक आवाज आयी--आप दोनो क्या चाहते हो? असुरो के अन्दर तमोगुण प्रधान होता है। इस कारण वे बहुत दूर की नहीं सोचते। वे थोडे मे ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। उन्होंने कहा--कौन आवाज दे रहा है, सामने आओ। आकाशवाणी हुई--क्या चाहते हो? उन्होंने कहा वरदान दो कि हम कभी मरे नहीं। असुर अपने लघु अस्तित्व को अमरता प्रदान करना चाहता है। मनुष्य तो 'अमृतस्य पुत्राः'--अमृत का पुत्र है। विवेकानन्दजी कहते है हम तो अमृत के पुत्र है। अमृत की पिपासा हमारे अन्दर है। राक्षस चाहते है कि उनका शरीर कभी समाप्त न हो। और शरीर माने मै। 'मै कभी मरूं नहीं'। 'शरीर कभी नष्ट न हो--ऐसा कभी नहीं हो सकता।' तो उन्होंने दूसरे ढंग से कहा--'हम चाहे तभी मरें। हमारी जब इच्छा हो तभी हम मरे।' तो इच्छा-मृत्यु का वरदान उन्होंने माँग लिया। ज्योही उनको वरदान मिला,

उन्होने इधर–उधर उछलना–कूदना प्रारम्भ कर किया। इधर–उधर दृष्टि डाली तो फिर दृष्टि गयी ब्रह्माजी के ऊपर। सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी। उनको देखा और देखकर कहा, यह बडा सुन्दर फल है, इसको खाना चाहिये। तो उनको खाने के लिये वे लपके। तो देखो—सृष्टि के मूल मे भी भय पडा हुआ है, भूख पडी हुई है। जब तक हम सृष्टि के मूल में नहीं जायेगे तब तक काम, क्रोध, लोभ—ये जो पाश हैं, यह कर्तापन और भोक्तापन है, ये हटेगे नही। कर्तापन और भोक्तापन ऐसे थोडे ही हट सकता है। हमको भगवान् से अलग किसने कर रखा है—कर्तापन और भोक्तापन ने। इनसे छूटने के लिए बडी कला चाहिये, बडा विज्ञान चाहिये। यह बडा टेक्नीकल है। तो वे राक्षस ब्रह्माजी पर लपके। ब्रह्माजी तो हाथ में कमण्डलु, माला और वेद लिये हुए हैं, वे उन राक्षसो का सामना कैसे करते? वे तुरन्त कमल–नाल मे नीचे उतर गये, नीचे जाकर देखा कि विष्णु भगवान् तो सो रहे हैं। अब मैं क्या करूँ? तब उन्होने सोचा—जिस योगनिद्रा-शक्ति ने विष्णु को सुला रखा है उस योगनिद्रा देवी से प्रार्थना करनी चाहिये। ब्रह्मा प्रार्थना करने लगे—

**त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका.....**

बडी सुन्दर स्तुति की। स्तुति से प्रसन्न होकर देवी प्रकट हुई और कहा—क्या चाहिए? ब्रह्मा बोले—'विष्णु को जगा दीजिये और विष्णु में इन राक्षसों को मारने की बुद्धि उत्पन्न कर दीजिये।' तो विष्णु भगवान् जगे और राक्षसों को देखा। राक्षसों ने कहा—'अरे, साँप पर लेटने वाले! तू बीच में मत आ। हमारा मतलब ब्रह्मा से है, हम इसको खायेंगे। तुम बीच मे मत आओ।' ऐसी भाषा का प्रयोग राक्षसों ने किया। भगवान् विष्णु ने कहा—'नहीं, तुम इसको नहीं खा सकते। तुम मेरे से युद्ध करो।' 'तो ठीक है, आ जाओ।' दोनो ने युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। इधर ये दो असुर थे, उधर भगवान् विष्णु थे। विष्णु पाँच हजार वर्ष तक अपने बाहुओ से लडते रहे पर राक्षस हारे नहीं। इधर विष्णु भगवान् को थकान आने लगी। तो विष्णु भगवान् ने सोचा, 'अब मैं क्या करूँ? ये तो मेरे से पराजित ही नहीं हो रहे हैं।' उन्होंने भगवती का स्मरण किया और भगवती से प्रार्थना की। भगवती ने कहा—ठीक है, मै इनको मारने का उपाय बता देती हूँ, मैं इनको मोहित कर देती हूँ। भगवती ने बहुत सुन्दर-सा रूप धारण किया।

पर्यावरण किसको कहते हैं? प्रातःकाल आपको बताया था कि आज विज्ञान हमारी बहुत मदद कर रहा है। हम विज्ञान को प्रमाण रूप से उद्धृत नही कर रहे है, उसकी मदद ले रहे है। क्योंकि हमारे यहाँ भी विज्ञान बहुत विकसित हुआ था। भौतिक पदार्थों का जो ज्ञान था वह बहुत विकसित हुआ था। आक्रमणकारियो द्वारा ग्रंथो को जला देने से, परम्पराएँ लुप्त हो गयीं। इसलिये वर्तमान में हमारे पास वह समीकरण नहीं है और वह भाषा नही है जिसके द्वारा हम बता सके कि पर्यावरण यज्ञ कैसे कर रहा है? पर्यावरण किसको कहते हैं? देव-तत्त्व को समझना हो तो यह जो पर्यावरण का ज्ञान आजकल विकसित हो रहा है, यह हमारे लिये बहुत ही उपादेय सिद्ध होगा। ऊपरी-ऊपरी पर्यावरण का ज्ञान नहीं, किन्तु डीप ईकोलोजी (Deep Ecology) के नाम से जो अनुसधान हो रहा है वह हमारे काम का है। क्योकि विज्ञान को लेकर भी पश्चिमी दृष्टि भोग की दृष्टि है। मानव के भोग के लिये ही सब-कुछ है—ऐसी दृष्टि है। मानव ने अपनी विकास यात्रा के परिणाम को देखा कि इससे तो पर्यावरण का संतुलन बिगड रहा है। तो वह कुछ ऐसी तरकीब निकालना चाह रहा है कि यह संतुलन बिगडे नही। पर उसे अभी तक यह बोध नहीं हो रहा है कि यह पर्यावरण एक विराट् चेतना है। यह बोध हमारे पास है। उसे सिर्फ समझने की, बताने की और उसका पालन करने की आवश्यकता है। तो उन सबको जोडकर थोड़ा पर्यावरण पर चिंतन करेगे।

यह पर्यावरण समग्र रूप से एक विराट् है। वेदान्त के अनुसार वह परब्रह्म परमेश्वर, अपने-आप को तीन रूपो में प्रकट करता है। एक ईश्वर रूप, एक हिरण्यगर्भ रूप और एक विराट् रूप। वेदान्त की भाषा में बता रहा हूँ। इस विराट् के अन्दर 14 भुवन आ जाते है। इसलिये इस विराट् का एक अत्यन्त अल्प अंश है हमारा सौरमण्डल। उसके अन्तर्गत है हमारा बायोस्फीयर (Bio-Sphere), हमारा जैवमण्डल। इसको लेकर हम थोडा पर्यावरण पर विचार कर रहे है। अवर बायोस्फीयर इज ए लिविंग ऑर्गेनिज्म—आजकल वैज्ञानिक इन्ही शब्दो का प्रयोग कर रहे है। पर मैं अपने ढंग से बता रहा था कि यह पर्यावरण क्या है? पर्यावरण शब्द को दो प्रकार से समझ सकते है—प्रथम परि+आ+वरण। 'पर्यावरण' शब्द को हमने इस प्रकार तोडा—परि+आ+वरण। वरण माने क्या होता है?

असुरो को भगवती दिखाई दी तो असुर उसको देखते ही रह गये। और उनकी बुद्धि मे मोह उत्पन्न हो गया। उसी समय विष्णु भगवान् को प्रेरणा हुई, वे बोले—'अरे राक्षसो, गजब हो गया, गजब हो गया! मैं तो राक्षसों को मारने वाला हूँ—यह प्रसिद्ध है। पता नहीं किन-किन राक्षसों को मारा है! पर आप जैसे राक्षस आज तक नहीं देखे। अद्भुत बल है आपका। मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ। मुझ से वरदान माँगो।' वरदान देने वाला बड़ा होता है। राक्षसों ने कहा—'तू अपने-आप को बड़ा समझता है? तू हम लोगों को वरदान देगा! हम तेरे को वरदान देते हैं—माँग, क्या माँगता है?' विष्णु भगवान् ने कहा—'मेरे हाथ से मर जाओ'। राक्षसो को इच्छा-मृत्यु का वरदान था। विष्णु ने कहा—मेरे हाथ से मर जाओ। उस समय के राक्षस भी बडे ईमानदार होते थे। आजकल के राक्षसों के समान नही थे। वचन दे दिया तो उससे मुकरे नहीं। पर उन्होंने बुद्धि का प्रयोग किया। 'ठीक है, हम अपने वचन से पलटेंगे नहीं, हमने वचन दे दिया है। हमको ऐसी जगह पर मारो जहाँ जल नहीं हो।' विष्णु भगवान् ने तुरन्त अपनी जंघाओं को विस्तृत किया और कहा—यहॉ पर अपने सिरों को रख दो। यहॉ पर पानी नही है। असुरो ने अपने सिरों को विष्णु की गोद में रख दिया तब विष्णु ने तुरन्त सुदर्शनचक्र का स्मरण किया और उनके सिरो को काट दिया। भगवान् विष्णु चाहते तो उनका गला पकड कर दबा देते, तोड देते, मरोड देते, घोट देते। नहीं, उन्होने तो सुदर्शनचक्र का प्रयोग किया। सुदर्शनचक्र ही यज्ञ-चक्र है। इसके द्वारा ही कर्तापन, भोक्तापन जायेगा।

**यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।**
**तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।** गीता 3/9

यदि यज्ञार्थ कर्म करोगे तो वह बंधन का कारण नहीं बनेगा। इसलिये समझ लेना कि यज्ञ किस प्रकार से करें। यह ठीक है कि आप वेद-मन्त्रों को नही जानते। न आप पंडित है। गीता कहती है—कोई बात नही, तुम तो सारे जीवन को यज्ञमय बनाओ। यज्ञ कैसे करे—यह पेड बताता है, यह पृथ्वी बताती है। ये सारे-के-सारे यज्ञ कर रहे है। इनसे हम सीखते नही। पूरा पर्यावरण एक महान् यज्ञ को कर रहा है। पर्यावरण का प्रत्येक घटक यज्ञ को कर रहा है। तो पर्यावरण से पूछ लो—आप यज्ञ कैसे कर रहे है? उससे पूछ लो, उससे सीख लो।

पर्यावरण किसको कहते हैं? प्रातःकाल आपको बताया था कि आज विज्ञान हमारी बहुत मदद कर रहा है। हम विज्ञान को प्रमाण रूप से उद्धृत नही कर रहे है, उसकी मदद ले रहे हैं। क्योकि हमारे यहाँ भी विज्ञान बहुत विकसित हुआ था। भौतिक पदार्थो का जो ज्ञान था वह बहुत विकसित हुआ था। आक्रमणकारियों द्वारा ग्रंथो को जला देने से, परम्पराएँ लुप्त हो गयी। इसलिये वर्तमान मे हमारे पास वह समीकरण नहीं है और वह भाषा नही है जिसके द्वारा हम बता सके कि पर्यावरण यज्ञ कैसे कर रहा है? पर्यावरण किसको कहते है? देव-तत्त्व को समझना हो तो यह जो पर्यावरण का ज्ञान आजकल विकसित हो रहा है, यह हमारे लिये बहुत ही उपादेय सिद्ध होगा। ऊपरी-ऊपरी पर्यावरण का ज्ञान नही, किन्तु डीप ईकोलोजी (Deep Ecology) के नाम से जो अनुसधान हो रहा है वह हमारे काम का है। क्योंकि विज्ञान को लेकर भी पश्चिमी दृष्टि भोग की दृष्टि है। मानव के भोग के लिये ही सब-कुछ है—ऐसी दृष्टि है। मानव ने अपनी विकास यात्रा के परिणाम को देखा कि इससे तो पर्यावरण का सतुलन बिगड रहा है। तो वह कुछ ऐसी तरकीव निकालना चाह रहा है कि यह संतुलन बिगडे नहीं। पर उसे अभी तक यह बोध नही हो रहा है कि यह पर्यावरण एक विराट् चेतना है। यह बोध हमारे पास है। उसे सिर्फ समझने की, बताने की और उसका पालन करने की आवश्यकता है। तो उन सबको जोडकर थोडा पर्यावरण पर चितन करेंगे।

यह पर्यावरण समग्र रूप से एक विराट् है। वेदान्त के अनुसार वह परब्रह्म परमेश्वर, अपने-आप को तीन रूपों मे प्रकट करता है। एक ईश्वर रूप, एक हिरण्यगर्भ रूप और एक विराट् रूप। वेदान्त की भाषा में बता रहा हूँ। इस विराट् के अन्दर 14 भुवन आ जाते है। इसलिये इस विराट् का एक अत्यन्त अल्प अंश है हमारा सौरमण्डल। उसके अन्तर्गत है हमारा बायोस्फीयर (Bio-Sphere), हमारा जैवमण्डल। इसको लेकर हम थोडा पर्यावरण पर विचार कर रहे है। अवर बायोस्फीयर इज ए लिविंग ऑर्गेनिज्म—आजकल वैज्ञानिक इन्ही शब्दो का प्रयोग कर रहे है। पर मै अपने ढंग से बता रहा था कि यह पर्यावरण क्या है? पर्यावरण शब्द को दो प्रकार से समझ सकते है—प्रथम परि+आ+वरण। 'पर्यावरण' शब्द को हमने इस प्रकार तोडा—परि+आ+वरण। वरण माने क्या होता है?

चुनना। अपनी इच्छा से इसको वरण कर लिया। कन्या अपने पति का वरण करती थी। स्वयंवर होते थे। कन्या जाती थी और किसी का वरण कर लेती थी। 'परि' होता है चारो तरफ से, जैसे रक्षा और परिरक्षा, भ्रमण और परिभ्रमण, एक भ्रमण, परि लगने से परिभ्रमण, चारों तरफ से भ्रमण। संस्कृत मे यह 'परि' उपसर्ग लगाने से शब्द में थोडी और विशदता, थोडा और विस्तार और एक नया अर्थ उसमें खिल जाता है। उसी प्रकार से 'आ' का मतलब होता है 'समन्तात्' अर्थात् सब प्रकार से, जैसे रक्षा और 'आरक्षा'। 'आरक्षा' का मतलब—हर प्रकार से रक्षा। तो परि+आ+वरण। तो पर्यावरण अर्थात् ऐसा वरण जो परितः हो, चारो तरफ से हो, सब प्रकार से हो और निरन्तर हो—उसको पर्यावरण कहते हैं।

हमने अमुक कुल में, अमुक ग्राम में, अमुक काल में जन्म लिया। तो हमने तो यह वरण नहीं किया था कि ये हमारे माता-पिता हों। हम किसके द्वारा आये? हम कोई एक्सीडेण्ट के कारण नहीं आये! हम केवल कर्म के आधार पर आये हैं—ऐसा भी नही है। ऐसा होता तो हमारे पास चुनाव करने का स्वातंत्र्य होना चाहिये था। तो यह नहीं हुआ। इसलिये यहाँ से ईश्वर तत्त्व से जुडने की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। ईश्वर की कृपा को अनुभव करने की प्रक्रिया हम प्रारम्भ करते हैं। भगवान् ने मेरे को जन्म दिया। तो भगवान् ने बडी कृपा की कि मेरे को स्त्री बना दिया—क्यो भई! हमारे राजस्थान में एक लडकी हो जाती है, फिर दूसरी भी लडकी हो जाती है, और फिर तीसरी लडकी हो जाती है तो उसका नाम रख देते हैं धापी। माने धाप गये, माने तृप्त हो गये। और जो परिष्कृत हिन्दी जानने वाले है वे 'इतिश्री' नाम रख देते हैं। अब आगे लड़की नहीं चाहिये—यह सब अज्ञान है।

अभी मै आपको बता रहा था कि यह जन्म देकर प्रभु ने हमारा वरण कर लिया। अब हमे भी उसका वरण करना है—जिसने हमे जन्म देकर हमारा वरण किया। इसे दृष्टान्त से समझे—जब कौरवो और पाण्डवो के बीच युद्ध का निश्चय हो गया तो श्रीकृष्ण से सहायता प्राप्त करने के लिये दुर्योधन और अर्जुन—दोनो द्वारिका पहुँचे। वहाँ दुर्योधन ने तो नारायणी सेना को चुना और अर्जुन ने श्रीकृष्ण का वरण किया। इसके पश्चात् जब युद्ध प्रारम्भ होने ही वाला था तब अर्जुन शोक-मोह मे डूब गया। तब

अर्जुन के सारथि बने हुए श्रीकृष्ण ने प्रताडना की। इससे अर्जुन में आत्मविश्लेषण प्रारम्भ हुआ और उसने कहा—

**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।** गीता, 2/7

'मै आपका शिष्य हूँ, आपकी शरण में हूँ, आप मुझे शिक्षा दीजिये।' इस प्रकार अर्जुन ने श्रीकृष्ण का गुरु-रूप से वरण किया और श्रीकृष्ण ने अर्जुन का शिष्य-रूपेण वरण करके उपदेश देना प्रारम्भ किया। गीता मे शिष्य अर्जुन की चेतना ज्यो-ज्यो विकसित होती है त्यों-त्यो उसके समक्ष गुरु का उन्नत रूप उद्घाटित होता चला जाता है। परस्पर वरण की यह प्रक्रिया तब पूर्ण होती है जब अर्जुन पुरुषोत्तम का आत्मरूपेण वरण करता है।

आप जब पर्यावरण का वरण करेगे तो वह पर्यावरण पुनः आपका वरण करेगा। तो पर्यावरण एक विराट् चेतना है, एक अद्भुत विराट् चेतना। जब हम ब्रह्म की, परमेश्वर की बात करते है तो पता नहीं वह कहाँ-कहाँ छिपा है? किस गहराई में छिपा है? वही तो एक विराट् रूप से हमारे सामने आया है। यदि हम उसका वरण करें तो वह वापस हमारा वरण करता है, वह रेसपोण्ड (Respond) करता है। पर हम उससे कभी संवाद नही करते।

टॉल्सटॉय की बात है। वह आत्महत्या करने के लिये जंगल में चला गया। जंगल में एक गहन निस्तब्धता थी। गहराई थी, एक शांति थी वहाँ पर, एक दिव्य चेतना थी। उसके प्रभाव से टॉल्सटॉय के मन में एक परिवर्तन हो गया और उन्होने आत्महत्या का विचार छोड दिया। तो यह वरण हुआ। अर्जुन ने किस रूप मे वरण किया 'शिष्यस्तेऽह शाधि मां त्वा प्रपन्नम्' मै आपका शिष्य हूँ। गुरु-रूप से उसका वरण किया। पर्यावरण का गुरु-रूप से वरण किया। तब पर्यावरण ने शिष्य-रूप से अर्जुन का वरण कर लिया। कहने की बात और है कि मै आपका शिष्य हूँ। तो ठीक है, तुम मेरे शिष्य हो, सेवा करते रहो, ब्रह्मचारी रूप से रहो। गुरु जब पिघलेंगे तब जाकर उपदेश देगे।

ऐसा थोडे होता है कि जाकर फीस रख दी, रुपया रख दिया और कहा कि मेरे को ज्ञान दो। ज्ञान ऐसे थोडे ही मिलता है। पर्यावरण के

सामने अपने शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया तो क्या ऐसा गहराई से, सच्चाई से कहा कि—मैं तो धर्मसंमूढचेता हूँ, जो निःश्रेयस है वह मुझे आप बताइये—जैसे अर्जुन ने कहा था। जब उसने प्रणिपात किया तो तुरन्त भगवान् बरसने लगे, उपदेश देने लगे। भगवान् ने कहा—'बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः।' (गीता 2/49)। पहले मेरी शरण मे नहीं, बुद्धि की शरण में जाओ, बुद्धि का वरण करो। बुद्धि की शरण में नहीं जाओगे तो मेरा वरण नहीं हो पायेगा। आगे जाकर कहते हैं—'तमेव शरण गच्छ सर्वभावेन भारत। (गीता 18/62) 'तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की शरण मे जा।' फिर कहते हैं—'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरणं व्रज' (गीता 18/66)। 'तू सम्पूर्ण धर्मों को त्याग कर मेरी शरण मे आ जा।' तो यह वरण की प्रक्रिया चलती रहती है। इसी को हम पर्यावरण कहते है।

पर्यावरण का दूसरा अर्थ क्या होता है? परि+आवरण। आवरण माने आच्छादन। जिसने हमको चारों तरफ से ढक करके रखा है। 'परि' माने चारो तरफ से। किसने हमको चारों तरफ ढक करके रखा है? आच्छादान की दृष्टि से देखेगे तो इसको कई दृष्टियो से देख सकते हैं।

सबसे पहले हम कहते हैं—यह सारा जगत् चिन्मय है। एक अखण्ड चैतन्य झिलमिला रहा है चारो तरफ। दूसरे स्तर पर हम कहते है—यह चिद्–जडात्मक है। याने चैतन्य और जड आपस में मिले हुए है, अतः चिद्जडात्मक है। फिर आता है चर–अचर प्राणी जगत् और जड। यह सारी बात आपको पकडनी पडेगी क्योंकि जब हम व्यवहार की दृष्टि से देखेगे तो हम पायेंगे कि ये सारे स्तर आते है। क्योकि हमारा भी एक स्तर है, उसी के अनुसार ये स्तर आते है। पहला स्तर कौन–सा है? 'पात-पात मे प्रीतम मेरा'—यह तो मीरा कह सकती है, हम तो नहीं कह सकते। जिनको कण–कण के अन्दर ईश्वर का दर्शन होता है—वे ऐसा कह सकते है। रामकृष्ण परमहंस कह सकते है कि सब जगह आनन्दमय चैतन्य झिलमिला रहा है। उसके बाद का स्तर है चिद्जडात्म का, यह भी बडा कठिन स्तर है। चैतन्य और जड एक साथ है—जगदीशचन्द्र बोस कह सकते है। वे कहते हैं—मेटल में भी प्राण है। यह एक पौधा है, उसमे भी प्राण है। मेटल के अन्दर प्राण है, यह प्रयोग करके कहते हैं—यह भी

थकता है। चैतन्य वहाँ पर प्रातिबद्ध है। फिर चिद्जडात्मक से भी एक नीचे का स्तर होता है जिसको हम व्यवहार की दृष्टि से कहते हैं—यह तो प्राणी जगत् है और यह जड़ जगत् है। प्राणी जगत् के अन्तर्गत वनस्पति जगत् भी आ जाता है। फिर ये पहाड हैं, ये नदियाँ हैं—व्यवहार की दृष्टि से ये अलग-अलग है। ये हमारे पर्यावरण का अग हैं।

जब मै इस जड आवरण की बात करता हूँ तो उसको पॉच में विभाजित कर सकता हूँ। पृथ्वी-तत्त्व का आवरण, जल-तत्त्व का आवरण, अग्नि-तत्त्व का आवरण, वायु-तत्त्व का आवरण, ये हमको चारों तरफ से आच्छादित करके, घेर करके रखे हुए हैं। जब मैं कहता हूँ आकाश भी एक आवरण है तो यह समझना कि यह एक इलेक्ट्रो-मेग्नेटिक फोर्स फील्ड है। यह प्राणीय आवरण है। अब वैज्ञानिक उससे भी आगे गये तो उन्होने पाया कि एक मनस-तत्त्व के द्वारा भी हम आवृत हैं। यह सब तो दृष्ट-आवरण हो गया। इसके पश्चात् एक और सूक्ष्म स्तर आता है, वह अदृष्ट आवरण है। अदृष्ट आवरण के अन्तर्गत देव, पितर, भूत, यक्ष, गंधर्व आदि है। ये भी हमारा एक आवरण बनाते हैं। इनमे सबसे अधिक निकट का आवरण मनुष्य-समाज का है। इसके कई रूप हो जाते हैं—यथा आर्थिक आवरण, सामाजिक आवरण, राजनीतिक आवरण और सास्कृतिक आवरण। इस प्रकार पर्यावरण के अनेक स्तर हुए, जिन्होंने एक व्यक्ति को चारों तरफ से घेर करके रखा हुआ है।

तो यह पर्यावरण क्या है? इसके साथ हमारा किस प्रकार जुडाव होना चाहिये, किस प्रकार का व्यवहार होना चाहिये, इसके साथ हमारा सम्बन्ध क्या हो जाना चाहिये? इसको समझने के लिये एक बहुत ही सुन्दर श्लोक है। मैं इसके पहले प्रश्न उठाता हूँ—आप कौन है? आप कहते हैं न—यह मेरा पर्यावरण। तो आप कौन है? आपको बताना पडेगा,—'मैं साढे पॉच फुट का हूँ।' तो यह तो शरीर हो गया। पर हमारे यहाँ विचार बडा सूक्ष्म चला है। शरीर के अन्दर एक और शरीर है, उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं। सूक्ष्म शरीर किसको कहते हैं? सूक्ष्म शरीर का अर्थ है—पॉच कर्मेन्द्रियॉ, पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ, पाँच प्राण और अन्तःकरण। तो कितने हो गये? 16 हो गये। अन्तःकरण के अन्दर चार वृत्तियॉ होती है जिनको हम मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार कहते हैं। मन

कोजीटेट (Cogitate) करता है, संकल्प-विकल्प करता है। शिविर लगा रहा है—जाऊँ कि नहीं जाऊँ? जाने से क्या फायदा है, नहीं जाने से क्या फायदा है—तो ये संकल्प-विकल्प हुआ। फिर बुद्धि है। चित्त के अन्दर से फाइल को निकालती है और कन्सल्ट (Consult) करती है। चित्त के अन्दर अनुभव रहते हैं, स्मृतियाँ रहती हैं, चिन्तन रहता है, उनके आधार पर बुद्धि निर्णय करती है। और अहंकार की जो वृत्ति है, वह आइडेण्टीफाई करती है। कई ग्रन्थो में अन्तःकरण के अन्तर्गत मन व बुद्धि को ही लिया। चित्त और अहंकार को इनके अन्तर्गत कर लिया। तो 5 कर्मेन्द्रियाँ, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 प्राण, मन और बुद्धि—इस प्रकार 17 तत्त्व मिल कर हमारा सूक्ष्म शरीर हुआ। 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, जिनके द्वारा ज्ञान होता है—शब्द का, स्पर्श का, रूप का, रस का, गंध का। शब्द का ज्ञान होता है श्रोत्र इन्द्रिय के द्वारा, स्पर्श का अनुभव होता है त्वगेन्द्रिय के द्वारा, रूप का अनुभव नेत्र इन्द्रिय के द्वारा, रस का अनुभव जिह्वा के द्वारा, गंध का अनुभव नाक के द्वारा। ये बहुत सूक्ष्म शक्तियाँ हैं। बाहर जो पंच-ज्ञानेन्द्रिय दिखाई देती हैं, ये इन्द्रियाँ नहीं, उनके गोलक हैं। इन्हें फोकल पॉइण्ट कह सकते हैं। इनके द्वारा वे काम करती हैं। जैसे यह चश्मा है, यह आँख थोडे ही है, यह तो एक उपकरण है। सारी इन्द्रियाँ अन्तःकरण से निकली हुई एक प्रकार की शक्तियाँ हैं।

रूस में एक लडकी थी। बचपन में तो दिखाई देता था, बाद मे अन्धी हो गयी। उसे बहुत दुःख हुआ। उसने तीव्र संकल्प किया कि मैं देख पाऊँ। कुछ समय बाद वह हाथ से देखने लगी। हाथ किताब पर फेरती थी तो वह पढ लेती थी। हाथ के अन्दर से नेत्र इन्द्रिय काम करने लगी। आप लोगो ने देखा होगा, कोई-कोई आँख पर पट्टी बाँध करके, मोटर-साइकल पर सवार होकर भीड के अन्दरे से निकल जाते हैं। तो मन के अन्दर उन्होने देखने की शक्ति को पैदा कर लिया। तो ये जो शक्तियाँ हैं—बडी सूक्ष्म हैं। उसी प्रकार से कर्मेन्द्रियाँ भी सूक्ष्म हैं। वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु—ये जो कर्मेन्द्रियाँ हैं, हाथ की इन्द्रिय हाथ के अन्दर काम कर रही है, पैर के अन्दर पादेन्द्रिय काम कर रही है। स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर निकलता है—क्यो निकलता है? क्योंकि कर्म के द्वारा वह स्थूल शरीर से जुडा हुआ है और जब प्रारब्ध कर्म का वेग

समाप्त हो जाता है तब सूक्ष्म शरीर निकल जाता है, तो ये सारी इन्द्रियाँ भी निकल जाती हैं। 5 कर्मेन्द्रियाँ, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 प्राण और अन्तःकरण—इनका भी कारण-रूप, कारण-शरीर है वह भी निकल जाता है। वही तो सूक्ष्म शरीर को लेकर चल रहा है।

अब मै जो यह प्रश्न उठा रहा था कि यह जो पर्यावरण है वह किसका पर्यावरण है? स्थूल शरीर का पर्यावरण है या सूक्ष्म शरीर का पर्यावरण है, अथवा आप कारण-शरीर के पर्यावरण की बात कर रहे है? गीता कहती है—एक अपरा प्रकृति है और एक परा प्रकृति है—अव्यक्त, महत्-तत्त्व, अहंकार और 5 तन्मात्राएँ—यह अपरा प्रकृति है। इससे परे एक परा प्रकृति है जो जीवभूता है। तो आप जीव के पर्यावरण की बात कर रहे हैं या सूक्ष्म शरीर के पर्यावरण की बात कर रहे है या स्थूल शरीर के पर्यावरण की बात कर रहे है? इसके अनुसार आपका सारा-का-सारा विश्लेषण और पर्यावरण की आपकी समझ, उसका रिश्ता, उससे व्यवहार है, वह बदल जायेगा। कोई कैसे नकार सकता है कि मैं शरीर नही हूँ। कोई मना कर सकता है? अगर करता है तो वह ज्ञानी होगा। हम अभी ज्ञानी नहीं हैं। ज्ञानी कहने का ढोंग नही करना। हम लोग मजबूती के साथ अभी देह के साथ एकात्म हैं, बँधे हुए है, जुडे हुए हैं। चूँकि हम शरीर के साथ एकात्म है, बँधे हुए हैं अतः शरीर को लेकर विचार करना। शरीर से इतर चर-अचर जगत् है, उससे उसका एक रिश्ता है। जो सूक्ष्म शरीर है उसके लिये स्थूल शरीर एक वाहन है और सारा-का-सारा जगत् उसके लिये आवरण हो गया। सूक्ष्म शरीर के अन्दर जो कारण-शरीर बैठा है उसके लिये सूक्ष्म शरीर आवरण हो गया। तो ये सारे-के-सारे आवरण हैं।

देखो, एक बार रामजी बैठे हुए थे। पास में ही हनुमानजी थे। रामजी ने हनुमानजी से पूछा—हे हनुमान! तुम मेरे बारे में क्या सोचते हो? हनुमानजी का कितना अद्‌भुत व्यक्तित्व था! उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—

देहदृष्ट्या तु दासोऽहं जीवदृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्मदृष्ट्या त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः।।

देह की दृष्टि से तो मै आपका दास हूँ। जीव की दृष्टि से आपका अंश हूँ और आत्मा की दृष्टि से आप में और मेरे में कोई अन्तर नही है।

पर्यावरण के सन्दर्भ में इसको समझना। देह की दृष्टि से हम पर्यावरण के दास है। जीव की दृष्टि से हम पर्यावरण के अंश हैं। अश का अर्थ होता है—प्रतिबिम्ब। अश का अर्थ टुकडा भी होता है, किरण भी होता है। सही अर्थ प्रतिविम्ब है। जैसे बिम्ब और प्रतिबिम्ब का एक सम्बन्ध होता है। जैसे कुछ पात्रों में पानी भरा हो, सूर्य का उसमे प्रतिबिम्ब गिर रहा हो। तो विम्ब और प्रतिबिम्ब का एक सम्बन्ध है। प्रतिबिम्व बिम्ब से एक है या अलग है? तो अलग भी नहीं कह सकते, एक भी नही कह सकते। अगर अलग मानो तो प्रतिबिम्ब को उठाकर जेब मे डालकर देखो! तो अलग भी नहीं कह सकते, एक भी नहीं कह सकते। कहाँ पर वह सूर्य और कहाँ पर यह प्रतिबिम्ब! पर कुछ मिलता-जुलता है। दर्पण मे देखो अपने चेहरे को। तो चेहरा तो बिम्ब हो गया और दर्पण में आया हुआ चेहरा प्रतिबिम्ब है। तो इनका आपस में क्या सम्बन्ध है? अनिर्वचनीय सम्बन्ध है। तो सोचिये, जीव दृष्टि से हमारा और पर्यावरण का क्या सम्बन्ध होना चाहिये? प्रतिबिम्ब मे भी बिम्ब का प्रकाश आता है, इसके अन्दर भी उष्णता आती है, बिम्ब की आकृति आती है।

इसे समझने के लिये भगवान् कृष्ण की बाललीला को समझे। पूर्णिमा की रात्रि थी। यशोदा ने कहा, 'यह चन्दामामा है। यह मामा है।' तो माँ यशोदा ने तो कह दिया—यह चन्दामामा है। 'तो बुलाओ इनको यहाँ पर। मै इनकी गोदी मे बैठूँगा, बात करूँगा। चन्दामामा को बुलाओ।' जिद पकडली कृष्ण ने। अब यशोदा क्या करे? जिद करके रोने लगे तो थाली लेकर आयी और थाली में पानी भर कर रख दिया और उसको बताया नही। वह ऐसे ही रोता रहा। थोडी देर बाद उसको पास मे लेकर गयी और कहा—देख, इसके अन्दर ये आ गये चन्दामामा। तो तुरन्त कृष्ण ने थाली को हिला दिया और कहा—'कहाँ पर है चन्दामामा?' पानी चंचल होगा तो वह कैसे दिखाई देगा, नहीं दिखाई दिया। तो फिर यशोदा ने कृष्ण को गोद में लेकर इधर-उधर घुमाया और उसको थाली के पास मे ले जाकर बताया—देख, यह रहे चन्दामामा। तब कृष्ण ने थाली में मिट्टी डाल दी। अब उसमें कहाँ से दिखाई देगा? फिर उसको घुमाया, फिर दोनों हाथ पकडकर के, दोनों पैर पकड करके, थाली मे दिखा दिया कि 'ये आ गये चन्दामामा।'

भगवान् कृष्ण अपनी प्रत्येक लीला के द्वारा ब्रह्म-तत्त्व क्या है, धर्म-तत्त्व क्या है—यह दर्शाते थे। चाहे मक्खन चोरी करने की लीला हो, चाहे रोने की, चाहे मिट्टी खाने की हो—सारी लीलाओ मे एक तत्त्व का परिदर्शन है, प्रतिपादन है। इस लीला के द्वारा भगवान् ने क्या बताया? उन्होने बताया कि यह आत्मा सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है। कैसे बताया? उस पानी के अन्दर चन्द्रमा की शीतलता आ रही है। चन्द्रमा की किरणों की शीतलता पानी मे आ रही है। वह चाहे हिले, चाहे मटमैला हो, शीतलता तो उसमें आयेगी ही आयेगी। और उसके अन्दर चन्द्रमा का प्रकाश भी आ रहा है, पर चन्द्रमा की आकृति कब आयेगी? जब पानी निर्मल हो और पानी स्थिर हो तब उसके अन्दर चन्द्रमा की आकृति भी आयेगी। तो अन्तःकरण के अन्दर सत् तो है और चित् भी है, चित् का प्रकाश भी है, सत् की शीतलता भी है पर आकृति नही आ रही है। यह आकृति क्या है? आनन्द है। अन्तःकरण के अन्दर आनन्द की अनुभूति कब होगी? जब चित्त निर्मल हो जायेगा, स्थिर हो जायेगा तब आनन्द की अनुभूति होगी। अभी सबको—मैं हूँ, और मैं जानता हूँ कि मैं हूँ—यह सत्-चित् का अनुभव हो रहा है। आनन्द का अनुभव कब होगा? जब अन्तःकरण रूपी जल निर्मल हो जायेगा, स्थिर हो जायेगा तब उसके अन्दर आनन्द रूपी आकृति भी आ जायेगी।

तो यहाँ पर हम पर्यावरण की दृष्टि से चिन्तन कर रहे थे। पर्यावरण के साथ हमारा क्या सम्बन्ध होना चाहिये? देह की दृष्टि से मै इस पर्यावरण का दास हूँ, जीव की दृष्टि से इसका प्रतिबिम्ब हूँ। जब तक 'मैं दास हूँ'—यह साधना परिपक्व नही होती, तब तक 'मैं आपका अंश हूँ'— यह साधना हो ही नहीं सकती। 'देहदृष्ट्या तु दासोऽहम्'। तो दास का मतलब क्या होता है? 'भृत्यवत् कर्म करोमि।' भगवान् शंकराचार्यजी यह कहते है जब कर्मयोग की बात आती है। तो कर्मयोग कैसे होता है? 'भृत्यवत् कर्म करोमि'। भृत्य कहते है नौकर को। मैं सेवक हूँ, तू स्वामी है। उसका सेवक बन करके मै सारे कर्म करूँ। उसके बताये हुए कर्म करूँ, उसके लिये कर्म करूँ, उसकी प्रीति के लिये कर्म करूँ, उसकी प्रेरणा को, शक्ति को लेकर कर्म करूँ। और परिणामस्वरूप जब आपस में प्रेम बढता है, रिश्ता बढता है, दूरी घटती है तब जाकर

'त्वदशकः'—जीव की दृष्टि से आपका अंश हूँ—यह अनुभूति होनी प्रारम्भ हो जाती है। इसके बीच-बीच में एक आत्मीयता की अनुभूति भी होनी प्रारम्भ हो जाती है।

आज मै बता रहा था कि किस प्रकार से एक ही ब्रह्म-तत्त्व अपने-आप को ईश्वर के रूप मे, हिरण्यगर्भ के रूप में, विराट् के रूप मे प्रकट कर रहा है। इन सबके साथ कैसे व्यवहार करना, इसकी हमे एक दृष्टि प्राप्त हुई कि शरीर की दृष्टि से हम इसके दास बन करके रहें। इसका एक शास्त्र है, उसके अनुसार हमें अपने-आप को चलाना पडेगा, शरीर को चलाना पडेगा। इसका मतलब आप शरीर के साथ मनमानी नहीं कर सकते। यह उसका है, उसके लिये है, उसका काम करने के लिये है। शरीर-इन्द्रिय-अन्तःकरण—यह जो संघात है यह उस पर्यावरण का अंग है। इस सीमा तक हमारा चिन्तन पहुँचता है तब पर्यावरण के साथ हमारा व्यवहार ठीक से सम्पन्न हो सकता है। पर चूँकि हमारी चेतना शरीर के साथ में जुडी हुई है और अन्तःकरण के अन्दर तो चिद्-जड ग्रन्थि लगी हुई है। यह जो सूक्ष्म शरीर है, इसका कारण-रूप शरीर है, जो अविद्या रूप है, जिसकी अनुभूति गहरी नींद मे होती है। तीन अवस्थाएँ है हमारी—जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति। जाग्रत् अवस्था का अनुभव करने वाला जो चैतन्य है उसको 'विश्व' कहते हैं। स्वप्नावस्था का अनुभव करने वाले चैतन्य को 'तैजस' कहते है। सुषुप्ति अवस्था का अनुभव करने वाले को 'प्राज्ञ' कहते हैं। यह हमारे शरीर को लेकर, व्यष्टि को लेकर विचार है। इसी को समष्टि के स्तर पर क्रमशः विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर कहते है।

आज के वैज्ञानिक बायोस्फीयर, सौरमण्डल और गैलेक्सीज की बातें करने लगे हैं। पर हमारी विराट् की अवधारणा इनसे बहुत व्यापक है। विराट् के अन्तर्गत 14 भुवन हैं। विराट् से सूक्ष्म हिरण्यगर्भ है। इसका भी कारण-रूप अव्यक्त है। ये सारे ओंकार नाद से प्रकट हुए हैं। आप लोग ओंकार बोलते है—इसमे अ, उ, म्—ये तीन मात्राएँ है। ओंकार-उच्चारण के बीच में जो गूँज होती है उसे अर्द्धमात्रा कहते हैं—ये इन चार की द्योतक है—

अ अर्थात् जाग्रत्, विश्व, विराट्
उ अर्थात् स्वप्न, तैजस, हिरण्यगर्भ

म् अर्थात् सुषुप्ति, प्राज्ञ, ईश्वर

अर्द्धमात्रा अर्थात् तुरीय, आत्मा, ब्रह्म

ओम् का उच्चारण करते समय क्या आप लोग यह भान रखते है कि हम पृथ्वी को, पेड को, जल को, हवा को, सूर्य को, आकाश को, पक्षियों को, प्राणियो को—पर्यावरण को बुला रहे हैं? पर्यावरण अपने इस नाम को सुनकर पुलकित हो रहा है? ओम् बोलते समय ऐसा अनुभव करना कि मैं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति से परे तुरीयस्वरूप हूँ; विश्व, तैजस, प्राज्ञ से परे आत्मस्वरूप हूँ; विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर से परे ब्रह्म हूँ।

यहाँ पर जो हम बात कर रहे थे कि यह जो एक विराट् है, एक पर्यावरण है—यह तीन स्तरों को लेकर हमारे सामने आ रहा है—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। इसके साथ में हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिये? शरीर के स्तर पर हमारा व्यवहार स्वामी और सेवक की तरह, सूक्ष्म शरीर—अन्तःकरण के स्तर पर हमारा व्यवहार जीव-दृष्टि से यानी उसके प्रतिबिम्ब के रूप में हो और आत्म-दृष्टि से आत्मीयता का व्यवहार होना चाहिये।

देव-ऋण की बात चल रही थी। कितना ऋण है? हमारे स्थूल शरीर को माता-पिता ने दिया। तो माता-पिता के शरीर को किसने दिया? उनके माता-पिता ने दिया। उन्हें शरीर कहॉ से मिला? उनके माता-पिता ने दिया। अब सबको जन्म देने वाला, हमको इस कुल में जन्म देने वाला आखिर कोई तो होगा! विश्व का कोई विधान होगा! उसका कितना बडा अनुग्रह है! उसने शरीर दिया, इन्द्रियॉ दी, अन्तःकरण दिया, उसके अन्दर सोचने की शक्ति दी। आपको जो चित्र दिया गया है उसमें बताया है कि यह सूक्ष्म शरीर कैसे पैदा हुआ। यह सारी सृष्टि कैसे प्रारम्भ हुई—इसकी प्रक्रिया उसमे समझायी गयी है। हमारा सूक्ष्म शरीर भी इस पर्यावरण के द्वारा प्रसूत है, उसके द्वारा पैदा किया हुआ है। अतः बाहर के तत्वो मे कुछ गडबडी होती है तो उसका प्रभाव सूक्ष्म शरीर पर पडेगा। कितना गहन चिन्तन है! बाहर यदि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु—ये प्रदूषित होते हैं तो इसका असर शरीर पर पडेगा, इन्द्रियो पर पडेगा, अन्तःकरण पर पडेगा, क्योंकि पर्यावरण से इनका रिश्ता है, सम्बन्ध है। भ्रूण की बात है। भ्रूण को कौन बढा रहा है? भ्रूण

कैसे बना? उन दो कणों को कौन जोड रहा है? आप कहते हैं—हम जोड रहे हैं। आप नहीं जोड रहे हैं। यह पर्यावरण जोड रहा है। यह पर्यावरण, जो विविध सृष्टियाँ कर रहा है, स्त्री के शरीर मे उसकी यह उत्कृष्टतम सृष्टि है। मानव उत्कृष्टतम सृष्टि है। प्रत्येक जीव के अन्दर भ्रूण बढता है। पर मानव के अन्दर यह उसकी उत्कृष्टतम कृति है। और उस पर हम प्रहार करते हैं! इधर कुछ पेड लगा दिये, उधर उस पर प्रहार करते है। परमेश्वर मानव को अपने अनुरूप एवं उत्कृष्टतम रूप मे प्रकट करता है और आज उसी पर हम प्रहार करते हैं, हम भ्रूण-हत्या करते हैं! जिसको हम मार देते हैं यह कहाँ जाएगा? वह देखता है—यह रास्ता ठीक नहीं है, यह जगह ठीक नहीं है, तब वह कहाँ जायेगा? जहाँ आने दिया जाता है। हिन्दू उसको नहीं आने देते तो जहाँ उसको आने दिया जाता है वहाँ चला जायेगा। बात समझ मे आ रही है? सारा इण्टरकनेक्टेड है। या जहाँ उसे आना है वहाँ वह आयेगा ही आयेगा, अपंग होकर आयेगा। मैंने ऐसे कितने ही उदाहरण देखे हैं कि जहाँ भ्रूण-हत्या हुई, वह जीव उनका पोता बनकर आया, अपंग होकर आया। जहर दिया, उसका प्रभाव पड़ा कि वह अपंग होकर आया। पूरा परिवार उससे दुखी हुआ।

यह जो पर्यावरण है, उसके प्रति कौन-सी दृष्टि होनी चाहिये? वरेण्य बुद्धि होनी चाहिये। 'वरेण्य पर्यावरणं यजामहे'। यह वरेण्य है। इसलिये हम वरेण्य की साधना प्रारम्भ करते है। इसके प्रति एक दिव्य भाव, एक कृतज्ञता का भाव। पहले यह क्या है—इसको समझ लिया और उसके बाद मे हम उसके कितने कृतज्ञ है—इसे अनुभव करते हैं। उसके प्रति अर्पण करते हैं—आपकी वस्तु ही आपको समर्पित करता हूँ। हमको यह शरीर मिला, क्षेत्र मिला, हमको एक कुल मिला, हमको एक नगर मिला, हमको ये इन्द्रियाँ मिलीं और ये कार्य करने में सक्षम हुई—यह सारे-के-सारे देव के ऋण है। यह बादल का बरसना, यह सूर्य का चमकना, यह चन्द्रमा का अमृत बरसाना, यह तारो का झिलमिलाना, यह हवा का बहना—ये कौन हैं?

वेद-मन्त्र है—'नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'—हे वायु! आपको नमस्कार है, आप प्रत्यक्ष ब्रह्म है। इसका हमारे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है। हम अपना दिन प्रारम्भ करते हैं तो पृथ्वी को नमन करते हैं।

समुद्रवसने देवि पर्वत-स्तन-मण्डिते।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पाद-स्पर्श क्षमस्व मे।।

'समुद्र के वस्त्र वाली, पर्वत रूपी स्तन वाली, विष्णु की पत्नी, हे पृथ्वीदेवी! आपको नमस्कार है। मैं आप पर पैर रख रहा हूँ, कृपया क्षमा करें।' जो संस्कारी लोग होते हैं वे इसे प्रतिदिन बोलते हैं। अनुभव करे यह कि पृथ्वी विष्णु की पत्नी है। यह एक श्लोक ही पर्यावरण की पूरी व्याख्या कर रहा है। अद्भुत कलात्मकता, जीवन्तता से पर्यावरण-तत्त्व क्या है—इसको बता दिया। 'विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं'—पत्नी किसको कहते हैं—पत्नी वह होती है जो पुरुष को विश्वयज्ञ के साथ जोड देती है। पत्नी शब्द का अर्थ ही यह है कि पुरुष को विश्वयज्ञ के साथ जोड़ देती है। पत्नी के बिना पुरुष विश्वयज्ञ के साथ जुड नहीं सकता। विश्वजीवन के साथ में पार्टिसिपेट कर नहीं सकता। विश्व को निर्मल दृष्टि से देख नहीं सकता। वह विश्व को भी भोग-दृष्टि से देखेगा। इसलिये पत्नी भोग-दृष्टि को हटाकर पति को विश्वजीवन के साथ जोड़ देती है। विष्णु की पत्नी निरन्तर घूमती है, यह विष्णु की वधू भूदेवी निरन्तर यज्ञ कर रही है। विष्णु माने सूर्यनारायण। हमारे लिये तो सूर्य ही नारायण है। इसके चारों ओर भाव-विह्वल होकर भ्रमण कर रही है यह। पृथ्वी ग्यारह सौ मील प्रति घण्टा की गति से अपनी धुरी पर घूम रही है और सूर्य के चारो ओर 67 हजार मील प्रति घण्टा की गति से घूम रही है। सूर्य 35 मील प्रति सैकेण्ड की गति से अपनी धुरी पर घूम रहा है। हमारे सौरमण्डल का केन्द्र कहाँ पर है? कई प्रकाश मील दूर है। मैं यहाँ कोई वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत नही कर रहा हूँ। मै तो उससे भी एक गहरा तत्त्व है, उसके विषय में बता रहा हूँ। पृथ्वी भाव-विह्वल होकर सूर्यनारायण के चारों तरफ एक अनुशासन मे, एक नियम के अनुसार घूम रही है। तो प्रातःकाल प्रारम्भ होते ही निद्रा से उठकर सोने तक, खाना-पीना, चलना-सोना सबमे हम पर्यावरण की आराधना करते है।

देव-ऋण से उऋण होने के लिये देव-यज्ञ करना चाहिये, ऑख खुलने से बद होने तक। होश सम्हालने से लेकर कपालक्रिया तक। कपालक्रिया माने अतिम-संस्कार, अंत्येष्टि संस्कार, अन्तिम-यज्ञ, अन्तिम दृष्टि। ब्रह्म शरीर मे घुसा तो किधर से घुसा और हमको भी

निकलना है तो किधर से? हमको भी उधर से ही निकलना चाहिये। मूर्धा का भेदन करके योगी लोग निकलते हैं। यदि मूर्धा से निकलेंगे तो देव से एक हो जाएँगे। जो गया, यदि वह इस ढंग से नहीं गया तो उस पर संस्कार डालने के लिये, उस कपाल का शंख के द्वारा या नारियल के द्वारा भेदन कर देते हैं। जीव या प्राण किधर से निकलता है? आँखो से निकल जाता है, कान, मुँह या नीचे के द्वारों से निकल जाता है। इससे जीव की गति का संकेत मिलता है कि जीव की अधोगति हुई है या ऊर्ध्वगति।

हमारा पूरा जीवन ही साधना है देव से मिलने की। देव-तत्त्व क्या है? और देव का हमारे ऊपर कितना ऋण है? कैसे ऋण है? क्यो ऋण है? इससे उऋण होने के लिये हमको क्या करना चाहिये? इसके लिये सर्वप्रथम देव-तत्त्व क्या है—इसको ठीक-ठीक समझ ले। इसकी अवधारणा में यदि त्रुटि रह गयी तो उसके ऋण से उऋण होने की प्रक्रिया मे भी त्रुटि रह जायेगी। तो देव-तत्त्व क्या है, उसकी सही-सही अवधारणा हमारी बुद्धि मे स्पष्ट बैठी होनी चाहिये। उसके पश्चात् ही देवऋण से उऋण कैसे होना, उसके लिये क्या करना चाहिये—यह स्पष्ट होगा। प्रतिदिन देव-यज्ञ करना चाहिये। प्रतिदिन ईश्वर की आराधना करनी चाहिये। इसके लिये हमारे सामने आती है सारी-की-सारी उपासनाएँ, तीर्थाटन। ये सारे देवऋण से उऋण होने की प्रक्रिया के अन्तर्गत आते हैं। हम 24 घण्टे में से कितना समय देवऋण से उऋण होने के लिये निकालते हैं? वह देव, जो पृथ्वी बना हुआ है, जो जल बना हुआ है, जो आग बना हुआ है, हवा बनकर सरसरा रहा है। जो सूर्य-चन्द्र बनकर जगमगा रहा है, जो नाच रहा है, गा रहा है, जो हम सबसे सम्पर्क करना चाहता है। पर हम एक कमरे या स्टोर-रूम में कुछ फोटो लगाकर, हाथ जोडकर उसकी कुछ अराधना कर रहे हैं। इसे सब पर लागू मत करना। जो वैदिक सनातन धर्मावलम्बी है वे किस प्रकार से देवऋण से उऋण होने के लिये अराधना कर रहे है? देवऋण से उऋण होने के लिये एक दृष्टि चाहिये, एक भावना चाहिये और एक प्रकिया भी चाहिये, एक समझ भी चाहिये। चारो जब सयुक्त होकर आदर व कृतज्ञतापूर्वक अभिव्यक्त होती है तब देवऋण से उऋण होना प्रारम्भ होता है। आप समझते है कि मै जंगल मे जाकर खूब तपस्या करूँगा और फिर तपस्या के

द्वारा, मन्त्र–जप के द्वारा देवऋण से उऋण हो जाऊँगा! इसके लिये हमारे शास्त्रो मे अनेक उदाहरण आये हैं जिनके द्वारा समझाया गया है कि यह इस प्रकार नही हो सकता।

एक व्यक्ति चला गया जंगल में और जाकर सूर्य की आराधना करने लगा। सूर्य की खूब आराधना की। सूर्य–मंत्र को खूब जपा। 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' गीता में आया है। यज्ञों में मै जप–यज्ञ हूँ। द्रव्य–यज्ञ से स्वाध्याय–यज्ञ, ज्ञान–यज्ञ श्रेष्ठ है। इन सबका निष्कर्ष निकालकर कहा—'यज्ञो मे जप–यज्ञ हूँ'। तो चला गया जंगल में। और शरीर को, इन्द्रियो को और मन को खूब तपाया और सूर्य की आराधना की। सूर्य भगवान् प्रकट हो गये। बोले—'क्या माँगता है'? तपस्वी बोला—'मै मँगता थोडे ही हूँ कि जो मॉगूं। मैंने जो तपस्या की है, उसका फल दो।' 'अच्छा, तुमने तपस्या की है! ओ–हो! कहाँ बैठकर, कहॉ रहकर तपस्या की?' 'इस चट्टान के ऊपर खडे होकर मैंने तपस्या की है! इतने माह तपस्या की।' 'अच्छा, चट्टान पर तपस्या की! यह चट्टान किसकी है? क्या इसे खरीदी है? यह चट्टान तो मेरी है, इसका किराया लाओ। चट्टान का उपयोग किया है, इसका किराया लाओ। और कुछ खाया–पिया कि नही?' 'मैंने सिर्फ फल खाये हैं।' 'तो ये पेड मैने उगाये हैं, मैंने इनका पोषण किया है, मैंने इनको बढाया है। तुमने कुछ साँस ली है? पानी पिया है? यह पानी मैंने बरसाया है। यह हवा मेरी है। इन सबका किराया लाओ।'

असुर लोग तो खूब तपस्या करते हैं, देव की आराधना करते है पर यह देवऋण से उऋण होना नही हुआ। देवऋण से उऋण होने के लिये आदर एवं कृतज्ञता की भावना चाहिये। देव–यज्ञ दिन–भर चलना चाहिये। ये जो पंचमहायज्ञ बताये, पंचऋणों से उऋण होने के लिये—ये दिन–भर चलने चाहिएँ। ये प्रारम्भ किये जाते है एक अल्प रूप को लेकर, परन्तु ये दिन–भर चलने चाहिएँ।

मातर् मेदिनि तात मारुत सखे तेजः सुबन्धो जलम्
भ्रातर् व्योम निबद्ध एव भवतामेष प्रणामाञ्जलिः।
युष्मत् – संग – वशोपजात – सुकृतोद्रेक – स्फुरन् निर्मल-
ज्ञानापास्त – समस्त मोह – महिमा लीये परे – ब्रह्मणि।।

—वैराग्य–शतक, 85

यह भर्तृहरि के द्वारा लिखा हुआ श्लोक है। भर्तृहरि ने जीवन का परीक्षण किया, यह उनके अन्तिम समय का श्लोक है। कहते हैं—'मातर् मेदिनि' यह पृथ्वी क्या है—माँ है मेरी। मातर् मेदिनि तात मारुत—यह जो वायु है यह पिता है। 'सखे तेजः' यह तेज है, यह सखा है। 'सुबन्धो जलं' यह जल है यह बन्धु है। 'भ्रातर् व्योम' यह आकाश मेरा भाई है। कभी आपने आकाश को देखा है? प्यार से, आदर से, अपनत्व से देखा है? हम देखते है पर जैसे देखना चाहिये वैसा नही देखते। आदर से, प्यार से देखना—उसी को तो मेडीटेशन कहते हैं। ध्यान उसी को तो कहते है। ध्येय के साथ एक हो जाओ। किसी भी चीज को जानना हो तो उसके साथ तन्मय होना पडेगा। वृक्ष को जानना हो तो वृक्ष की चेतना के साथ एकमेक हो जाना, तभी उसका जो रहस्य है वह उद्घाटित होगा। जो वैज्ञानिक होते है वे जितना-जितना वस्तुओं के साथ एक होते हैं उतना-उतना उनके रहस्यो का उद्घाटन होता है। तो यहाँ पर भ्रातर् व्योम कहा। यह अन्तिम कृतज्ञता ज्ञापित करते है। 'यह अन्तिम प्रणाम-अंजलि मै आपको अर्पित कर रहा हूँ। आपके संग के कारण, आपकी सन्निधि के कारण, आपके सहवास के कारण, साहचर्य के कारण वह परब्रह्म, जो निर्मल है, वह प्रकट हो गया और निर्मल ज्ञान उदित हुआ जिसने समस्त मोह को नष्ट कर दिया। अब मैं परब्रह्म मे लीन हो रहा हूँ—यह आपको अन्तिम प्रणाम है।' यह देवऋण चुक गया। इस प्रकार हमारे समक्ष पूरा रूप आता है—देवयज्ञ का। देवयज्ञ को हम दिन-भर कर सकते हैं संस्कार तो चाहिये। आप लोगों को क्या कमी है? मै आपके केन्द्र के आमन्त्रण पर असम गया था। एक बार वन मे जा रहे थे कार से, एकदम सुनसान। मैंने कहा—उतरो, कुछ देर पैदल चलेंगे। साथ वालो ने कहा—हम भी आपके साथ चलेंगे। मैंने कहा—अकेले-अकेले चलो, वन के मौन के साथ चलो, वन के सगीत के साथ तन्मय होते-होते चलो अकेले-अकेले चलो। निरन्तर आनन्द-रस बरस रहा है। उस रस को पिओगे नहीं तो पुष्ट कैसे होवोगे! उसकी खुशबू आ रही है—

**त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।** —यजुर्वेद

हम दिव्य गन्ध वाले, पुष्टिवर्द्धक, त्रिनेत्र शिव का यजन करते हैं।

खुशबू आ रही है। इस रस को पीओगे नहीं तो पुष्टि कैसे आयेगी, पुष्टि नहीं आयेगी तो आगे काम कैसे करोगे! पुष्टि को पाना सीखना पडेगा। हमारा कैसा भी कर्मक्षेत्र हो, कार्यक्षेत्र हो, जैसी भी स्थिति हो, देव-तत्त्व तो सर्वत्र है, उसको देखो, अनुभव करो। इसके लिये सस्कार चाहिये, शुद्धि भी चाहिये, कुछ प्रशिक्षण भी चाहिये। संगीत सीखते है तो सगीतज्ञ के पास में बैठ करके। हमारे सारे गुरुकुल इसी के लिये थे। वहाॅ गुरु एव गुरु-पत्नी, उनके पास मे रहकर पेडो से, पहाडो से, संवाद करना सीखते थे। वे बताते थे, यह पर्यावरण हमारा गुरु है। इससे बात करना, इससे ज्ञान ग्रहण करना सीखो। इससे जब हम इस प्रकार सवाद स्थापित करते है तो देवयज्ञ हम दिन-भर कर सकते है। दिन-भर ऐसा कोई भी समय, ऐसा कोई भी क्षण नहीं जब हम देवयज्ञ नही कर सकते।

याद रखें, मनुष्य और मनुष्य की कृति में देव-तत्त्व को देखना कठिन है। मनुष्यों में भी जो दुर्जन हैं, उनमें देव-तत्त्व को देखना और भी कठिन है। जिनके प्रति हमारे अन्दर पहले से राग-द्वेष भरे पडे हुए हैं उनके अन्दर देव-तत्त्व को देखना कठिन हो जाता है। इसलिये एकान्त में, जहाॅ अष्टमूर्तियों का विलसन हो रहा है—ये नदियाॅ, ये खेत, ये पहाड़, ये मरुस्थल, इनके अन्दर देव को देखना सरल होता है। पर अकेले रहोगे तो घबरा जाओगे—यदि संस्कार नही हों तो।

अहमदाबाद के एक सज्जन आबू मे मेरे साथ जंगल मे घूमने गये। संध्या का समय, पहुॅच गये एकदम एकान्त जंगल में। कुछ समय के बाद मैंने उनको कहा कि 'भई, इधर से यह एक रास्ता जाता है, इससे सडक पर पहुॅच जाओगे। मुझे थोडी जल्दी है, मैं वापस लौट जाऊॅ?' वे घबरा गये—'अरे! यहाँ अकेले में कैसा डरावना सूनापन है—यहाॅ डर लगता है।' अभी एकान्त से सम्पर्क करने की कुशलता नही। एकान्त मे जाते ही आपका चेहरा एकदम से खिल जाना चाहिये।

मै कह रहा था—खुशबू को लो, कृतज्ञता का ज्ञापन करो, तो यह देवयज्ञ हम 24 घण्टा कर सकते है। तो पहले ऋण का अनुभव करना, कितना ऋण है? फिर उसकी कितनी कृपा है? ऋण का अर्थ तो आप लोग समझते है न? उधार लिया हुआ। जब साधक लोग कहते हैं—महाराज! माला फेरते हैं तब मन नही लगता। मैने कहा—माला फेरते हो

तो क्या किसी पर किरियावर करते हो? राजस्थानी मे ऐसा कहते हैं। किसी पर एहसान करते हो क्या—जब माला फेरते हो तब? आपने किसी से दस हजार रुपये उधार लिये और आपने वादा किया कि प्रतिमाह आपको सौ रुपये वापस लौटाऊँगा। फिर आपको सौ रुपये लौटाने मे तकलीफ हो रही है तो आपको क्या कहा जाय! आप कितने बेईमान व्यक्ति है? क्यों कष्ट हो रहा है? आपने उससे लिया, आप उसको वापस लौटा रहे हैं। जब माला फेरते हैं और मन नहीं लगता तो इसका क्या मतलब हुआ? आपको माला फेरनी है। आप उस देवऋण से उऋण हो रहे है। इसमे दृष्टि के परिवर्तन मात्र से ही आपके मन के अन्दर एक निष्ठा का जन्म होना प्रारम्भ हो जायेगा। इस प्रकार से देवयज्ञ के अन्तर्गत सारी उपासना, सारे तीर्थाटन आ जाते है। सारे तीर्थ! तीर्थों को हमने क्या बना रखा है? तीर्थो के प्रति हमारा क्या दायित्व है? तीर्थ क्यों है? क्या हैं? कैसे हैं? वहाँ क्या व्यवस्थाएँ चल रही हैं? ये सारे विचार देवयज्ञ के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस पर आगे और चिन्तन करेंगे।

# पाँचवाँ प्रवचन

वैदिक सनातन धर्म का हम चिन्तन कर रहे थे। धर्म का प्रभु अच्युत किस प्रकार से हम को प्रेरणा देता हुआ, निरन्तर आगे बढता रहता है। हमने धर्म शब्द की एक विस्तृत व्याख्या को देखा था। सारे विश्व को जो धारण करके रखे हुए है—वह धर्म है। धारण करने का मतलब उसके अन्दर जो Life cycle है, जीवन-चक्र है उसको मेन्टेन करता है, नियमित करता है। सिर्फ किसी चीज को अपने सिर पर धारण कर लिया—ऐसा तात्पर्य नही यहाँ पर। उसके अन्दर एक लिविग सिस्टम है। एक ईको सिस्टम है जो उसको मेन्टेन करता है। क्योकि वह एक लिविंग-सिस्टम है इसलिये क्रियेटिव है, सर्जनात्मक है। उस संदर्भ में हमने देखा था प्रत्येक वस्तु का अपना एक धर्म होता है। उस धर्म नामक तत्त्व के उस वस्तु में न रहने से वह वस्तु, वह वस्तु नहीं रहेगी, वह कुछ और हो जाएगी। जैसे पृथ्वी है तो इसका धर्म क्या है? पृथ्वी के अन्दर ऐसा कौनसा तत्त्व है जो अगर पृथ्वी में नहीं रहे तो पृथ्वी पृथ्वी नही रहेगी? जल के अन्दर कौनसा तत्त्व है जो जल के अन्दर नहीं रहे तो जल जल नहीं रहेगा? अग्नि के अन्दर ऐसा कौनसा तत्त्व है जो उसके अन्दर नहीं रहने से अग्नि अग्नि नहीं रहेगी? इसलिये इसका हम पता लगायेगे कि पृथ्वी के अन्दर कौनसा तत्त्व है जिसके न रहने से पृथ्वी पृथ्वी नहीं है। जैसे हम धर्म शब्द का प्रयोग करते हैं कि अमुक औषधि के अमुक गुण-धर्म है। तो गुण में और धर्म में थोडा-सा अन्तर है। गुण में कमी-वेसी हो सकती है और अगर गुण कम हो गया तो भी वह वस्तु वही वस्तु रहेगी। पर धर्म एक ऐसा मूलभूत हार्द-तत्त्व है, एक आत्मतत्त्व है, एक केन्द्रीय तत्त्व है कि वह यदि निकल गया तो वह वस्तु वह नहीं रहेगी। पृथ्वी का कौनसा धर्म है जिसके न रहने से पृथ्वी पृथ्वी नही रहेगी? जो वेदान्त के विद्यार्थी है, वे तुरन्त इसका जवाब दे देगे। पृथ्वी का गुण है गंध, जल का गुण है रस, अग्नि का गुण है रूप, वायु का गुण स्पर्श है, आकाश का गुण शब्द है। तो शब्द आकाश में नहीं रहे तो

आकाश आकाश नहीं। स्पर्श वायु के अन्दर नहीं रहे तो वायु वायु नहीं है। रूप अग्नि के अन्दर नहीं रहे तो वह अग्नि अग्नि नहीं है। यह मैंने आपको बहुत ही तात्त्विक दृष्टि से बताया। मोटे तौर पर बतायेंगे तो कहेंगे अग्नि का धर्म है जलाना, उष्णता और प्रकाश। इसी प्रकार से मनुष्य का क्या धर्म है? अभी मैं बहुत सूक्ष्म चिन्तन की ओर ले जा रहा हूँ।

मनुष्य का क्या धर्म है? कल मैंने आपको बताया था कि मनुष्यत्व सारे मनुष्यों में, वे चाहे कहीं पर भी हों, रहता है। जैसे सभी गायो मे गोत्व रहता है, गायपना रहता है। वह अगर नहीं है तो गाय गाय नहीं है, कुछ और ही जानवर होगा। उसी प्रकार से सारे मनुष्यों में रहने वाला ऐसा कौनसा तत्त्व है जिसको हम कहें कि जिसके नहीं रहने से मनुष्य मनुष्य नही है? मैंने कुछ संकेत दिया था कि जो युनिवर्सल सत्य है, वह मनुष्य मे एक विशिष्टता को लेकर प्रकट होता है। ऐसे तो वह सत्य सर्वत्र है। हर वस्तु में है, चाहे चर हो या चाहे अचर हो, चाहे जड हो या चाहे अजड हो, सबके अन्दर वह परमेश्वर है। पर मनुष्य मे यह विशेष रूप से प्रकट होता है, अपनी पहचान को लेकर प्रकट होता है। अपने-आप को मानो बताता हुआ प्रकट होता है। उसको मैं थोडा संकेत दूँ—सत्कर्म, सत्चिंतन, सत्भावना। सत्कर्म, सत्भावना, सत्चिन्तन—ये यदि मनुष्य के अन्दर से निकल गये तो वह मनुष्य मनुष्य नही है। इसको और अधिक स्पष्ट व खुलासा करता हुआ कहूँ तो सत्-अनुभूति और सत्-अभिव्यक्ति—यह मनुष्यत्व है।

आप लोगो ने प्रसिद्ध श्लोक सुना होगा—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या। मेरे को कई लोग पकड लेते है, आप तो अद्वैत वेदान्त को मानने वाले हैं—ससार को मिथ्या बता रहे है। मैने कहा—मिथ्या कब बताया। पहले कहा—ब्रह्म सत्यं। ब्रह्म सत्य है। तो सत्य क्या है? सत्-भावना, सत्-कर्म, सत्-चिन्तन, सत्जन, सत्ग्रंथ। सत् के बिना तो हमारा अस्तित्व ही नही है। इसलिये सत् को लेकर हमारा सारा व्यवहार, सारी जीवन की शैली, सब सत् के ऊपर अधारित है। कहते है—वह बडा सत्-पुरुष है, सज्जन है। यह सत् क्या है? थोडा चिन्तन करना। वेदान्त जिन्होने पढा है वे सत् की परिभाषा में तुरन्त बोल जाते है—तीनो काल के अन्दर जिसका लोप नही होता, तीनो कालो मे जो रहता है उसको सत् कहते हैं।

यह रटी-रटायी परिभाषा है पर हम रटी-रटायी परिभाषाओं से काम नही चलाते। इसके लिये मनन करना पडता है। मनन करने की भी विशिष्ट शैली है। जो मन के अन्दर ढर्रा बन चुका है उसको थोडा-सा उखाडके, अलग करके, तोड-फोड करके, बदल करके हम कुछ परिभाषा को सामने रखते है तो मनन शुरू हो जाता है। इसलिये सुनो! सत् वह है जो निरन्तर बदलता रहता है। सत् की परिभाषा क्या है—जो निरन्तर बदलता रहता है। अब आप गडबडा जायेगे कि यह क्या सत् हुआ? एक तरफ तो कह दिया जो तीनो कालों मे एक-सा रहता है। तीनो कालो में रहने का अर्थ एक अतीत, एक वर्तमान और एक भविष्य हो गया। अर्थात् जो तीनो कालो मे एक साथ रहता है, मतलब जो कभी नहीं बदलता वह सत् है। पर मैने दुबारा कह दिया—जो निरन्तर बदलता रहता है वह सत् है। दोनो में आपको अन्तर लगा।

एक लडका था। वह बहुत अच्छा अभिनय करता था। एक कार्यक्रम मे उसने मोनोएक्टिग की। मच पर कभी प्रकाश और कभी तुरन्त ही अँधेरा हो जाता था। वह बालक कभी बुड्ढा हो जाता है, कभी स्त्री बन जाता है, कभी राजा बन जाता है, कभी रक बन जाता है—बडी जल्दी-जल्दी वह रूप बदल लेता। दर्शक अलग-अलग रूप देख रहे थे। दर्शकों में उसकी माँ भी थी। माँ निरन्तर पहचान रही थी—यह बुड्ढा भी वही, यह स्त्री भी वही।

तो जो निरन्तर बदलता रहता है, अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखते हुए, बिना बदले हुए जो बदलता जाता है उसको सत् कहते है। इसका मतलब—सत् कितना सर्जनात्मक है जो बिना बदले हुए बदलता जाता है, नव-नव रूपों में अपने-आप को प्रकट करता जाता है—बिना बदले हुए, उसको सत् कहते हैं। सोना बिना बदले हुए नाना आकृतियों को लेते जाता है। बिल्कुल सरल हो गया समझना। सोना कभी अंगूठी बन गया, कभी हार बन गया। मिट्टी बिना बदले हुए अपने-आप को नव-नव रूपों में प्रकट करती रहती है। यह जो सर्जनात्मक शक्ति सृष्टि में काम कर रही है, यह कैसी है—यह एक है, यह चैतन्य है, यह आनन्दमयी है, यह अद्वितीय है। इसका प्रकटन मौलिक है। मौलिकता का मतलब अपने मूल स्वभाव को सुरक्षित रखते हुए नव-नव रूपों में प्रकटन। यह जो शक्ति है

उसको सत् कहते हैं। सत् हमेशा सुन्दर होता है। जहाँ-कहीं पे स मौलिक सर्जन होगा, वहाँ पर सुन्दरता होगी। जहाँ पर सुन्दरता है वहाँ प एक हारमनी है। अपने-आप में हारमनी है और अपने पर्यावरण के स एक हारमनी है। तो यह जो एक सत् है उसको समझना, सत्कर्म सत्भावना, सत्चिन्तन—ये जहाँ पर अभिव्यक्त होते हैं, वह मनुष्य क धर्म है। इस प्रकार से वैदिक सनातन धर्म हर वस्तु के लिये, हर प्राणी के लिये एक परिभाषा हमारे सामने रखता है, सबको जोड करके रखता है। पर जैसा मैंने आपको बताया, मनुष्य कैसा अद्भुत प्राणी है! उसके अन्दर कर्म करने की शक्ति प्रकट होती है, वह भी उसका धर्म है। तो सत्कर्म का अर्थ हो गया उसमें एक नूतन कर्म करने की शक्ति है। क्रिया को कर्म नहीं कहते हैं। कर्म के अन्दर एक संकल्प जुडता है, एक स्वातंत्र्य उसमें आता है। तो ऐसी शक्ति से सम्पन्न यह मनुष्य, यह इसका धर्म है।

फिर मैने आपको बताया कि सनातन धर्म के अन्तर्गत मनुष्य कैसा आचरण करे जिसके द्वारा वह विश्वजीवन के साथ लय में हो जाय? जिससे वह अपना अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध करे, उस प्रकार की जीवनशैली को धर्म कहते हैं, और उसके अन्तर्गत एक न बदलने वाला रूप भी बताया—दश धर्म-लक्षण बताये। एक बदलने वाला आचार सम्बन्धी, एक व्यवहार सम्बन्धी। देश-काल-परिस्थिति के अनुसार जो बदलता जाता है उस रूप को भी बताया था। ऐसे वैदिक सनातन धर्म के बारे मे हम लोग चिन्तन और विमर्श कर रहे थे। उस प्रवाह में हमने देखा—वैदिक सनातन धर्म के अन्तर्गत ये कई प्रकार की संस्थाएँ हैं, उस हार्द को व्यवहार में, अनुभूति में लाने के लिए कई प्रकार की संस्थाएँ हैं। पर यह संस्था के अन्दर समाप्त हो जाने वाला धर्म नहीं है। इसके अन्तर्गत संस्थाएँ तो है, नाना-प्रकार की सस्थाएँ है। तीर्थ एक संस्था है, मन्दिर एक संस्था है, महन्त एक संस्था है, सत्संग एक संस्था है पर सनातन धर्म संस्था में समाप्त होने वाला धर्म नही, जैसा कि संस्थागत धर्मो का स्वरूप होता है। जो संस्थागत धर्म होते हैं उनके अन्दर संस्था जो आदेश, जो फरमान निकाल देती है उसका पालन करना उसके प्रत्येक सदस्य के लिये अनिवार्य हो जाता है। ऐसा हमको आदेश देने वाला हमारे यहाँ न कोई महन्त है, न कोई गुरु है, न कोई एक ग्रन्थ है। कोई एक ग्रन्थ

भी नही है जो ऐसा आदेश निकाल देता है कि आपको ऐसा ही करना पडेगा। यहाँ कोई एक मसीहा भी नहीं है, पैगम्बर भी नही है। इसलिए यह इतने आयामो को लेकर चला है। एक पन्थ, एक पैगम्बर, एक ग्रन्थ, एक धर्मगुरु, एक चर्च—ऐसा हमारे वैदिक सनातन धर्म मे नहीं है। इसलिए इस तथ्य का स्मरण करके हम लोग आगे बढते-बढते आ रहे थे कि एक देवयज्ञ है, एक देवऋण है। यदि हमने देवयज्ञ, देवऋण की अवधारणा को नहीं समझा तो हमारा जो सारा-का-सारा भक्ति साहित्य का आन्दोलन, हमारी उपासना, हमारे तीर्थ, हमारे पर्व एव व्रत हैं उनमें एक बहुत ही मूलभूत कमी आ जायेगी। इसलिये पहले देवऋण को समझें। ज्यों ही हमने देवऋण को समझा त्यों ही हमारे मन में अपने-आप आयेगा, इस ऋण का विमोचन होना चाहिये। उसके अन्तर्गत हम देवयज्ञ का विचार कर रहे थे। हम देवऋण का जितना-जितना गहराई से चिंतन करेगे तो पायेगे कि उस देवऋण के बिना तो मैं इस हाथ को भी नहीं उठा सकता। इस सूर्यदेव के कारण, इस हवा के कारण मेरा खून चल रहा है, मेरा हृदय धडक रहा है, हाथ-पैर उठ रहे हैं, हृदय धड़क रहा है। पर पता नही कहाँ से एक तत्त्व आ गया जिसको हम कहते हैं—अहंकार।

अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते। —गीता, 3/27

अहंकार से अतिमूढ हुआ व्यक्ति 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा मानता है।

भगवान् को अधिकार है हमें 'विमूढात्मा' कहने का। हम अपने-आप को भी विमूढात्मा नहीं कह सकते और हमारे साथ में जो जुडे हुए लोग हैं उनको भी 'विमूढात्मा' नहीं कहते। उल्टा उनके कर्तृत्व को जाग्रत् करते हैं, 'उतिष्ठत जाग्रत्'—उठो जागो। इसलिये वैदिक सनातन धर्म कब किसको क्या उपदेश दे रहा है—इसको समझना पडेगा। इसलिये हमारे सामने सर्वप्रथम एक ऐसा व्यक्ति आया जिसके अन्दर कामना है। कामना बडी अच्छी चीज है। अगर किसी के अन्दर कामना नहीं है तो उसको मांस का पिण्ड समझेगे। बडा ही जड समझेगे। क्या पत्थर जैसा है! कहते हैं न—गोबर-गणेश है। किसी बालक के अन्दर चंचलता नहीं, वह उछले नहीं, गाये नहीं, बदमाशी नहीं करे, नटखट नहीं हो तो उस बालक को क्या कहेगे? यह भी कोई बालक है! गोबर-गणेश है। गणेश-चतुर्थी को गोबर का गणेश बना देते है न! गोबर-गणेश है। यह तो जहाँ,

जैसा रखो—पड़ा रहेगा। तो कामना होना अच्छा है। कामना के बि
हमारे अन्दर सर्जनात्मकता आ नहीं सकती। हम आनन्द की तरफ
नहीं सकते। हम मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। काम का पूर्णकाम हो ज
ही तो मोक्षरूप हो जाना है, ईश्वररूप हो जाना है, ब्रह्मरूप हो जाना है
'उसने—परमेश्वर ने कामना की कि मैं एक से बहुत हो जाऊँ।' तो ह
कामना करने मे क्या तकलीफ हो रही है? जो धर्म के अविरुद्ध क
है—भगवान् कहते हैं वह मेरा रूप है। इसलिये कामनापूर्ति की ब
उसका तरीका, उसका कौशल, उसकी कला, उसका विज्ञान उसको ब
दिया—यज्ञ के नाम से। पर साथ ही कहा—तुम्हारे ऊपर ऋण पड़ा हु
है। कौन-सा ऋण पड़ा हुआ है। पाँच ऋणों का उल्लेख और उन
अन्तर्गत कौन-सा ऋण आ गया। देवऋण आ गया। तो इस देवऋण
हटाने के लिये, इसका शोधन करने के लिये देव की उपासना प्रति
करनी चाहिये। उसके अन्तर्गत सबसे पहले देव-तत्त्व क्या है, उस
हमने चिन्तन कर लिया। यदि कोई व्यक्ति ऐसा मान लेता है कि जो
है या महादेव है या जो परमेश्वर है, आकाश में इतने किलोमीटर दूर बै
हुआ है, वह अलग, हम अलग। यानी आत्मा अलग, ईश्वर अलग
प्रकृति अलग या कह दिया देव नाम की कोई चीज नहीं है, देव है ही नहीं।
सिर्फ प्रकृति और जीव है। जीव अभी प्रकृति में उलझा हुआ है। राग-द्वे
में उलझा हुआ है, इससे छूट जाय। बस, यही उसकी मुक्ति की अवस्था
है। इन सबको समाहित करके अपने आलिंगन में बाँधकर, अपनी गोद में
बैठाकर रखने वाला दर्शन अद्वैत-दर्शन है। सभी मत-मतान्तरो को, यहाँ
तक कि नास्तिकता को भी अपनी गोद में बैठाकर रखने वाला, उसको
छाया देने वाला, उसको यथास्थान देने वाला वैदिक सनातन धर्म है। यह
वैदिक सनातन धर्म कहता है कि देव-उपासना प्रतिदिन करनी चाहिये।
देवयज्ञ रोज करना चाहिये। देव-तत्त्व क्या है? इसके अन्दर एक
पारिभाषिक शब्द है।

ज्ञान होता है वह वस्तु-तन्त्र होता है और उपासना होती है पुरुष-
तन्त्र। ज्ञान वस्तु-तन्त्र अर्थात् जैसी वस्तु है वैसा ही आपको ज्ञान होगा।
अगर आपके जानने का साधन सही है तो जैसी वस्तु है वैसा ज्ञान हो
गया। और उपासना पुरुष-तन्त्र होती है अर्थात् मैं किसी की उपासना

करूँ तो मेरी जैसी भावना है उसके अनुसार मेरी उपासना होगी। सामने एक शालिग्राम रख दिया और कहा—उसके अन्दर विष्णु की भावना करो, सामने एक पिण्डी रख दी और उसके अन्दर शिव की भावना करो—तो यह जो भावना करना है यह पुरुष-तन्त्र हो गयी। उपासना का अर्थ है—'उप' माने पास मे और आसन माने जाकर बैठना। इसको उपासना कहते है। तो उपासना कितने प्रकार की होती है? बडे संक्षेप में बताऊँगा।

एक निर्गुण उपासना होती है, एक निर्गुण-निराकार की उपासना, एक सगुण-निराकार की उपासना, एक सगुण-साकार की उपासना और एक अवतार की उपासना। वेद में जो उपासना के विषय में बताया गया वह बडा कठिन है। पुराण-आगम वर्णित उपासनाएँ सरल हैं। पर उपास्य रूप मनुष्य द्वारा कल्पित नहीं हैं। उस निराकार ब्रह्म ने ही अपने दिव्य रूपो को प्रकट किया है—'उपासकानां कार्य-सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूप-कल्पना'।

ये दिव्य रूप कोस्मिक प्रोजेक्शन्स हैं? इनको नित्य-अवतार कहते हैं। ये जो ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं, शिव हैं, ये जो दुर्गा हैं, सरस्वती हैं, लक्ष्मी हैं—ये नित्य अवतार हैं। जब सृष्टि प्रारम्भ होती है तब इस प्रकार के दिव्य रूप प्रकट हो जाते हैं और इनके दिव्य लोक भी हैं। ये नित्य अवतार हैं। इनकी उपासना के लिये शास्त्रों में अद्भुत कलामय विज्ञान है। विज्ञान मे और कला में थोडा अन्तर है। पहले विज्ञान उसके बाद में कला, पहले शिल्प उसके बाद वह कला का रूप ले लेवे। आप संगीत सीखते हैं तो पहले खूब अभ्यास करो, उसकी मास्टरी करो। चाहे कोई गाना हो या किसी वाद्ययंत्र का बजाना हो। खूब परिश्रम करके, अनुशासित होकर, उसके सारे नियमो को जानकर खूब अभ्यास करो। उसमे मास्टरी करलो तब जाकर कला का रूप प्रकट होता है। वह चाहे आपकी शूटिंग हो, चाहे तीर चलाना हो, चाहे कुछ भी करना हो, हमारे यहाँ पर जीवन के हर शिल्प को, हर उद्योग को, विज्ञान को कला की तरफ ले गये। तभी तो हमने भोजन बनाने को भी पाककला कहा, भोजन परोसना भी एक कला है, भोजन खाना भी एक कला है। तो सब-कुछ कलामय है। सारा जीवन कलामय है। इसलिये हमारे यहाँ मनमाने ढंग से

जैसा रखो—पडा रहेगा। तो कामना होना अच्छा है। कामना के बिना हमारे अन्दर सर्जनात्मकता आ नहीं सकती। हम आनन्द की तरफ जा नही सकते। हम मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते। काम का पूर्णकाम हो जाना ही तो मोक्षरूप हो जाना है, ईश्वररूप हो जाना है, ब्रह्मरूप हो जाना है। 'उसने—परमेश्वर ने कामना की कि मै एक से बहुत हो जाऊँ।' तो हमे कामना करने मे क्या तकलीफ हो रही है? जो धर्म के अविरुद्ध काम है—भगवान् कहते है वह मेरा रूप है। इसलिये कामनापूर्ति की बात, उसका तरीका, उसका कौशल, उसकी कला, उसका विज्ञान उसको बता दिया—यज्ञ के नाम से। पर साथ ही कहा—तुम्हारे ऊपर ऋण पडा हुआ है। कौन-सा ऋण पडा हुआ है। पाँच ऋणो का उल्लेख और उनके अन्तर्गत कौन-सा ऋण आ गया। देवऋण आ गया। तो इस देवऋण को हटाने के लिये, इसका शोधन करने के लिये देव की उपासना प्रतिदिन करनी चाहिये। उसके अन्तर्गत सबसे पहले देव-तत्त्व क्या है, उस पर हमने चिन्तन कर लिया। यदि कोई व्यक्ति ऐसा मान लेता है कि जो देव है या महादेव है या जो परमेश्वर है, आकाश में इतने किलोमीटर दूर बैठा हुआ है, वह अलग, हम अलग। यानी आत्मा अलग, ईश्वर अलग और प्रकृति अलग या कह दिया देव नाम की कोई चीज नही है, देव है ही नहीं। सिर्फ प्रकृति और जीव है। जीव अभी प्रकृति में उलझा हुआ है। राग-द्वेष मे उलझा हुआ है, इससे छूट जाय। बस, यही उसकी मुक्ति की अवस्था है। इन सबको समाहित करके अपने आलिंगन में बाँधकर, अपनी गोद में बैठाकर रखने वाला दर्शन अद्वैत-दर्शन है। सभी मत-मतान्तरों को, यहाँ तक कि नास्तिकता को भी अपनी गोद मे बैठाकर रखने वाला, उसको छाया देने वाला, उसको यथास्थान देने वाला वैदिक सनातन धर्म है। यह वैदिक सनातन धर्म कहता है कि देव-उपासना प्रतिदिन करनी चाहिये। देवयज्ञ रोज करना चाहिये। देव-तत्त्व क्या है? इसके अन्दर एक पारिभाषिक शब्द है।

ज्ञान होता है वह वस्तु-तन्त्र होता है और उपासना होती है पुरुष-तन्त्र। ज्ञान वस्तु-तन्त्र अर्थात् जैसी वस्तु है वैसा ही आपको ज्ञान होगा। अगर आपके जानने का साधन सही है तो जैसी वस्तु है वैसा ज्ञान हो गया। और उपासना पुरुष-तन्त्र होती है अर्थात् मैं किसी की उपासना

करूँ तो मेरी जैसी भावना है उसके अनुसार मेरी उपासना होगी। सामने एक शालिग्राम रख दिया और कहा—उसके अन्दर विष्णु की भावना करो, सामने एक पिण्डी रख दी और उसके अन्दर शिव की भावना करो—तो यह जो भावना करना है यह पुरुष-तन्त्र हो गयी। उपासना का अर्थ है—'उप' माने पास में और आसन माने जाकर बैठना। इसको उपासना कहते हैं। तो उपासना कितने प्रकार की होती है? बड़े संक्षेप में बताऊँगा।

एक निर्गुण उपासना होती है, एक निर्गुण-निराकार की उपासना, एक सगुण-निराकार की उपासना, एक सगुण-साकार की उपासना और एक अवतार की उपासना। वेद में जो उपासना के विषय में बताया गया वह बडा कठिन है। पुराण-आगम वर्णित उपासनाएँ सरल है। पर उपास्य रूप मनुष्य द्वारा कल्पित नहीं है। उस निराकार ब्रह्म ने ही अपने दिव्य रूपों को प्रकट किया है—'उपासकानां कार्य-सिद्ध्यर्थं ब्रह्मणो रूप-कल्पना'।

ये दिव्य रूप कोस्मिक प्रोजेक्शन्स हैं? इनको नित्य-अवतार कहते हैं। ये जो ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं, शिव है, ये जो दुर्गा हैं, सरस्वती हैं, लक्ष्मी हैं—ये नित्य अवतार हैं। जब सृष्टि प्रारम्भ होती है तब इस प्रकार के दिव्य रूप प्रकट हो जाते हैं और इनके दिव्य लोक भी हैं। ये नित्य अवतार हैं। इनकी उपासना के लिये शास्त्रो मे अद्भुत कलामय विज्ञान है। विज्ञान में और कला में थोडा अन्तर है। पहले विज्ञान उसके बाद में कला, पहले शिल्प उसके बाद वह कला का रूप ले लेवे। आप संगीत सीखते है तो पहले खूब अभ्यास करो, उसकी मास्टरी करो। चाहे कोई गाना हो या किसी वाद्ययंत्र का बजाना हो। खूब परिश्रम करके, अनुशासित होकर, उसके सारे नियमों को जानकर खूब अभ्यास करो। उसमें मास्टरी करलो तब जाकर कला का रूप प्रकट होता है। वह चाहे आपकी शूटिंग हो, चाहे तीर चलाना हो, चाहे कुछ भी करना हो, हमारे यहाँ पर जीवन के हर शिल्प को, हर उद्योग को, विज्ञान को कला की तरफ ले गये। तभी तो हमने भोजन बनाने को भी पाककला कहा, भोजन परोसना भी एक कला है, भोजन खाना भी एक कला है। तो सब-कुछ कलामय है। सारा जीवन कलामय है। इसलिये हमारे यहाँ मनमाने ढंग से

मूर्ति बना दी, ऐसा नही। मूर्ति बनाना भी एक श्रेष्ठ कला है। कलाकार तपस्वी होता है। व्रत, उपासना आदि करके, ध्यान करके शास्त्र मे जैसा वर्णित है उसके अनुसार मूर्ति का निर्माण करता है। तो यह मूर्ति, यन्त्र, तन्त्र, मन्त्र—इन सबको लेकर हमारे यहाॅ पर मन्दिरों का विकास हुआ। मूर्ति-उपासना का विकास हुआ। इसके कई अंग हैं, मुख्यतः पाँच अंगों का उल्लेख हुआ है।

पहले किसी एक देव-रूप का वरण कर लेना चाहिये। भगवान् भाष्यकार श्री शंकराचार्यजी ने छः मतों की स्थापना की, पर आधार मे एक निर्गुण-निराकार अद्वैत ब्रह्म ही रखा। शंकराचार्यजी को शिव का अवतार ही मानते हैं। अभी हम लोग त्रिचुर में बडक्कनाथ के मन्दिर गये थे। बडक्कनाथ का अर्थ है—जो उत्तर से आया। तो उत्तर से कैलाशपति वहाॅ आ गये। शंकराचार्यजी के पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम आर्याम्बा था। सन्तानप्राप्ति के लिये इस ब्राह्मण-दम्पती ने इसी मंदिर मे तपस्या की। शिव ने प्रसन्न होकर दर्शन दिये और वर दिया कि मैं ही अश-रूप में आपका पुत्र होकर अवतरित होऊँगा। तो इन शंकरावतार शंकराचार्यजी को षण्मत-स्थापनाचार्य कहते हैं। एक अद्वैत को मानने वाले ने देखो कैसी अद्भुत रीति से सारे देश को जोडा! पंचदेव-पूजा आप लोग जानते है? पंचदेव मे कौन-कौन देव है? गणेश, शिव, देवी, विष्णु और सूर्य। मैंने गणेश का नाम पहले बोला। शिवजी भी गणेश की उपेक्षा नहीं करते।

जब शिव-पार्वती का विवाह होने लगा तो आहुति जली ही नही। सबने सोचा कि कुछ गडबडी हो गयी लगती है। तब गणेशजी ने कहा—मेरी पूजा आपने की ही नहीं, विवाह कैसे करने जा रहे है! जब त्रिपुर का सहार करने के लिये शिव ने अपना धनुष उठाया तो तीर चला ही नहीं। तीर चला ही नहीं क्योंकि शिव के अंगूठे के पास में गणेशजी तीर को पकडे बैठे हुए थे। गणेशजी ने कहा—प्रथम मेरी पूजा करें, उसके बाद मे तीर चलेगा। यह गणेशजी तो शाश्वत है। शंकराचार्यजी षण्मत-स्थापनाचार्य थे। इन्होने पंचदेवों के साथ कुमारस्वामी को भी लिया। कहीं दक्षिण भारत वाले लोग नाराज न हो जाएँ। कुमार तो रूठकर दक्षिण भारत में आकर बैठ गये थे। आपको पूरी कहानी मालूम है न! तो देव-उपासना

के अन्तर्गत हम देखते है कि प्रत्येक देवता की उपासना पाँच अंगों को लेकर पूर्ण होती है। हृदय, कवच, गीता, सहस्रनाम, स्तोत्र—इन पाँच अंगों को लेकर देव-पूजा की जाती है। इन अंगों के विषय में बताया कि गीता इसका शिरोभाग है। सहस्रनाम देवता का मुख है। हृदय उस देवता का हृदय है, कवच उस देवता का शरीर है, स्तोत्र उस देवता के चरण है। तो इस प्रकार से प्रत्येक देवता की पूजा की जाती है। पूजा तेजस्वी तब होती है जब इस प्रकार से सभी अंगों को अपनाते हैं। इसके साथ ही मन्त्र-जप किया जाता है। प्रत्येक देवता का एक नही, अनेक मन्त्र होते हैं। उस देवता के नाना प्रकार के आयाम, नाना प्रकार के रूप, तदनुसार अनेक मन्त्र। शिव के अनेक मन्त्र है, अनेक रूप है। दक्षिणामूर्ति भी शिव का एक रूप है। उसी प्रकार नटराज भी शिव का एक रुप है। दक्षिणामूर्ति उपासना में भी अनेक उपास्य रूपो का उल्लेख है। उपासना का तन्त्रो मे बडा विस्तार किया हुआ है। इसको एक भटकाव या उलझन में डालने वाली बात नहीं समझ लेना। जिसके अन्दर जितना ज्यादा वैभव आयेगा, उतना-उतना उसके अन्दर एक विस्तार आयेगा। तो ऐसे, उपासना को लेकर हमारे यहाँ अत्यन्त विस्तार हुआ। फिर अवतार आये तो बस, पूछो ही मत! कितने अवतार! दशावतार प्रसिद्ध है। पहला अवतार मत्स्यावतार, फिर कूर्म, वराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध, फिर कल्कि अवतार आयेगा। तो ये दशावतार हुए। ये जो दशावतार हुए, इन्होंने उपासना को एक पूर्ण रूप दे दिया। देव-उपासना के अन्तर्गत इन सबको स्वीकार करते हुए हमको एक इष्ट-देवता चुन लेना चाहिये। मै तो सबको मानता हूँ, सब रूपों को मानता हूँ—बहुत अच्छी बात है। मै तो निर्गुण को मानता हूँ—ठीक बात है। निर्गुण को मानते हैं, तो क्या निर्गुण उपासना मे आपका मन लगता है? यदि हॉ, तो बहुत अच्छी बात है। निर्गुण की उपासना करना बहुत कठिन है। उसके ऊपर की सीढी है ज्ञान का अभ्यास करना। 'तत्त्वमसि' कह दिया तो ज्ञान हो गया क्या?

सनक, सनत्, सनन्दन, सनत्कुमार—चार कुमार थे। ब्रह्माजी ने उनकी मानसिक सृष्टि की थी। इसको कपोल-कल्पना मत समझ लेना। इसको जितना-जितना आप यथार्थ समझेंगे उतना-उतना आप अनुभूति की तरफ बढेंगे। तो ब्रह्माजी ने इन चारो कुमारों की मानसिक सृष्टि की।

और ब्रह्माजी ने कहा—सृष्टि कार्य मे मेरा सहयोग करो। उन्होंने पूछा—आप कौन है? हम कौन है? तो ब्रह्माजी ने कहा—इसका उत्तर मेरे पास नही है। इसका उत्तर जानना हो तो उत्तर दिशा की ओर जाओ। वे उत्तर दिशा की तरफ चल दिये, तीव्र जिज्ञासा को लेकर। विवेकानन्दजी की जिज्ञासा को मैने आपको बताया था न? स्वयं उनका जीवन, उनकी अस्मिता, उनका पूरा व्यक्तित्व जैसे एक आग की लौ जैसा हो गया। कहाँ है ईश्वर? कैसा है ईश्वर? है तो दिखाई क्यों नहीं देता? ऐसे ही वह तत्त्व क्या है? आत्मतत्त्व क्या है? ब्रह्म-तत्त्व क्या है? यह तीव्र जिज्ञासा। शुद्ध सत्त्व से युक्त थे चारो कुमार। उनके सामने ब्रह्म ने स्वयं को दक्षिणामूर्ति रूप मे प्रकट किया, उन्हे चिन्मुद्रा दिखाई। चिन्मुद्रा, ज्ञानमुद्रा दिखाते ही उनको ज्ञान हो गया। इतने मात्र से उनको ज्ञान हो गया। यह ज्ञान की साधना बडी कठिन है, उसके लिये उच्च कोटि का निर्मल और अत्यन्त ही सुसस्कृत साधक चाहिये। उससे नीचे की श्रेणी का साधक वह है जो निर्गुण उपासना कर सके।

क्यो भई! व्यक्त को प्यार करना सरल है या अव्यक्त को प्यार करना सरल है? व्यक्त को, जो मेनीफेस्ट है उसको प्रेम करना सरल है या जो अनमेनीफेस्ट है, अव्यक्त है उसको प्रेम करना सरल है? जो व्यक्त को प्रेम नही कर सकता वह अव्यक्त को प्रेम कैसे कर सकता है! पर याद रखिये, जब-कभी हम व्यक्त को प्रेम करते है तब वास्तव में अव्यक्त को ही प्रेम कर रहे होते है। हम जब-कभी किसी व्यक्ति को प्रेम कर रहे होते है तो उसके अन्दर भी एक अव्यक्त है, हम उससे ही प्रेम कर रहे होते है। अगर आपने सिर्फ व्यक्त को ही प्रेम किया तो सबसे पहले व्यक्त तो यह शरीर ही है और शरीर को ढकके रखने वाला एक वस्त्र ही है। अगर आपने सिर्फ वस्त्र को प्रेम किया तो क्या वह प्रेम धीरे-धीरे करके समाप्त नही हो जाएगा? कपडों का फैशन बदला तो प्रेम भी बदला। और अगर आपने सिर्फ इस वसन को, जिसको कहते है चमडी, इसको ही प्रेम किया तो आपका प्रेम कितने दिन रहेगा? इस चमडी को सजाते रहे, इसे जवान करने की कोशिश करते रहे तो कितने दिन का प्रेम रहेगा? झुर्रियाँ पडेगी। शरीर जर्जर होगा। इसलिये हमारे यहाँ महत्त्व दिया है आत्मा को। 'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' (बृहदारण्यक

उपनिषद् 2.4.5)। वह जो आत्मा है वही परम प्रेमास्पद है। जहाँ–कही भी हमारी आत्मीयता जुड़ जाती है, वहाँ पर हमको प्रेम होने लगता है और ज्योंही वहाँ से आत्मीयता हटी तो प्रियता भी समाप्त हो जाती है। इसलिये वास्तव में तो हम अव्यक्त को ही प्रेम कर रहे होते है। अव्यक्त को प्रेम करना बहुत कठिन है। व्यक्त–व्यक्त को प्रेम करते–करते अव्यक्त को प्रेम करने की कुशलता, कला आ जाती है। इसलिये गृहस्थाश्रम प्रेम करना सीखने की साधना–स्थली है। गृहस्थाश्रम किसलिये? प्रेम करने, सीखने की साधना के लिये ही गृहस्थाश्रम। इसलिये जब प्रेम का प्रसग आ जाता है तब मै कह देता हूँ—तुलना की दृष्टि से जो पारिवारिक प्रेम है वह एक मटकी मे भरे हुए पानी के समान है। और जो समाज को प्रेम करना शुरू कर देता है उसके प्रेम को समझें तालाब के पानी के समान और जो राष्ट्र को प्रेम करना शुरू कर देता है उसका प्रेम भाखडा डेम में जो पानी है, उसके समान है। जो मानव मात्र को प्रेम करना शुरू कर देता है, उसका प्रेम मानो समुद्र के समान है। और जो ईश्वर को प्रेम करता है उसकी तो कोई उपमा ही नहीं है। क्योकि वह अगाध है, अनन्त है। प्रेम करना कोई यान्त्रिक क्रिया नहीं है। उपासना=उप+आसन यानी पास मे जाना। तो पास में जाओगे तो कैसे जाओगे? एक आत्मीयता को लेकर, एक प्रेम को लेकर, एक श्रद्धा को लेकर जाओगे। तो यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट स्तर हो गया।

इसके पूर्व एक स्तर आता है सगुण–निराकार का। सगुण भी निराकार होता है। आर्यसमाजी सगुण–निराकार को मानते है। वे मानते हैं प्रकृति अलग है, ईश्वर अलग है, और ईश्वर सगुण–निराकार है। सगुण–निराकार का अर्थ क्या हुआ? वह सर्वशक्तिमान है। वह कृपामय है, वह प्रेम करने वाला है, वह न्याय करने वाला है। वह ज्ञान का भण्डार है। वह वैराग्य का भण्डार है। इस प्रकार से इन गुणो को लेकर षडैश्वर्य को लेकर है ईश्वर। ऐसे षड्–ऐश्वर्य से युक्त ईश्वर—वह ईश्वर निराकार है, वह साकार नहीं है। उससे बढकर सनातन धर्म वाले कहते है—नहीं वह सगुण है और साकार भी है। वह सगुण–साकार है। ये जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, यह काली—ये दशमहाविद्याएँ, ये लक्ष्मी, ये सरस्वती, ये सारे के सारे क्या है? कॉस्मिक प्रोजेक्शन्स हैं। दिव्य रूप हैं और इनके दिव्य

लोक भी है। वह निर्गुण-निराकार अवतार भी लेता है। राम और कृष्ण मुख्य अवतार है। अभी हमारा पूरा भारत मानो कृष्णमय और राममय है। कृष्ण और राम के बिना हम रह नहीं सकते। इनकी उपासना किस प्रकार की जाय—इसका वर्णन बड़े विस्तार से हुआ है पुराणों में, तन्त्र, आगम आदि ग्रन्थो मे। ये सारे ग्रन्थ उपासना-विधि से भरे पडे हैं। इसको हम ढकोसला नहीं मानते। देव-उपासना के अन्तर्गत हमारे सारे मन्दिर व तीर्थ आ जाते हैं, हमारे सारे व्रत व सारे पर्व आते हैं। पूरा वर्ष व्रतों से, पर्वो से भरा पडा है। चैत्र शुक्ल पक्ष से प्रारम्भ करते हैं हम उत्सवो को, पर्वो को मनाना। पहले ही आ गयी नवरात्रि, उसके बाद कितने पर्व! हमारे यहाँ तो सोमवार का भी व्रत है, मंगल का भी व्रत है, बुध का भी व्रत है—ऐसा कोई वार नहीं, ऐसा कोई दिन नही जो व्रत आदि से शून्य हो। यह अष्टमी है, यह चतुर्थी है, यह ऊभछठ है, यह करवा-चौथ है, तो देखो कितने-सारे व्रत है!

देव-उपासना के अन्तर्गत हमारा पूरा जीवन, हमारा समाज, हमारी सारी कलाएँ, हमारे रीति-रिवाज—सभी आ जाते हैं। इन सब में देव-उपासना ओत-प्रोत है। तो इन दीवाली, होली, नवरात्रि आदि पर्वो के कारण हमारी संस्कृति समृद्ध है, इनको मनाने से देवऋण का विमोचन होता है। जब देवऋण विमोचन की भावना होती है तो हमारे अन्दर एक निष्ठा उत्पन्न होती है। यदि वह निष्ठा नही आयेगी तो पन्थवाद, मतवाद, दुराग्रहवाद—ये आना शुरू हो जाते है। देवऋण की भावना नही, क्योकि देव को भूल गये और देवऋण को भूल गये। इसके कारण ही हमारे वैदिक सनातन धर्म में यह वैष्णवाइट, यह शैवाइट, यह गणेश को मानने वाला, यह सूर्य को मानने वाला—यह लडाई-झगडा शुरू हो गया।

महाराष्ट्र की बात है। गणेशचतुर्थी से लेकर अनन्तचतुदर्शी तक एक बड़ा-भारी उत्सव होता है। आप लोग महाराष्ट्र को जानते है। अन्तिम दिन गणेश-मूर्ति का विसर्जन करते है। जिस पार्थिव विग्रह को बनाया था उसे तालाब, झील या नदी मे विसर्जित करते है। इसके पहले नगर मे जहाँ-जहाँ मूर्तियाँ होती है, उनको लेकर एक शोभायात्रा निकालते हैं। उस शोभायात्रा की एक परम्परा होती है। ऐसा ही एक बार हुआ—अलग-अलग मोहल्लों के लोग गणेशजी को लेकर आ गये किन्तु

ब्राह्मणो के मोहल्ले के गणेशजी नहीं पहुँच पाये। हरिजन मोहल्ले के लोग अपने गणेशजी को लेकर सबसे आगे आकर खडे हो गये। शोभायात्रा प्रारम्भ होने ही वाली थी कि ब्राह्मणो के मोहल्ले के गणेशजी आ गये। प्रतिवर्ष उनके गणेशजी सबसे आगे रहते हैं। इस बार हरिजन बस्ती के लोगों ने कहा—हम सबसे पहले आये, इस बार हमें आगे रहने दो। गणेशजी तो सभी एक ही हैं। ब्राह्मणों ने कहा, 'तुम्हारे गणेशजी की ऐसी की तैसी, हमारे गणेशजी ही आगे रहेगे।' गणेशजी कौन हैं—कुछ मालूम नही, बस हमारे गणेशजी, तुम्हारे गणेशजी!

उसी प्रकार से हमारे ग्रन्थों को ही प्रदूषित कर दिया। शैव ग्रन्थों में कुछ ऐसे श्लोक डाल दिये जिनसे विष्णु भगवान् के प्रति विद्वेष उत्पन्न हो। विष्णु भगवान् सम्बन्धी जो पुराण थे उनमें ऐसे श्लोक डाल दिये जिनसे शिव के प्रति विद्वेष उत्पन्न हो। 'स्त्रियाँ हैं वे शिव की उपासना नहीं कर सकतीं'—'शिव मन्दिर को देखना भी पाप है', 'शिव लिंग पर स्त्रियाँ जल नहीं चढा सकतीं', ऐसे प्रदूषित कर दिया ग्रन्थों को। यह अभी तक चल रहा है। यहाँ आने के पूर्व हम पद्मनाभन मन्दिर में दर्शन के लिये गये थे। मूर्ति मे विष्णु लेटे हुए हैं और एक हाथ से शिवलिंग पर बिल्व-पत्र चढा रहे हैं। मैंने साथ के लोगों से कहा—देखो! विष्णु भगवान् शिवजी को बिल्वपत्र चढ़ा रहे हैं। तो हमारे साथ जो गाइड था उसने तुरन्त कहा—नहीं, वे शिवजी को दबाकर रखे हुए हैं। शिवजी को दबाकर रख दिया।

एक बडे उद्योगपति थे। उनकी एक बडी फैक्ट्री थी। वे बडे आस्तिक थे। वैष्णव सम्प्रदाय के अनुसार तिलक लगाकर कारखाने मे आते थे। वे फैक्ट्री में जिस-किसी को नौकरी पर रखते थे उसको बाध्य करते थे कि वह भी इस तिलक को लगाये। उस तिलक को 'नामम्' कहते हैं। उन्होंने एक मैनेजर को नियुक्त किया। वह बडा शिव-भक्त था। उसकी नियुक्ति हो गयी। उस समय कारखाने के मालिक थे, वे अनुपस्थित थे। कहीं बाहर गये हुए थे। एक बार वे निरीक्षण करने आए और उनका नये मैनेजर से परिचय कराया गया तब उन्होंने देखा कि वे भस्म-त्रिपुण्ड लगाये हुए हैं। उन्होने कहा—यह यहाँ पर नहीं चलेगा। ये सब लगाकर यहाँ पर मत आओ। यहाँ पर नामम् लगाकर आना पड़ेगा।

मैनेजर कुछ बोले नही। कुछ दिन बाद फैक्ट्री-मालिक फिर विजिट पर आये। देखा कि मैनेजर ने तो वही त्रिपुण्ड लगा रखा है। तो डॉटा कि यह यहॉ पर नही चलेगा। मैनेजर अपने कार्य मे बहुत कुशल थे। उनके आने से सारी व्यवस्था बहुत सुन्दर हो गयी थी और सब काम अच्छा चल रहा था—यह भी मालिक को पता लग गया था। तो तुरन्त कह नहीं सकते कि यहॉ से निकल जाओ। कुछ दिन बाद वे फिर विजिट पर आये तो देखा कि मैनेजर ने वही त्रिपुण्ड लगा रखा है। उन्होने कहा—'यह क्या है? मैने कितनी बार कह दिया—यह यहॉ पर नहीं चलेगा। आप ऐसे करेंगे तो हम आपको यहॉ नही रख सकते। क्यो नही लगाया आपने नामम्?' 'नही। लगाया है'—ऐसा कहकर मैनेजर ने कपडे को हटाया तो पेट के ऊपर बहुत बडा नामम् लगा हुआ था। पेट के लिये लगाना पडेगा—यह नामम्!

तो बताओ, हम कहॉ से कहॉ पहुँच गये। विष्णु शिव के हृदय हैं, शिव विष्णु के हृदय है। और इन्हीं को लेकर आपस में उलझ रहे हैं। जब देवऋण की बात करते है, देव-उपासना की बात करते है तो हमको अपने उपास्य देव को नही, अपितु दृष्टि को बदलना है।

स्वामी विवेकानन्द ने कह दिया कि कुछ वर्षो के लिये, शायद 50 वर्षो के लिये कहा था, बन्द कर दो मन्दिरो की घण्टियॉ बजाना, आरती करना। चारों तरफ पाखण्ड, किसी को मतलब ही नहीं भक्ति से, स्वतन्त्रता क्या होती है—किसी को मतलब ही नही। कितना छुआछूत है? उस समय धर्म का कैसा सडा-गला रूप उनको दिखाई दिया। धर्म का असली रूप तो रहा ही नहीं। इसलिये उन्होंने कहा—कुछ वर्षों के लिये बन्द करदो पूजा-पाठ को। तो पचास वर्ष तो बीत गये। पर वह बन्द हुआ ही नही। तो इसका क्या मतलब हुआ कि मातृभूमि को पूजो, मातृभूमि की उपासना करो? पर क्या इसको पकडकर बैठ जाना चाहिये। हमको इसके तात्पर्य को पकडना चाहिये। तात्पर्य को हम पकडेगे तो हमारी मातृभूमि भी हमारे लिये दुर्गा हो जाएगी, हमारी लक्ष्मी हो जाएगी, हमारी सरस्वती हो जाएगी। इस देव-ऋण के अन्तर्गत हमको समझना पडेगा कि यह देव-तत्त्व क्या है? हमारी उपासना क्या है? हमारे तीर्थ क्यो सड रहे हैं, बिगड रहे है, नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं, टूरिस्ट-सेण्टर बनते जा रहे है? हम ही इनको नष्ट-भ्रष्ट करते जा रहे हैं। हमारा इसके ऊपर

कोई अंकुश नही है। हम सारे इसमें इनवोल्व्ड है, इसमे हम ही हमारे वैदिक सनातन धर्म को नष्ट करने वाले सिद्ध हो रहे हैं। सरकार बनाने मे हमारा भी वोट पड रहा है। हमने प्रजातन्त्र को स्वीकार कर लिया। हमने संविधान को स्वीकार कर लिया। अब आप वेद की बात करते रहो, पुराणों की, स्मृतियो की, परम्पराओं की बात करते रहो। तो हमने कानून को स्वीकार कर लिया। इस स्वीकारोक्ति के पश्चात् अब हमको क्या करना चाहिये? इसको अनदेखा करके हम चाहे राम–मन्दिर की बात करें या चाहे कृष्ण– जन्मभूमि की बात करे। इससे एक प्रकार से हमारा व्यक्तित्व विभाजित होता है—इसको समझना पडेगा। इस परिप्रेक्ष्य मे ही देवऋण से उऋण होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी—सही रूप से। इसी प्रवाह मे मैंने कहा था कि प्रत्येक साधक का अपना एक इष्टदेवता होना चाहिये। आप यदि कहें कि मैं तो सब रूपो को मानता हूँ। ऐसा कहने का तात्पर्य है कि आपके दिमाग में कोई स्पष्टता नही, कोई भाव की लहर ही नहीं। इसलिये आप किसी एक रूप को मानें। कोई कहे कि मै नाद–ब्रह्म को मानता हूँ। तो चलो यह भी ठीक है, पर इसके लिये बहुत योग्यता चाहिये। कोई कहे कि मैं ज्योति–रूप ब्रह्म को मानता हूँ। इसके लिये भी बहुत बडी योग्यता चाहिये। आकृति को आप नहीं मानते तो इसमे हमारा आग्रह नहीं है। पर क्या तुम्हारी एक ऐसी योग्यता है, तुम्हारी बुद्धि में ऐसी पात्रता है? तो क्या हमारे में ऐसी पात्रता है कि ज्योति–रूप में भगवान् का स्मरण कर सकें, चिन्तन कर सकें, उसकी उपासना कर सकें, उसको प्यार कर सकें?

यदि मन पर ज्यादा जोर दिया तो आप ऐसे किसी ज्योति–बिन्दु को देखना शुरु कर देंगे मानो भगवान् एक पॉइण्ट है। पर भगवान् कोई पॉइण्ट नहीं हैं। रमण महर्षि के पास एक योगी आया था, वह कहता—मेरे को एक ज्योति दिखाई देती है। तो उन्होंने कहा—'तुमको दिखाई देती है! जो दिखाई देता है वह जड होता है, वह भगवान् नहीं होता।' जड की परिभाषा क्या है—'दृश्यत्वात् जडः।' जो–कुछ भी अलग होकर अनुभव में आता है वह जड है। यह जड की परिभाषा है हमारे यहॉ पर। और जो अनुभव करने वाला है वह क्या है—वह चैतन्य है, वह साक्षी है। साक्षी का मै ध्यान कर रहा हूँ। एक साधक था। उसने बताया कि शराब को साक्षी–

भाव में रह कर पीता हूँ। मैंने कहा—तुम ऐसी गलती मत करना। शराब का प्याला तुम्हारी सारी साधना को, सारे जीवन को अपने अन्दर डुबा लेगा।

अपनी पात्रता के अनुसार निर्णय करना चाहिये कि मेरा कौन-सा इष्ट देवता है। सहजतया किसके प्रति मेरा प्यार उठता है, सहजतया मैं किसका स्मरण कर पाता हूँ। यह हमारे धर्म की विशेषता है या कमजोरी है? हमको कट्टरता नही चाहिये। हमको बाहरी एकरूपता नहीं चाहिये। हम उपासना के प्रसंग में रेजीमेन्टेशन नहीं करते, इसीलिये साधक की पात्रता व सस्कारो के अनुसार उपास्य रूप का निर्धारण होता है।

मै एक जगह प्रवचन के लिये गया। प्रवचन के अन्त में एक बुढिया माता आयी और दीक्षा देने के लिये कहने लगी। मैंने कहा—मैं दीक्षा नहीं देता। तो उसने बताया कि यहॉ जितने भी कथाकार आते हैं उन सबसे मै दीक्षा लेती हूँ। तब मैंने कहा—तब तो तुम्हारे पास बहुत-से मन्त्र होंगे। उसने कहा—'हॉ। मेरे पास बहुत-से देवों के मन्त्र है, और मै उन सबका जाप करती हूँ। कोई-न-कोई देवता तो काम आयेगा ही।'

तो क्या हमारा निर्णय ऐसा ही है? इसलिये निर्णय करना चाहिये। संसार को चलाने वाला कोई तत्त्व है—सिर्फ ऐसा कहकर सन्तुष्ट नहीं हो जाना। मैं आपसे प्रश्न के बाद प्रश्न पूछता जाऊँगा। आप जब कहते हैं मातृभूमि हमारे लिये आराध्य है तो आपका मातृभूमि से तात्पर्य क्या है? सम्भवतः आप इसे सही ढंग से नहीं बता पायेगे। हम अपने शरीर को ही नही समझ पा रहे हैं। मातृभूमि का तात्पर्य क्या है—यह एक विराट् चेतना है, भारतीय संस्कृति की एक विराट् चेतना है, इसमें परब्रह्म अपने-आप को प्रकट कर रहे हैं। हम ऊपर-ऊपर की बातों को लेकर मातृभूमि को परिभाषित नहीं कर सकते। इसलिये मातृभूमि आपके लिये आराध्य है तो गहराई तक जाकर इसे आराध्य बनाओ। इस मातृभूमि में तो पेड खिल रहे है, मातृभूमि में तो सागर लहरा रहे है, बादल उठ रहे है।

एक बालक जा रहा है, चिवडे खाते हुए जा रहा है। हरे-भरे धान के खेत हैं, फसल लहलहा रही है और उस समय एक काली-काली घटा उठी। उसी समय सफेद पक्षियों की एक पंक्ति उड करके गयी और वह

बालक उसको देखकर गिर गया—समाधि मे चला गया। वह बालक था रामकृष्ण परमहंस। क्या आपको कभी इच्छा होती है कि हमे भी ऐसा हो! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। मैं अभी आपके सामने एक बात पूछूँ कि आप अपने बीच मे रामकृष्ण परमहंस को लाना पसन्द करेंगे या विवेकानन्द को? दोनों मे से किसको लाना पसन्द करेंगे? तो आप घबरा जायेंगे। धर्मसंकट में पड जायेगे। दोनों में से किसको लाना पसन्द करेगे? विवेकानन्द को या रामकृष्ण को, या किसी को नहीं? इस पर मनन करते रहना।

हम विवेकानन्द को रामकृष्ण परमहंस से अलग करके समझ नहीं सकते। रामकृष्ण परमहंस को हम काली से अलग करके समझ नहीं सकते। रामकृष्ण परमहंस को हम तोतापुरीजी से अलग करके समझ नहीं सकते। अलग करके समझना अपने-आप में एक अपराध है। यह विविक्त चिन्तन हो गया। एक समग्रता को लेकर हमारी सारी संस्कृति चलती है। वैदिक सनातन धर्म का मतलब ही है कि जो पूर्णता को लेकर चलता है। ऐसी खण्ड-खण्ड की दृष्टि हमारी दृष्टि नहीं है। अतः हम एक समग्र दृष्टि लेकर इष्टदेव का चयन करें। इष्ट महापुरुष कौन है? आप इसका निर्णय करें। किसी के लिये इष्ट महापुरुष समर्थ गुरु रामदास हो सकते हैं, किसी के लिये विवेकानन्द हो सकते हैं, किसी के लिये सुभाषचन्द्र बोस हो सकते हैं, महर्षि अरविन्द हो सकते हैं, रामकृष्ण परमहंस हो सकते हैं। किसी युवक को रामकृष्ण परमहंस ज्यादा अपील करते हैं, किसी को स्वामी विवेकानन्द ज्यादा अपील करते हैं। सभी प्रकार के साधकों को अपने अन्दर में संस्था को एकोमडेट करना है। हरेक व्यक्ति को इवोल्विंग होना चाहिये। हरेक संस्था को इवोल्विंग संस्था होना चाहिये। जहाँ पर जडता आयी, वहाँ पर सनातन-तत्त्व रहता नही। धर्म का रूप वहाँ पर सुरक्षित रहता नहीं। तो ऐसे इष्टदेवता का निर्णय आप नहीं कर सकते तो किसी की मदद लें। इष्टदेवता, इष्टमन्त्र, इष्टमहापुरुष और इष्टग्रन्थ आपका कौन-सा है? क्या आपके इष्टग्रन्थ में सनातन-तत्त्व है? कृपा करके भगवान् अवतरित हुए। कृष्ण क्यो आये द्वापर की समाप्ति पर? कलियुग का प्रारम्भ होने पर भगवान् कृष्ण का अवतार क्यों हुआ? कोई-न-कोई तात्पर्य होना चाहिये।

आगे कलियुग आ रहा है और कलियुग के प्रभाव से चारों तरफ कन्फ्यूजन फैलेंगे, एक कन्फाउण्डेड स्थिति आयेगी। हर वस्तु में एक सकरता आयेगी। वर्णसाकर्य होगा। देव–तत्त्व व असुर–तत्त्व विविक्त नहीं रहेगे। सब मिक्स–अप (Mix-up) हो जायेंगे। एक ही घर में असुर व देव उत्पन्न होगे। एक ही घर मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र स्वभाव के लोग होगे। एक ही अन्तःकरण मे अलग–अलग स्वभाव के संस्कार रहेंगे। इसलिये चाहिये एक ग्रन्थ। भगवान् कृष्ण ने कृपा करके सारी उपनिषद् रूपी गायो को दुह करके और दूध निकाल करके रख दिया—इसी को कहते है भगवद्गीता। उसी प्रकार से आगे आने वाले समय मे अनेक सन्त हुए। उत्तर भारत मे तुलसीदासजी हुए। हर प्रान्त में सन्त हुए और सन्तो ने उसी उपनिषद् की वाणी को, उसी गीता के रस को निकाल करके अपनी वाणी में प्रकट कर दिया। ज्ञानेश्वरजी आये थे। वे कितनी श्रद्धा से शकराचार्यजी का नाम लेते हैं। उस ज्ञानेश्वरी गीता में एक नूतनता को लेकर, गीता के हार्द को—आत्मा को सुरक्षित रखते हुए एक नूतन ओज को लेकर उन्होंने ज्ञानेश्वरी को प्रकट कर दिया, इसको समझना। तो हमारा एक ऐसा इष्टग्रन्थ होना चाहिये जिसमें हमारी सनातन संस्कृति का रस हो।

मै पूछता हूँ आपका वर्ण क्या है? आपका आश्रम क्या है? पहचानो, आपका वर्ण क्या है, आश्रम क्या है? आपको पहचानना पडेगा। आपके वर्ण का मतलब, आपका कार्यक्षेत्र क्या है, आपका कार्य क्या है, उसके अनुसार आपकी उपासना होनी चाहिये। अब आपका कार्यक्षेत्र रणागण है, उसमे आप बैठकर, पद्मासन लगा कर, माला लेकर तीन–चार घण्टे तक जप कर रहे है, पूजा कर रहे है तो कैसे काम चलेगा? अर्जुन के सामने यही बात तो हुई थी। अर्जुन के सामने रणक्षेत्र था, भगवान् ने उसको तीरों के द्वारा किस प्रकार से अर्चना की जाय—यह सिखाया। तीरों के द्वारा व्यक्तियों के हृदय को बींधते हुए किस प्रकार से अर्चना की जाए—यह बताया गीता में।

**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।** गीता, 18/46

इसलिये आपका कार्यक्षेत्र क्या है—उसको स्वीकार करे। पर स्वीकारना अपने–आप को सचाई से, अपने–आप को धोखा नहीं देना। न

किसी दबाव में, न किसी भावावेश में आना। सचाई से अपने-आप को स्वीकार करके और फिर देव-ऋण से उऋण होने के लिये देव की उपासना करना। अगर आपका कार्य आपको एलाउ नहीं करता कि आप बैठकर तीन घण्टे उपासना करे, तो विकल्प है। मैंने बताया था कि आप अष्टमूर्ति की उपासना क्यों नही करते? आपने अष्टमूर्ति का नाम सुना है?

शंकराचार्यजी ने जो दक्षिणामूर्ति-स्तोत्र लिखा है। उसके एक श्लोक में बताया कि परब्रह्म ने अपने-आप को आठ मूर्तियो में, आठ रूपों मे प्रकट कर दिया है—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र व आत्मा। ये अष्टमूर्तियाँ उपास्य हैं। अष्टमूर्ति उपासना इसको कहते हैं। यह अष्टमूर्ति उपासना बडी तेजस्वी उपासना है। वेदों में विराट् हिरण्यगर्भ व अव्यक्त की उपासना बतायी है। विराट् की उपासना के बारे में वेद के मर्म को नहीं जानने वाले कहेंगे कि यह तो प्रकृति की पूजा है। रुद्री में आया है—नदी को नमस्कार है, खेत को नमस्कार है, घाटी को नमस्कार है, पेड को नमस्कार है। इसमें प्रकृति-पूजन नही बताया। यह तो विराट् ने अपने-आप को विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। इसलिये आगमो ने इसको और विस्तार दिया है। शिव-पूजा मे अष्ट-पुष्पों द्वारा शिव की अर्चना करते हैं, यथा—ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः, ॐ भवाय जलमूर्तये नमः, ॐ रुद्राय अग्निमूर्तये नमः, ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः, ॐ भीमाय आकाशमूर्तये नमः, ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः, ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः, ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश—ये पाँच महाभूत हो गये। और उसी प्रकार से सूर्य और चन्द्र—ये दो शक्तियाँ हो गई, सोलर एनर्जी और ल्यूनर एनर्जी। काल के दो नेत्रों की तरह हैं—सूर्य और चन्द्र—और एक अनुभव करने वाला—यजमानमूर्ति आत्मा। गीता मे कहा—अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः (गीता 10 20)। चींटा अनुभव करता है अहम्, गाय अनुभव करती है अहम्, चिडिया अनुभव करती है अहम्।

मैं एग्रीकल्चर युनिवर्सिटी, आनन्द (गुजरात) में गुरुदेव के साथ गया था। एक भैस चारे को कैसे पचाती है, इसकी स्टडी के लिये उन्होंने भैस के पेट के ऊपर एक छेद करके उसके ऊपर एक पारदर्शक लेन्स लगा रखा था। उस लेन्स से दिखाई देता था कि अन्दर पाचन कैसे हो रहा है।

उस लेन्स से देखने पर अन्दर जो छोटा भी होता तो वह कई गुणा बडा होकर दिखाई देता था। वहाँ देखा कि कई प्राणी. तैर रहे थे। मैंने सोचा—हर जीव अनुभव कर रहा है—मै तैर रहा हूँ, खा रहा हूँ।

आदमी के पेट मे कीडा हो, तो वह कीडा भी अनुभव करेगा—मैं जा रहा हूँ, मै खा रहा हूँ, मै चल रहा हूँ। उस कीड़े के पेट मे भी कोई कीडा हो सकता है। उस कीडे के पेट मे भी कोई वेक्टीरिया हो सकता है। हर कोई कह रहा है—'यह मैं', 'यह मैं', 'यह मैं'। मै–मैं कर रहा है न! तो इसी के लिये कहा—पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। चारों तरफ देखो, यह सारी सृष्टि एक विराट् चेतना का प्रकटन है। कितनी सरल है अष्टमूर्ति उपासना! एक आदर चाहिये, एक समझ चाहिये, एक भाव चाहिये। ऐसा धीरे–धीरे करके इसको डेवलप करना पडता है। इसको आप करेगे तो आपके अन्दर वह शक्ति पडी हुई है—आप अपने कार्यक्षेत्र मे, चाहे जितना भी व्यस्त कार्यक्षेत्र हो, उसमें भी उद्विग्न न होते हुए उस देव की उपासना कर सकते हैं। देवऋण से उऋण हो सकते हैं। वह देव आपसे कोई मेटीरियल नही चाहता। वह तो सारी सामग्री आपको दे रहा है। वह वापिस आपसे एक भाव, एक समझ चाहता है, एक कृतज्ञता का भाव चाहता है। 'त्वदीय वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये'—आपकी वस्तु आपको समर्पित। वह तो आपसे एक आदर का भाव, एक कृतज्ञता का ज्ञापन चाहता है। ऐसे ही आप अपने स्वकर्म द्वारा उसकी अर्चना कर सकते हैं, देवऋण का विमोचन आप इस प्रकार कर सकते हैं, इसकी उपेक्षा आपको नही करनी चाहिये। देवऋण से उऋण होने के लिये आप कुछ समय भी निकाले, भले ही आधा घण्टा तक ही बैठें, पर सही ढंग से बैठें, ढीले–ढाले होकर नहीं। लोग कहते है 'मन नहीं लगता'। आपका मन इसलिये नही लगता क्योकि आपकी दृष्टि सही नही है। आपका दृष्टिकोण सही हो जायेगा तो आपका मन लगना शुरू हो जायेगा। तो आप देखें कि आप की देव–उपासना–विधि मे कोई त्रुटि तो नही है। आप पूजा करते है, ऐन–तेन, मनमाने ढग से करते है। आपका सामान रखने का कोई तरीका नहीं, पूजा करने का कोई तरीका नहीं। कुछ त्रुटि पडी हुई है। तो चारों ओर से इसको सम्हालते हुए आप करेगे तो यह देवऋण उतरना प्रारम्भ होगा। तो आप जाग्रत् अवस्था में चाहे आधा

घण्टा ही निकालें, चाहे आप 5 मिनट ही निकाले। पूजा मे आप विस्तार नहीं दे पाते तो कोई बात नही। पॉच मिनट के अलावा भी आपको कोशिश करनी चाहिये कि आप हर समय उस देवऋण को उतारने के लिये देव की उपासना करें। बात सरल हो गयी। यह देवऋण हो गया।

देवऋण के पश्चात् ऋषिऋण आता है। यह ऋषि कौन है? 'ऋषयः मंत्रद्रष्टारः।' ऋषि कौन हैं—मन्त्र का दर्शन करने वाले हैं। जो मन्त्र का दर्शन करता है वह ऋषि। पर सृष्टि के, मन्वन्तर के अपने सप्त ऋषि है। ये थे नहीं, ये हैं। मनु थे नहीं, मनु है। सूर्य अभी है।

गीता में श्रीकृष्ण ने कहा—'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्'—मैंने इस योग को सूर्य को कहा। सूर्य ने मनु को, मनु ने इक्ष्वाकु को, इस प्रकार परम्परा से ज्ञान प्राप्त होता रहा। इसको क्या हम लोग कहानी समझते हैं? हमने कहानी समझना शुरु कर दिया। हम समझते है—ऐसे ही टोरा लगाया गया होगा। राजस्थानी में कहते हैं टोरा यानी गप्प। सूर्य को कहा। सूर्य तो आग का गोला है। 'सूर्य को कहा' यह बात मन में बैठती नहीं। अर्जुन के मन में भी संशय हो गया था। आप तो अभी हुए हैं, सूर्य तो बहुत पहले से है। आपने कैसे कहा? हमने सूर्य को आग का गोला मात्र समझ लिया। पर सूर्य एक देवता है। हमारे ऋषियों ने, महापुरुषों ने इसका साक्षात्कार किया है इसलिये इसको माने। मनु एक चेतना है, ऋषि एक चेतना है, उत्कृष्ट चेतना है। ऋषियों ने संस्कृति की स्थापना की। ऋषियों के तपःपूत अन्तःकरण में वेद ज्ञान प्रकट हुआ। वेद का ज्ञान दो प्रकार का है—एक अपराविद्या और एक पराविद्या। आप लोग जानते हैं—सारी अपरा-विद्याएँ कहाँ हैं? सारी ईश्वर में है। परमेश्वर ने ब्रह्माजी को उत्पन्न कर उन्हे वेद-ज्ञान दिया। *ब्रह्माजी ने ऋषियों की मानसिक सृष्टि की। ऋषियो को वेद-ज्ञान का एक* अश मिला। मैं ऋषियों के आत्मज्ञान की बात नही कर रहा। आत्मज्ञान तो रामकृष्ण परमहस का हो, चाहे विवेकानन्द का हो, चाहे रैदास का हो—किसी का हो, आत्मज्ञान एक जैसा ही होता है। पर जिस अन्तःकरण में वह आत्मज्ञान प्रकट होता है वह अन्तःकरण अलग-अलग होता है। तो विवेकानन्द में अद्‌भुत प्रतिभा, अद्‌भुत स्मृति-शक्ति और अद्‌भुत योग की शक्तियाँ प्रकट थीं। किसी मे ये प्रकट नहीं भी हो सकती है।

एक गृहिणी है, एक माता है, जो घर में रहती है, सावधानी से काम करती है, उसमें भी ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो गया। तो क्या वह कोई ओरेटर थोड़े ही हो सकती है, जैसे विवेकानन्द हुए थे। यहाँ पर रामकृष्ण परमहंस को स्टेज पर ले जाकर खड़ा कर दें तो वे क्या करते? वे भाषण थोड़े ही दे सकते थे। वे तो भावविभोर होकर समाधि में डूब जाते। एक साथ इतने-सारे लोग! एकदम से भावविभोर हो जाते। इसको समझें आप। वर्ड्सवर्थ अपनी कविता प्रिल्यूड में लिखते हैं—'आई सा वन लाइफ एण्ड फेल्ट देट इट वाज जॉय।' चींटियों को देखा, पक्षियों को देखा, पेड़ो को देखा, खिले हुए सुमनो को देखा—इनमें एक जीवन को देखा, एक हारमनी को देखा। आज के वैज्ञानिक बता रहे हैं, सारे प्राणियों व वनस्पतियों में एक जीवन तरंगित हो रहा है। वह जीवन आनन्दस्वरूप है। तो ऐसा समझ लेना—जिन्हें ब्रह्मज्ञान होता है वे तो ऋषि हैं। उन्होंने ही सभी प्रकार के ज्ञान को प्रवाहित किया। अब इसमें कोई भी अतिशयोक्ति नहीं समझ लेना। इसके ऊपर आपको बार-बार चिन्तन करना पड़ेगा। इसका मतलब मनुष्य नया ज्ञान प्राप्त नहीं करता? मनुष्य नया ज्ञान प्राप्त करता है पर कहाँ से प्राप्त करता है? कॉस्मिक माइण्ड से प्राप्त करता है। वह ज्ञान यदि किसी कारण से लुप्त हो जाता है तो मनुष्य पुनः उस ज्ञान को कहाँ से प्राप्त करता है? कॉस्मिक माइण्ड से प्राप्त करता है। मनुष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करता है। एकलव्य ने गुरु की मिट्टी की मूर्ति से ज्ञान को प्राप्त कर लिया। रमण महर्षि ने बिना किसी को गुरु बनाए ज्ञान को प्राप्त कर लिया। लोग उनसे पूछते—आपके गुरु कौन हैं? तो वे कहते थे—यह अरुणाचल पर्वत ही मेरा गुरु है। पर वास्तव में गुरु में भी ईश्वर की शक्ति ही होती है।

ऋषियों ने मानव को उत्पन्न कर उन्हें ज्ञान दिया और संस्कृति की स्थापना की। ईश्वर ही गुरु है। इसलिये इस धारणा को उठा करके फेंक देना चाहिये कि बन्दर की पूँछ घिस गयी और आदमी बन गया। इस प्रकार से सारी मानव-संस्कृति की स्थापना करने वाले कौन है? ऋषि लोग है। विदेशी विद्वान मानव-संस्कृति को 5-10 हजार वर्ष पुरानी मानते हैं। पाँच हजार की बात आप लोग कह रहे है। इसका मतलब कि वे मन्वन्तर की बात को, कल्प की बात को गपोड़ मान रहे हैं! अब वैज्ञानिक बिग-बैग

तक पहुँच रहे हैं। हमारे शास्त्रों मे तो बिग-बैग कब हुआ—इसका ठीक-ठीक उल्लेख है। उनकी शैली अलग है, उनकी भाषा अलग है। इसको समझना पडेगा। अंग्रेज नही चाहते थे कि हम अपने उज्ज्वल अतीत से जुडें। आज हम मानसिक दासता से छूट कर अपने उज्ज्वल महान अतीत से जुड सकते हैं। यह मानव-संस्कृति है। हमारी संस्कृति तो हम कह देते हैं। हमारी से मतलब क्या है? हम कहते है यह भारतीय संस्कृति इस भूखण्ड तक सीमित नहीं थी। सारे विश्व में व्याप्त थी। चाहे अफ्रीका चले जाओ, चाहे अमेरिका चले जाओ—वहाँ सनातन सस्कृति के चिह्न मिलेगे। अब वह ऋषि-संस्कृति सिमटते-सिमटते आज के भारत तक सिमट गई। खैर! कोई बात नहीं। यह फिर वापस फैलेगी। हमारी सृष्टि के मूल में, मानव संस्कृति के मूल में ऋषि लोग हैं।

देखें, धर्म और संस्कृति में क्या अन्तर है? धर्म और सस्कृति मे कुछ तो अन्तर होना चाहिये! धर्म ज्यादा व्यापक शब्द है। और संस्कृति सीधे मानव से सम्बन्धित है। मानव के अन्दर एक कर्तृत्व आया। उसे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ। अब उस ज्ञान और कर्तृत्व को लेकर उसको प्रयोग करना है। उससे नयी-नयी चीजों का आविष्कार करना है। उसके सामने नयी-नयी चुनौतियाँ आती हैं। उन चुनौतियों को लेकर, अपनी सर्जनेच्छा को लेकर, शिल्प के क्षेत्र में, कला के क्षेत्र में, साहित्य के क्षेत्र में, उद्योग के क्षेत्र मे—सब जगह उसको प्रयोग करना है। इस प्रकार से ऋषि-ऋण के अन्तर्गत अपरा विद्या (समस्त जड-पदार्थो का ज्ञान) और परा विद्या (ब्रह्मविद्या) का क्षेत्र आ जाता है। गीता के 13वे अध्याय में बताया कि अव्यक्त से लेकर 5 महाभूत तथा इन्द्रियाँ, अन्तःकरण व उसमें इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, संघात-चेतना और धृति—ये सारे ही क्षेत्र है। इनका ज्ञान अपरा-विद्या के अन्तर्गत है। हम मनुष्य हैं तो ऋषि-प्रदत्त, ऋषि-प्रवाहित ज्ञान के कारण ही।

एक नवजात शिशु को ले जाकर जंगल में छोड दें, और उसको कोई भेडिया या रीछ पाल ले तो वह पशु की तरह ही होगा। हम परम्परा से प्राप्त ज्ञान के कारण ही तो मनुष्य है। इसलिये समझे कि कितना ऋण है—ऋषियो का।

अब आप यह नही कहना कि ऋषिऋण ज्यादा है या देवऋण ज्यादा

है या पितृऋण ज्यादा है। कम-ज्यादा की बात नहीं है। अमाप ऋण है। इसको माप नही सकते। तो ऋषि क्या है, उसको समझा। और फिर ऋषियों का ऋण कैसे, इसको समझा। चाहे कोई भी ज्ञान हो। गुरुमात्र के प्रति आपका एक कृतज्ञता का भाव होना चाहिये। शास्त्र में बताया कि माता, पिता, भाई—सभी गुरुरूप हैं। जिससे आपने एक अक्षर का भी ज्ञान प्राप्त किया, वह आपका गुरु है। आपकी पत्नी भी आपकी गुरु है। क्यों भई! पत्नी भी तो गुरु है। पत्नी भी कितना सिखाती है! शादी के बाद मे पति कहता है—मैंने कितना इससे सीखा! पत्नी कहती है—मैंने कितना इनसे सीखा! पुत्र भी गुरु है। पुत्र आने के बाद मे आपको उससे भी बहुत-कुछ मिला। जहाँ-कही से भी आपको ज्ञान मिले वह आपके लिये गुरु है। तो यह पर्यावरण आपका गुरु। पर्यावरण को समझो तो पर्यावरण आपका गुरु। इसलिये ऋषि-तत्त्व को समझते हुए उससे उऋण होना चाहिए। ऋषिऋण से उऋण होने के लिये आपको क्या करना चाहिये—प्रतिदिन ऋषि-यज्ञ करना चाहिये। प्रतिदिन शास्त्रों का अवलोकन करे, शास्त्रों को पढें, वेदों का स्वाध्याय करें। स्वाध्याय में कभी प्रमाद न करें। 'सत्यं वद' 'धर्म चर' सत्य का पालन करो, धर्म का पालन करो, 'स्वाध्यायान् मा प्रमदः' (तैत्तिरीय उपनिषद्—1 10 1)—स्वाध्याय मे प्रमाद मत करो। यह जो शास्त्रो को अपनाया, यह क्या हो जायेगा? इससे ऋषिऋण से उऋण होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायेगी। शास्त्रों को बचाना चाहिये, शास्त्रो को आगे प्रवाहित करना। शास्त्र कौन-सी भाषा में है? उस भाषा की रक्षा करना। ये सब ऋषिऋण से उऋण होना है।

आज सब-कुछ कलुषित होता जा रहा है। विद्यालय आज विद्यालय नहीं रहे। जब परीक्षा होती है तब पुलिस वालो को बुलाकर परीक्षा कण्डक्ट (Conduct) करवाते हैं और अखबार में छपता है—'बडी सरलता से परीक्षा सम्पन्न हुई। पुलिस की पहरेदारी में बिना किसी बाधा के परीक्षा सम्पन्न हुई।' शिक्षा-क्षेत्र के विषय में चिन्तन करना। ऋषिऋण के अन्तर्गत संस्कृति का चिन्तन करना। संस्कृति का मूल क्या है? सस्कृति का स्वरूप क्या है? सस्कृति का लक्ष्य क्या है, संस्कृति की रचना क्या है? संस्कृति का वैशिष्ट्य क्या है? संस्कृति में प्रदूषण क्या है? सस्कृति

को नष्ट करने वाले कौन हैं?—ये सारे चिन्तन करोगे तब जाकर के ऋपित्रऋण का योध होगा। और ऋपित्रऋण से उऋण होने की प्रक्रिया प्रारम्भ होगी। पहले समझो तो सही, खतरा क्या है? शतुरमुर्ग या कबूतर होता है न! जब आपत्ति आती है तब शतुरमुर्ग खतरे को देख कर रेत मे अपने सिर को डाल देता है, कबूतर बिल्ली के सामने आने पर आँखों को बन्द कर लेता है। इसलिये समझो तो सही, खतरा क्या है? बाहर से खतरा है, अन्दर से खतरा है। किस प्रकार से खतरा है? उसके अनुकूल यदि आपने रक्षण का उपाय नहीं किया तो फिर आपका उऋण होना सम्भव नहीं हो पायेगा। आपका ऋपियज्ञ सम्पन्न नही हो पायेगा। संस्कृति नष्ट हो रही है और पता नही आप क्या कर रहे हैं? इसलिये आपको समझना पडेगा—संस्कृति का रक्षण कैसे? संस्कृतिकरण तो बाद में। संस्कृति का का रक्षण कैसे? आपने खेत के अन्दर कंकर-पत्थर को हटा दिया, झाड-झंखाड़ को हटा दिया। पानी उसमें डाल दिया। खाद डाल दी, बीज डाल दिये और बाड लगाई ही नहीं। यह तो भूल ही गये। बाड तो पहले लगानी चाहिये। बाड़ तो समझते हैं न! उसके चारों तरफ तो फेनसिंग करनी चाहिये न आपको! फेन्सिंग तो की नहीं और आपने बाकी सब-कुछ कर दिया। गायें आएँगी, बकरियाँ आएँगी और लूटने वाले आएँगे—लूट ले जाएँगे। रक्षा का उपाय होना चाहिये। ऋषिऋण से उऋण होने के लिये यह सब चिन्तन करना होगा।

# छठा प्रवचन

देव-ऋण उतारने के लिये देव-यज्ञ कैसे सम्पन्न किया जाय, इस पर विचार कर रहे थे। इसके अन्तर्गत हमारी समस्त उपासना, समस्त भक्ति की साधना आ जाती है, हमारे तीर्थ, तीर्थाटन, उत्सव, व्रत—सब आ जाते है। उसके पश्चात् हम लोगों ने देखा ऋषि-ऋण। ऋषि-ऋण के अन्तर्गत हमारा समस्त शिक्षा का क्षेत्र, ज्ञान का क्षेत्र आ जाता है। उसमें हमने दो विभाजन किये—एक अपरा-विद्या और एक परा-विद्या। यदि हम इसको ब्रह्मचर्य आश्रम से जोडकर देखें तो हमारी भारतीय सनातन शिक्षा की जो परम्परा है उसमें एक साथ दोनों विद्याओं को पढाया जाता था—अपरा-विद्या और परा-विद्या। प्रारम्भ में ब्रह्मचर्य आश्रम में जो बालक होते थे उनमे कितनी विविदिषा है, उनके चित्त में कितनी शुद्धि है—यह पता नहीं लगता था। इसलिये प्रारम्भ होता था अपरा-विद्या से पर उसके साथ-साथ परा-विद्या भी बताई जाती थी। पर मुख्यतः परा-विद्या उस समय नहीं बताई जाती थी। अपरा-विद्या के अन्तर्गत समस्त 'क्षेत्र' की विद्या आ गयी। भगवद्गीता के 7वें अध्याय में अपरा-प्रकृति कहा और 13वे अध्याय मे 'क्षेत्र' कहा। पर जब जीवन और आगे बढता था तो क्रम से गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम आते थे। आश्रम की दृष्टि से ज्यो-ज्यों आगे बढते थे त्यों-त्यों परा-विद्या का महत्त्व बढता जाता था। बीच में कर्म और उपासना आती थी। कर्म और उपासना एक साथ। हम कर्म और उपासना को अलग-अलग नही कर सकते। गृहस्थाश्रम में कर्म और उपासना, वानप्रस्थ आश्रम में निष्काम कर्म व उपासना का श्रेष्ठ रूप और संन्यास आश्रम मे कर्मत्याग व केवल परा-विद्या का अभ्यास।

तो परा-विद्या किसको कहते है? ब्रह्मविद्या को ही परा-विद्या कहते है। ब्रह्मविद्या अर्थात् अहम् और इदम्—इन दोनों को जोडने वाला ज्ञान, जो आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान है। किसी विषय का, किसी वस्तु

का ज्ञान कैसे होता है? इन्द्रियॉं उस विषय से, वस्तु से सम्पर्क करती है। पॉच ही विषय है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध। इन्द्रियॉं उनसे सम्पर्क करती हैं तो इन्द्रियो में विषयाकार वृत्ति बनती है, इन्द्रियो से वह मन के अन्दर जाती है, मन के अन्दर विषयाकार वृत्ति आती है और वहॉं पर प्रतिबिंबित चैतन्य उसको जान लेता है। आत्मा की शक्ति अर्थात् अन्तःकरण मे प्रतिबिम्बित आत्म-चैतन्य इसको जान लेता है। परन्तु आत्मा का ज्ञान किसी वैषयिक वृत्ति के द्वारा नहीं होता क्योकि आत्मा स्वयप्रकाश है। आत्मा का ज्ञान आत्मा को ही होता है। पर इसके लिये अन्तःकरण में ब्रह्माकारा वृत्ति उत्पन्न होनी चाहिये। इस वृत्ति को उत्पन्न करने के लिये या इस अनुभूति तक पहुँचने के लिये कुछ ग्रन्थ भी है, जैसे हमारे उपनिषद् हैं। मुण्डक उपनिषद् मे अपरा-विद्या व परा-विद्या का उल्लेख आया है। वहॉं जिज्ञासा की कि वह क्या है जिसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रहता? वह ज्ञान क्या है? अन्य उपनिषदो में इसी बात को कहा। तो यह जो विद्या है, जिसको ब्रह्मविद्या कहते है—आत्मा और ब्रह्म की एकता का ज्ञान, उसको बताने वाली जो शब्दराशि है उसको भी ब्रह्मविद्या या उपनिषद् कहते है। भगवद्गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में एक पुष्पिका है—

**श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे**

और अमुक अध्याय का उल्लेख कर दिया।

योगशास्त्र, ब्रह्मविद्या—तो यह ब्रह्मविद्या है। यहॉं ब्रह्मविद्या का अर्थ है कि इस गीता-श्रवण से ब्रह्माकारा वृत्ति उठाने में मदद मिलती है। पर है तो यह शब्द-शक्ति ही। तो ब्रह्मविद्या का क्या अर्थ हुआ? अन्तःकरण में एक ब्रह्माकारा वृत्ति उठती है जिससे कि आत्म-ब्रह्म एकता की अनुभूति होती है, इसको परा-विद्या कहते है। कोई चाहे उस शब्दराशि को, चाहे सारे उपनिषदो को रट ले, चाहे गीता रट ले फिर भी हम कह नहीं सकते कि वह ब्रह्मज्ञानी है। एक मान्यता ऐसी है कि ब्रह्मनिष्ठ गुरु अपने प्रभाव के कारण अपने शरणापन्न सत् शिष्य के अन्दर इस अनुभूति को पैदा कर देते है। तो यह अनुभूति कौन पैदा करता है? मानो गुरु ही अपनी पूर्णता का अनुभव करते हैं, स्मरण करते है शिष्य के हृदय में बैठकर और उसका अज्ञान का अन्धकार नष्ट हो जाता है। मानो गुरु ही शिष्य के हृदय में

बैठकर अपने-आप की पूर्णता का स्मरण करते है और उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है। ब्रह्मविद्या को आप इस दृष्टि से समझिये। ब्रह्मविद्या ब्रह्माकारा वृत्ति के द्वारा जो आत्म-ब्रह्म की एकता की अनुभूति अर्थात् अखण्डता की, अद्वैत की जो अनुभूति होती है, इसी को ब्रह्मविद्या कहते है। अब इसके बारे मे थोड़ा-सा और समझें—

*दृश्यते तु अग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म-दर्शिभिः।*

—कठ उपनिषद्, 1 3 12

वह ब्रह्म दिखाई देता है अर्थात् अनुभव में आता है, किसके द्वारा? 'तु *अग्र्यया बुद्ध्या*' तीक्ष्ण बुद्धि के द्वारा, सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा और सुसस्कृत बुद्धि के द्वारा उसका अनुभव होता है। इसको थोडा समझ लेना। थोडी कठिन तो है, पर कोशिश करने पर समझ मे आ जायेगा।

अष्टावक्र महर्षि विद्वान् थे। प्रकाण्ड विद्वान् थे और विद्या के कारण उनको थोडा-सा अहकार भी आ गया था। एक बार राज्यसभा में एक योगिनी आयी। युवा थी। गैरिक वस्त्र धारण किये। बडी सुन्दर और बडी तेजस्वी थी। सभा विद्वानो के मन में यह इच्छा हुई अष्टावक्रजी व इसका आपस में शास्त्रार्थ हो। उस काल मे विद्वत्-जन आपस में शास्त्र-चर्चा किया करते थे। तो उस ब्रह्मवादिनी एव अष्टावक्र का संवाद शुरू हुआ। अष्टावक्रजी ने ब्रह्म-तत्त्व के बारे मे बोलना शुरू किया। बोलते-बोलते उन्होने कहा कि वह ब्रह्म अप्रमेय है। अप्रमेय का मतलब—उसको जाना नहीं जा सकता। तो योगिनी ने कहा—'ठहर जाओ'। ब्रह्मवादिनी योगिनी ने तुरन्त रोक दिया। 'ठहर जाओ। आपने क्या कहा? वह ब्रह्म अप्रमेय है—यह जानकर बोल रहे हो या बिना जाने बोल रहे हो?' तो अष्टावक्रजी एकदम से चौंक गये। जिस प्रभाव से, जिस प्रखरता से उस बात को पूछा, वे एकदम-से चौक गये। *अगर वे कहें कि मै जान करके* बोल रहा हूँ तब तो वह प्रमेय हो गया। और यदि वे बोले कि बिना जाने बोल रहा हूँ तब तो तुमको अधिकार ही नहीं हुआ ब्रह्म के बारे में बोलने का। तुमको बोलने का अधिकार ही नहीं है। तुमने उसका अनुभव किया ही नही है। ऐसे कैसे बोल रहे हो? जिसका अनुभव नही किया, उसको एक प्रामाणिकता से कैसे बोले सकते हो? आप कैलास-मानसरोवर गये नहीं और उसका वर्णन करने जा रहे है। आप वहाँ पर गये है क्या? नही।

मैने टी.वी में देखा है। वह और बात है। यह मिठाई स्वादिष्ट है। तो क्या आपने चखा है? तो उस समय अष्टावक्र का अहंकार टूटा और वे उस योगिनी के चरणो में गिर गये और कहा—आप उस ब्रह्म के बारे में बताइये। वहाँ प्रसंग आता है कि वह अप्रमेय भी है, प्रमेय भी है। कैसे? इसको बुद्धि के द्वारा जान भी सकते है और बुद्धि के द्वारा नहीं भी जान सकते। ब्रह्म को जानने में फलव्याप्ति नहीं मानते, वृत्तिव्याप्ति मानते हैं। ये पारिभाषिक शब्द हैं। उस ब्रह्म के विषय में मानते हैं कि फलव्याप्ति नही होती, वृत्तिव्याप्ति होती है। इसको हम एक दृष्टान्त के द्वारा समझेंगे।

जैसे मेरे पास में यह दर्पण है और बाहर धूप में खडा हुआ हूँ। दर्पण पर सूर्य की रोशनी पड रही है। इस दर्पण को लेकर मैने इसमें पड रहे सूर्य-प्रतिबिम्ब को कमरे के अन्दर घुमाया। तो रिफलेक्शन कमरे के अन्दर जाएगा। ऊपर जाएगा, नीचे जाएगा। इसका मतलब यह कि प्रतिबिम्ब इस कमरे की वस्तुओं को प्रकाशित कर रहा है। कमरे में टेबल है, लैम्प है, फोटो रखी हुई है—सबको प्रकाशित करता जाएगा। मानलो खिडकी से दीवार पर धूप पड़ रही है, वहाँ पर प्रतिबिम्ब को डालूँ तो दीवार पर और अधिक प्रकाश हो जायगा। वह सबको प्रकाशित करता जाएगा। अब उसको मैं घुमाता-घुमाता सूरज की तरफ मोड देता हूँ तो क्या वह सूरज को प्रकाशित कर सकता है? नहीं कर सकता। क्यों नहीं कर सकता? क्योंकि सूरज की ही शक्ति इस मे आकर, दर्पण में बैठकर बाकी वस्तुओं को प्रकाशित कर रही थी। उसी प्रकार बुद्धि रूपी दर्पण के अन्दर आत्मा रूपी सूर्य की रोशनी ही आकर सारी वस्तुओ को प्रकाशित कर रही है। यह शब्द है, यह स्पर्श है, यह रूप है, रस है, गंध है—यह जाना, परन्तु जब बुद्धि आत्मा रूपी सूर्य की तरफ मुड जायगी तब बुद्धि मे पड रहे प्रतिबिम्ब का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। जब दर्पण को सूर्य की तरफ मोड दिया तब प्रतिबिम्ब का क्या होगा? प्रतिबिम्ब बिम्ब के साथ में एक हो जाएगा। तो यह है एक-तत्त्व का अनुभव करना या यो कहो कि किसी भ्रम के कारण, किसी विस्मृति के कारण वह प्रतिबिम्ब अपने-आप को सूरज से अलग समझ कर, अपनी सत्ता अलग समझ कर निरन्तर कहे जा रहा है—'मै इसको जान रहा हूँ। मै इसको जान रहा हूँ, इसको प्रकाशित कर रहा हूँ।' पर ज्योंही सूर्य की तरफ इस दर्पण को मोड़ा, तो कहने की

हिम्मत नहीं रहेगी कि मैं सूर्य को प्रकाशित कर रहा हूँ। वह पहचान जाएगा—अरे, मै तो इससे अलग नहीं हूँ। मेरी सारी ताकत जो है वह उसी की दी हुई ताकत है। इसके बाद में आप चाहे मोड़ दें, तो उसका क्या करेगा, प्रतिबिम्ब? क्या कहेगा कि मैं प्रकाशित कर रहा हूँ? अगर कह भी देगा—मैं प्रकाशित कर रहा हूँ, तब अन्दर ही अन्दर जानेगा, मै तो सूर्य ही हूँ या सूरज ही यहाँ बैठकर प्रकाशित कर रहा है। दृष्टान्त पर मनन करना, तब आपको पता लगेगा कि किस प्रकार से आत्मज्ञान होने के पश्चात् अर्थात् ब्रह्मज्ञान होने के पश्चात् भी शरीर बना हुआ रहता है, व्यवहार चलता रहता है और ब्रह्मज्ञानी भी कहेगा—मैंने इसको जान लिया। पर ऐसा कहते हुए भी उसकी यह अनुभूति समाप्त नहीं होती कि मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। व्यवहार के लिये कह सकता है—मैने इसको प्रकाशित किया, मैने इसको जाना। इस प्रकार से ब्रह्मज्ञान में फलव्याप्ति नहीं मानते। फल माने प्रतिबिम्ब। वृत्तिव्याप्ति मानते हैं अर्थात् उस बुद्धि को उसकी तरफ मोडना पडेगा। तो यह जो बुद्धि का उस ब्रह्म की तरफ मुडना है, इस दृष्टि को लेकर कह देते है—'दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या'—बुद्धि के द्वारा दिखाई देता है और यह भी कहते है—उसके अन्दर फलव्याप्ति नहीं हो सकती अर्थात् बुद्धि उसको जान नहीं सकती, प्रकाशित नहीं कर सकती। इसलिये कहते है—वह अप्रमेय है। इसलिये वह बुद्धि के द्वारा जानना भी चाहिये, जाना भी जा सकता है और बुद्धि के द्वारा जाना नही भी जा सकता।

यह ब्रह्मविद्या की बात हुई। टोटल का ज्ञान, अहम् और समस्त इदम् की एकता का ज्ञान। जीव-जगत्-ईश्वर की एकता की अनुभूति—इसको ब्रह्मविद्या कहते है। या आत्म-ब्रह्म ऐक्य की अनुभूति—इसको ब्रह्मविद्या कहते हैं। और इसके लिये जितने भी दूसरे उपाय—ग्रथ है उनको हम इसके अन्तर्गत ले सकते है पर वस्तुतः तो उस अनुभूति को ही ब्रह्मविद्या कहते है। हम लोग इस प्रसंग मे चल रहे थे कि ऋषि-ऋण क्या है? जो संस्कृतिकरण की प्रक्रिया है, जो संस्कृति का हमको एक ज्ञान प्राप्त होता है, संस्कृति का प्रवाह प्राप्त होता है, —वह ऋषि-ऋण के अन्तर्गत आता है। ज्ञान की जो एक निधि प्राप्त होती है, उसको हम ऋषि-ऋण के अन्तर्गत लेते है। जितना भी हमारा वाङ्मय है, जितनी भी

हमारी उपासना की, योग की, अन्य विद्याओं की हमको प्राप्ति होती है, सारा-का-सारा ऋषि-ऋण के अन्तर्गत लेना। और उससे उऋण होने के लिये क्या करना चाहिये? इस ज्ञान को आगे प्रवाहित करना चाहिये और उस ज्ञान का जो तात्पर्य है अर्थात् ब्रह्मज्ञान—उसे पाना। मुख्य ऋण कब उतरेगा? जब आप ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये प्रयास करेंगे।

अब एक बात और। हमारी जो भारतीय परम्परा है उसमें सारी-की-सारी अपरा-विद्या के आधार में परा-विद्या है। परा-विद्या की उपेक्षा करके, उससे विमुख हो करके हम अपरा-विद्या मे भी प्रवेश नही करते। हमारे यहाँ तो चाहे सगीत हो, चाहे वैदिक शास्त्र हो, चाहे शिल्पशास्त्र हो—कोई भी शास्त्र हो, उसमे यह दृष्टि रहती है कि वह परा-विद्या से विमुख नही हो। तो इसका परिणाम क्या होता है? हमारी सारी-की-सारी जो साधना है, अन्ततोगत्वा ईश्वर की आराधना, ईश्वर की प्राप्ति की साधना का रूप ले लेती है। उसके पीछे दृष्टि लुप्त नहीं होती कि इस सारे ज्ञान के आधार में परा-विद्या बैठी हुई है। यह हमारी भारतीय ज्ञान की परम्परा की विशेषता है। मुख्यतः जब सीधा परा-विद्या को अनुभूति के स्तर पर लेकर जाते हैं तब वह आत्मा-ब्रह्म एकता की अनुभूति अन्तःकरण के अन्दर ब्रह्माकारा वृत्ति के द्वारा सम्पन्न होती है। तो यह जो ऋषि-ऋण की बात कर रहे है उससे उऋण होने के लिये हमको इन ज्ञान-परम्पराओं को समझना होगा। जो लुप्त होती हुई परम्पराएँ है, उनकी सुरक्षा करना और साथ-साथ जिस भाषा में हमारी ये ज्ञान की परम्पराएँ सुरक्षित है उस भाषा के प्रति अपने एक दायित्व को समझना व पूरा करना। यह सारा-का-सारा वाङ्मय कौन-सी भाषा में है? यह संस्कृत भाषा मे है। संस्कृत भाषा को यदि हम निकाल दें और तब ऋषियो का चिन्तन करे—यह सभव नही। संस्कृत भाषा से अगर हम कट जाते है तो कहाँ हमारे वेद है, कहाँ हमारे शास्त्र हैं, कहाँ हमारी गीता है! इसलिये हम संस्कृत से कट नहीं सकते। इसको हमे बनाये रखना है। संस्कृत को बनाये रखने, उसके फैलाव के लिये, उसको जानने के लिये स्वयं भी प्रयास करना। संस्कृत भाषा को सीखना ऋषि-ऋण को उतारना है। जैसा कि मैंने आपको बताया—शिक्षा के समस्त क्षेत्र पर आप यदि दृष्टि डालकर देखे तो वर्तमान में जो शिक्षा का रूप है वह किस प्रकार की

शिक्षा का रूप है? शिक्षा का एक विकृत रूप है। हम जब भारतीय संस्कृति की, सनातन धर्म की बात करते हैं, उसमे जो ऋषि का स्थान है, जो गुरु का स्थान है, वह कैसा है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

यह क्या अर्थवाद का श्लोक है या इसमें वास्तविकता है? ब्रह्मा किसको कहते हैं—जो सृष्टि करता है। विष्णु पालन करने वाले और महेश्वर उसको लीन करने वाले या संहार करने वाले। तो सामने हमारे गुरु है, वे ब्रह्मा कैसे हो सकते हैं? विष्णु कैसे हो सकते हैं? महेश्वर कैसे हो सकते है? हम इस श्लोक का प्रयोग करते हैं। इसका क्या मतलब हुआ? तो गुरु कौन है? यदि आपने गुरुतत्त्व पर चिंतन नहीं किया तो ऋषि-ऋण से उऋण होने की बात ही नहीं। गुरु व्यक्ति होता है या तत्त्व होता है? मुख्यतः गुरु एक तत्त्व होता है। हमारे शास्त्र में कहा कि यदि मन्दिर में जो भगवान् की मूर्ति है उसमें आपने बुद्धि कर ली कि यह तो पत्थर की मूर्ति है—मूर्ति में पत्थर-बुद्धि, गुरु मे शरीर-बुद्धि और मंत्र में अक्षर-बुद्धि जिसने रख ली तो उसकी चेतना का विकास रुक जाता है। उसको महान् पाप लगता है। गुरु में शरीर-बुद्धि रख लेना, मूर्ति में पत्थर-बुद्धि कर लेना—हम पत्थर की बुद्धि नहीं करते है। उसी प्रकार 'मंत्र' मे कि यह तो कुछ अक्षरो को, शब्दो को जोडकर रख दिया है—ऐसी अक्षर-बुद्धि नही रखना। तो गुरु किसको कहते है? मैंने आपको पूर्व मे बताया था—उस ब्रह्म के पाँच कृत्य है। सृष्टि, स्थिति, लय, निग्रह और अनुग्रह—ये पॉच शक्तियॉ उस ब्रह्म की शक्तियाँ हैं। यह जो अनुग्रह करने वाली शक्ति है, इसी को गुरु कहते हैं। ब्रह्म की अनुग्रह करने वाली शक्ति को गुरु कहते हैं। वह ब्रह्म ही गुरु है। वह अनुग्रह कब करता है, निग्रह कब करता है? सारे जगत् की सृष्टि करना, उसका पालन करना, उसको लीन कर देना। पर जब जीव के सन्दर्भ मे, मनुष्य के सन्दर्भ मे बात आती है तो निग्रह और अनुग्रह की शक्ति काम करती है। निग्रह का अर्थ है—बाँधकर रखना। अपने स्वरूप को छिपाकर रखना—यह निग्रह करने की शक्ति है। यह कब कार्य करेगी? जब मनुष्य धर्म के विरुद्ध आचरण करता है तो निग्रह की शक्ति काम करती है और धर्म के अनुकूल

आचरण करता है तो अनुग्रह की शक्ति काम करती है। इसके अलावा जब निष्काम भाव से कर्म किया जाता है तो बहुत ही तीव्रता से वह अनुग्रह करने की शक्ति काम करना शुरू कर देती है। यह जो गुरु की शक्ति है इसे यदि हम आत्मसाक्षात्कार या ईश्वर-साक्षात्कार के सम्बन्ध मे समझना चाहें, तब जब एक मनुष्य साधक निष्काम कर्म को अपना लेता है अर्थात् मुझे तो ईश्वर की प्राप्ति करनी ही है, मैं कामनापूर्ति के लिये कर्म नहीं करूँगा, निष्काम कर्म ही करूँगा—ऐसा निश्चय होने पर वह अनुग्रह की शक्ति बहुत ही तीव्रता से काम करने लगती है। वही ईश्वर गुरु के रूप में आपको उपलब्ध होता है। वह किसी भी फॉर्म मे आ सकता है, किसी भी रूप मे आ सकता है। वह चट्टान के रूप मे आ सकता है। किसी मनुष्य के रूप में आ सकता है। पेड के रूप मे आ सकता है। आता है। क्योकि हम सीधे ब्रह्म के अनुग्रह-रूप को नहीं अपना सकते इसलिये किसी मानव को, जिसके प्रति सहजता से श्रद्धा उमडती हो, गुरु-रूप में अपनाते हैं। उस श्रद्धेय पुरुष मे अभिव्यक्त हो रही ब्रह्म की अनुग्रह-शक्ति को लक्ष्य करके ही यह प्रसिद्ध श्लोक कहा जाता है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अब कह दे—गुरुः साक्षात् परब्रह्म! हमारा जीवन चल रहा है, सुख-दुख की अनुभूतियो का एक अविरल प्रवाह है। हम देव की उपासना करते है पर क्या आपने देव को गुरु-रूप में स्वीकार किया है? देव कब आते हैं गुरु-रूप मे? जब हम निष्काम कर्म करते हैं। क्यों भई! आप लोगो ने सुन लिया होगा—यह कर्मयोग है, यह भक्तियोग है, यह ज्ञानयोग है। सबसे सरल कौन-सा योग है? भक्तियोग। पढ लिया। देखो, पुस्तको के अन्दर लिखी हुई बात है वह एक अलग बात है। उसका कुछ तात्पर्य छिपा हुआ रहता है। यदि भक्तियोग सबसे सरल है और मेरे को प्राप्त करना है ईश्वर को। योग का मतलब ही है—ईश्वर से एकत्व को प्राप्त करना। तब एक सीधा-सा प्रश्न है—जब यह सबसे सरल है तो मैं कठिन मार्ग को क्यो अपनाऊँगा? मै उलझे हुए मार्ग को, जिगजेग मार्ग को क्यों अपनाऊँगा? इसलिये ये क्रम मे आते हैं। पहले कर्मयोग। कर्मयोग ही विकसित होकर भक्तियोग हो जाता है। एक मन्दिर में बैठा हुआ

व्यक्ति खूब पूजा-पाठ कर रहा है, माला फेर रहा है, आरती कर रहा है। क्या आप कह सकते है कि वह भक्तियोग कर रहा है? कुछ नहीं कह सकते। बस, कुछ कर रहा है, कुछ क्रियाएँ कर रहा है। हम कुछ कह नहीं सकते कि वह क्या कर रहा है? हो सकता है, पेट पालने के लिये वह कुछ कर्म कर रहा हो। हो सकता है, वह पाखण्ड भी कर रहा हो—लोगों को धोखा देने के लिये। एक व्यक्ति है, वह सिर्फ झाड़ू लगा रहा है। हम कुछ कह नही सकते कि वह कर्मयोग कर रहा है कि भक्तियोग कर रहा है कि ज्ञानयोग कर रहा है। देखना पडेगा कि उसकी चेतना की स्थिति क्या है? उससे पता लगेगा कि वह कौन-से योग को साध रहा है। तो सबसे प्रारम्भ में कर्मयोग, उसके बाद में भक्तियोग और उसके बाद मे ज्ञानयोग। अभी मै आपको यह बताना चाह रहा था कि वह जो ईश्वर है, वह ही गुरु-रूप में तब आता है जब हमारे अन्दर निस्वार्थ भाव आता है। आप सभी लोग तो कर्मयोग के बारे में बहुत चिन्तन करते है—कर्मयोग क्या होता है? कर्मयोग का पूरा-का-पूरा एक कोर्स होता है। एक प्रारम्भ का बिन्दु होता है और उसके परिपाक का एक बिन्दु होता है। प्रारम्भ-बिन्दु कर्मयोग का होता है कि वह स्वकर्म या स्वधर्म होना चाहिये। इस पर और भी विस्तार से चर्चा करेंगे।

हमारा कर्म स्वकर्म-स्वधर्म होना चाहिये। उसको करते हुए भी फल-प्राप्ति की इच्छा नहीं रखनी चाहिये। तो क्या ऐसा काम करना जिसका फल ही पैदा न हो? फल होना चाहिये। बहुत उत्कृष्ट फल होना चाहिये। आपके घर में कोई मेहमान आये तो आप कैसा भोजन बनायेंगे? जला हुआ हलुवा या कच्चा हलुवा? जली सब्जी, कच्ची रोटी, कंकर वाली दाल—क्या ऐसा भोजन बनाएँगे? नहीं। उत्कृष्ट भोजन बनायेंगे। अतिथि जितने-जितने महान्, पूज्य, श्रद्धास्पद होगे उतना-उतना अधिक भाव से भरकर, आदर-प्रेमपूर्वक सावधानी से श्रेष्ठतम भोजन बनाएँगे। कर्मयोग करते समय कर्म का फल श्रेष्ठतम होना चाहिये क्योकि इस फल को परमेश्वर के प्रति अर्पण करना है। कर्म मे आसक्ति और कर्तापन के भाव को छोडते हुए करना। तीन बातें आ गयीं। पहले कर्तापन का भाव छोडते हुए, फिर दूसरा उसमे कर्म की आसक्ति को छोडते हुए। क्योकि जीवन एक ऐसे प्रवाह से, एक अज्ञात प्रवाह से निकलता जा रहा है, बढता

जा रहा है। आज आप यहाँ पर हैं, कल आप दूसरी जगह चले जाएँगे। किसी कर्म के प्रति आसक्ति रखी तो वह आपके विकास को रोकेगा। कर्म से आसक्ति नहीं, कर्मफल मे आसक्ति नहीं और कर्तापन की पकड को छोडते हुए करना। लम्बी यात्रा आपको करनी पड़ेगी। तो पहले एक रिश्ता हो ईश्वर से। मै उस ईश्वर से जुडा हुआ हूँ, ईश्वर का दास हूँ, 'भृत्यवत् कर्म करोमि'। वह मेरा स्वामी, मैं उसका सेवक। उसके लिये मैं काम कर रहा हूँ। यहाँ से कर्मयोग की यात्रा शुरू होती है। जब किसी स्वामी के लिये, स्वामी के किसी निर्देश के अनुसार, आदेश के अनुसार, नियम के अनुसार काम करते हों, तो वह स्वामी भी आपकी खोज रखता है, निरन्तर आपको देखता रहता है। क्या उसको पता नहीं लगेगा कि कितनी इमानदारी से और सचाई से यह काम कर रहा है? उसकी निकटता बढती जाएगी। आपके हृदय में उसके प्रति प्रेम बढता जाएगा। वह कर्मयोग ही प्रेम का प्रकटन रूप हो जाएगा। यह भक्ति आ गयी। यहाँ पर हम कहते है—वह ईश्वर ही गुरु-रूप मे आता है। ईश्वर ही गुरु-रूप से आता है, उसको पहचानो।

**यस्यदेवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।**
**तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः। प्रकाशन्ते महात्मनः।**

—श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6 23

'यस्य देवे पराभक्तिः'—सिर्फ गुरु को लेकर भी वैदिक सनातन धर्म नहीं चलता। सिर्फ ईश्वर को लेकर भी नहीं चलता है। ईश्वर भी है, गुरु भी है और शास्त्र भी है। इन तीनों को लेकर हमारे वैदिक सनातन धर्म मे आगे का पथ प्रशस्त होता है। यह जो गुरु का तत्त्व है उसके ऊपर चिन्तन करना। वह परमेश्वर ही गुरु हैं। परमेश्वर की अनुग्रह करने की शक्ति ही गुरुतत्त्व है। शिक्षा के सदर्भ में, विशेषकर परा-विद्या के संदर्भ मे गीता कहती है—

**श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।**
**ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।।** गीता, 4/39

'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं'—आज हमारी शास्त्र के प्रति श्रद्धा नहीं है,

ऋषियो के प्रति श्रद्धा नहीं है तभी तो हम कहने लगे कि ये सारे-के-सारे गपोडे हैं। आजकल इनका समय नहीं है। ये हमारे वर्तमान समय के लिये लागू नहीं होते।

श्रद्धा के द्वारा ऋषि-ऋण उतरना शुरू होता है। श्रद्धा किसको कहते है? *श्रत् हृदि धार्यते इतिश्रद्धा। सारे विश्व के अन्दर एक ऋत है।* वह ऋत आपके हृदय के अन्दर आ जाता है। हृदय किसको कहते हैं? जिसके अन्दर सारे अनुभव आ करके इकट्ठे रहते हैं, रिकॉर्ड होते हैं। तो हृदय में आकर, आपके चित्त मे वे संस्कार बन करके रहते हैं—जन्म-जन्मान्तर के संस्कार। उनके अनुसार आपमें एक अभिव्यक्ति की क्षमता आती है। उसको श्रद्धा कहते है। श्रद्धा के द्वारा ही हमारा सम्पर्क ऋषियों से और शास्त्रों से होता है। ऋषि-ऋण को उतारने के अन्तर्गत उस श्रद्धा को परिष्कृत करते जाना। एक जन्मजात श्रद्धा होती हैं जिसको सहज श्रद्धा कहते हैं। एक साधनाजा श्रद्धा होती है। साधना के द्वारा श्रद्धा को बढाते जाते हैं। *श्रद्धा की क्वालिटी को, इसके रूप को निखारते जाते हैं।* श्रद्धा को कैसे परिष्कृत करना? यदि आपने गुरु का चिन्तन किया और श्रद्धा के ऊपर विचार नहीं किया तो आपके ज्ञान की प्राप्ति मे बहुत बडी रुकावट आ जाएगी। एक सीमा तक ज्ञान की प्राप्ति होगी और उसके पश्चात् ज्ञान की प्राप्ति में एक बाधा खड़ी हो जाएगी। वेद का एक प्रसिद्ध मत्र है—

**व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽप्नोति दक्षिणाम्।**
**दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।।** यजुर्वेद, 19.30

यर्जुवेद में *आया—'व्रतेन दीक्षामाप्नोति'*। व्रत के द्वारा दीक्षा की प्राप्ति। शिक्षा की बात करें और दीक्षा की बात न करें तो वह काहे की शिक्षा! शिक्षा की बात करे और दीक्षा की बात न करे तो फिर शिक्षा का कोई अर्थ ही नही। बिना दीक्षा के शिक्षा का कोई तात्पर्य नहीं। दीक्षा किसको कहते है? 'दीयते दीप्यते क्षाल्यते'। दीक्षा की प्रक्रिया मे एक इवोल्यूशनरी प्रोसेस को प्रारम्भ कर देते है। *एक चेतना-विकास की* प्रक्रिया को प्रारम्भ कर देना दीक्षा की प्रक्रिया है। और यह कब होती है? गायत्री मत्र की दीक्षा के द्वारा। यज्ञोपवीत संस्कार—उपनयन सस्कार के

द्वारा हमारी शिक्षा प्रारम्भ होती है। तो दीक्षा हुई और शिक्षा प्रारम्भ हुई। इस दीक्षा के ऊपर मनन करना।

'व्रतेन दीक्षामाप्नोति'। प्रारम्भ में शास्त्र मे श्रद्धा होती है। श्रद्धा को लेकर आपने किसी व्रत को स्वीकार किया। आप लोग जीवनव्रती हैं। आप लोगों ने व्रत लिया है कि जीवनभर राष्ट्र की सेवा करेंगे। व्रत की धारणा करते ही दीक्षा प्रारम्भ हो जाती है। दीक्षा का मतलब है एक दीपन, एक प्रक्षालन। एक दीपक बुझ रहा होता है—उसमें यदि तेल डाल दो, बाती को ठीक कर दो तो वह तेजी से जलने लगेगा। तो यह दीपन की प्रक्रिया हुई। और एक प्रक्षालन की प्रक्रिया, एक मैल के, दोष के हटने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। दीक्षा के द्वारा एक दक्षिणा आ जाती है। हर पूजा के बाद में एक दक्षिणा दी जाती है। कौन-सी दक्षिणा? विराट् के साथ में व्यवहार करने की एक कुशलता आ जाती है। दक्षिणा के द्वारा एक श्रद्धा की प्राप्ति होती है। यह श्रद्धा कौन-सी है? सत्य को देखने की ऑख को श्रद्धा कहते है। यह श्रद्धा का उत्कृष्ट रूप है। पहले वाली श्रद्धा आपको कर्म में लगाती है। व्रत क्यों लिया? क्योकि मेरी शास्त्र में श्रद्धा है, गुरु मे श्रद्धा है इसलिये व्रत को धारण किया। व्रत के द्वारा दीक्षा, दीक्षा के द्वारा दक्षिणा, दक्षिणा के द्वारा श्रद्धा आती है। 'श्रद्धया सत्यमाप्यते'— इसके द्वारा सत्य का दर्शन। श्रद्धा को लेकर गुरु और शास्त्र को अपनाया। हम श्रद्धा को विकसित करते गये, इसको आगे बढाते गये। श्रद्धा ही भक्ति मे बदल जाती है। यही ध्यान मे परिवर्तित हो जाती है।

इसी को गीता बताती है—श्रद्धावॉल्लभते ज्ञानं तत्परः सयतेन्द्रियः (गीता, 4.39)। अर्थात् श्रद्धायुक्त, तत्पर और संयतेन्द्रिय ही ज्ञान को प्राप्त करता है।

कैवल्य उपनिषद् मे आया है—'श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-योगाद् अवैहि'—उस ब्रह्म को श्रद्धा-भक्ति-ध्यान-योग द्वारा जानो।

गुरु का एक व्यक्त रूप होता है, गुरु का एक व्यक्ताव्यक्त रूप होता है और गुरु का एक अव्यक्त रूप होता है। व्यक्त कहते है मेनीफेस्ट को और अव्यक्त कहते है अनमेनीफेस्ट को। श्रवण के द्वारा गुरु के व्यक्त रूप को अपनाते हैं। मनन के द्वारा गुरु के व्यक्ताव्यक्त रूप को अपनाते

हैं और निदिध्यासन के द्वारा गुरु के अव्यक्त रूप को अपनाते हैं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन—ये वेदान्त के तीन प्रसिद्ध शब्द है।

देखिये ब्रह्मविद्या वह है जो कि अपरा-विद्या की सफलता के रहस्य को हमें बताती है। आजकल क्वाण्टम और रिलेटिविटी के सिद्धान्त के द्वारा पाया गया कि जो ऑब्जर्वर है वह ऑब्जर्व्ड से पूरी तरह से अलग नहीं है। ऑब्जर्वर की चेतना को भी ऑब्जर्वेशन मे एक आयाम (पेरामीटर) की तरह सम्मिलित करना पडेगा। उनके पास शब्दों का अभाव है। उनको चेतना और चैतन्य के अन्दर फर्क मालूम नही है। रिफ्लेक्टेड, आइडेण्टिफाइड कॉन्शियसनेस को चेतना कहते है और अनआइडेण्टिफाइड, अनरिलेटेड कॉन्शियसनेस को चैतन्य कहते हैं।

यह जो अपरा-विद्या है उसके अन्दर ब्रह्मविद्या रहती है। ऐसा नही होगा तो अपरा-विद्या बन्धन करने वाली हो जाएगी। तो यह जो आपको बता रहा था कि किसी भी ज्ञान को प्राप्त करना हो तो आपको ज्ञेय के साथ तन्मय होना पडेगा। तभी उसकी असलियत का आपको पता लगेगा। अन्यथा विज्ञान इदं रूप से सारे संसार का कितना ही विश्लेषण करता जाय, परत-दर-परत वह अन्दर घुसता ही चला जाय, वह एक अन्धकार में जाकर अटक जाएगा। वह चाहे बडे-से-बडा वैज्ञानिक हो, या चाहे बडे-से-बडा योगी हो—इदं को पूरी तरह नहीं जान सकता। वह ज्यादा-से-ज्यादा अव्यक्त तक पहुँचेगा।

मुझे गुरु को कैसे अपनाना है? श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा। निदिध्यासन के द्वारा गुरु की जो अखण्ड की अनुभूति है, उससे तन्मय होना है। यह ब्रह्मविद्या का रहस्य है।

गुरु-ऋण से उऋण होने के लिये हम शास्त्र को अपनाते है, गुरु को अपनाते है, अपरा-विद्या और परा-विद्या को अपनाते हैं। समस्त शिक्षा-क्षेत्र के प्रति हमारा एक दायित्व है। ग्रन्थों के प्रति हमारा दायित्व है। हमारी सारी-की-सारी देशज जो परम्पराएँ है, उनकी रक्षा करने के प्रति हमारा एक दायित्व है। यह सारा-का-सारा ऋषि-ऋण के अन्तर्गत है, इसको समझ लेना। वह चाहे कृषि का क्षेत्र हो या चाहे जीवन का कोई भी क्षेत्र हो, उसमें हमारी जो स्वयं की परम्पराएँ हैं, उनको सुरक्षित रखना है।

और इसके बाद कौन-सा ऋण आयेगा? इन ऋणों को अलग-अलग करके नहीं समझ सकते। वह जो देव है, वही ऋषि है, वही गुरु है। उसके बाद तीसरा आता है उसको हम कहते है—पितृ-ऋण। हमें शास्त्र की शैली को और शास्त्र के तात्पर्य को समझना चाहिये। शास्त्र में बताया कि देव-ऋण से उऋण होने के लिये प्रतिदिन देव की आराधना करो। ऋषि-ऋण से उऋण होने के लिये शास्त्रों को पढ लो। यह तो अतीत में कही हुई बात है। आज सब-कुछ उथल-पुथल हो रहा है, टूट-फूट रहा है और हम चुपचाप बैठे हुए पुरानी रटन लगा रहे हैं। उस पुराने ढर्रे को अपनाने से कुछ अदृष्ट एक पुण्य उत्पन्न हो जायेगा। किन्तु वास्तव में इन ऋणों से उऋण होने के लिये हमें गहन चिन्तन करना पडेगा। ऋषि-ऋण से उऋण होने के लिये हमारा राष्ट्र के प्रति कितना दायित्व है, हमारा संस्कृति के प्रति कितना दायित्व है, शिक्षा के प्रति कितना दायित्व है—यह खुद मे देखो। आपको अनुभव हो रहा होगा कि हम तो उस ऋण का एक अत्यल्प अंश भी नहीं उतार रहे है। यह सवेदना ही हमारे अन्दर नहीं आ पा रही है। तो यह सारा चिन्तन कर लेना। संस्कृति का चिन्तन, राष्ट्र का चिन्तन जो हम कर रहे हैं वह किसको लेकर है? यह ऋषि-ऋण से उऋण होने की एक प्रक्रिया है। राष्ट्र के साथ में संस्कृति को बोलना जरूरी है। तीर्थ की बात मैंने देव-ऋण के संदर्भ मे कही थी और संत, ऋषि और गुरु जंगम तीर्थ होते हैं—तो दोनों मिल गये हैं कि नही! दोनों के अन्दर अन्तर नहीं समझना। इस प्रकार से देव-ऋण, ऋषि-ऋण को समझते हुये आगे बढते हैं—पितृ-ऋण से उऋण होने के लिये।

शास्त्र तो कहते हैं कि पितृ-ऋण से उऋण होने के लिये पितरों का स्मरण करना। पितरों का तर्पण करना। और फिर कहते हैं—गृहस्थ में जाना। और वहॉ जाकर पुत्र की प्राप्ति करना, तब समझो आप पितृ-ऋण से उऋण हो गये। पुत्र वह है जो कुल-परम्पराओं को आगे चलाये—इतना ही तात्पर्य नही है पितृ-ऋण का। आप चिन्तन करके देखो। वैज्ञानिक दृष्टि से इस स्थूल शरीर को उत्पन्न करने के लिये पिछले सौ, पॉच सौ, हजार साल का हिसाब लगाकर देखो—इस स्थूल शरीर को पैदा करने के लिये कितने शरीरों का सहयोग रहा? इस शरीर को पैदा किया माता-पिता ने। उस मॉ के शरीर को पैदा किया उनके माता-पिता

ने। उसी प्रकार से पिता के शरीर को पैदा किया उनके माता-पिता ने। ऐसा थोड़ा केलकुलेटर लेकर पता लगाना। इस प्रकार कितने लोगों का सहयोग रहा है, तब जाकर यह शरीर प्राप्त हुआ है। तो यह शरीरो की एक परम्परा चल रही है। शिवगीता मे यहाँ तक बताया कि सिर्फ शरीर ही नही है, इनके अन्दर कौन-कौन से गुण माता की तरफ से आते हैं! माता का जो प्रवाह है, उसमें कभी नानी का प्रभाव आ जाएगा, कभी परनानी का प्रभाव आ जाएगा। कभी परदादा का प्रभाव आ जाएगा। पर हमारे वैदिक शास्त्र के अनुसार भी और आधुनिक विज्ञान के अनुसार भी, हम शरीर और मन के अन्दर कोई स्पष्ट डिमार्केशन की लाइन नहीं खींच सकते। मन ही शरीर बनता है, जैसे बीज ही पेड बनता है। एक छोटा-सा वट वृक्ष का बीज है। क्या है इसके अन्दर? इसे तोडा, इसके अन्दर क्या दिखाई देगा? कुछ नहीं दिखाई देगा। और इसको बो दे तो यह विशाल वट वृक्ष बन जाएगा। कितने फल, कितनी डालियाँ, कितन पत्ते, कितनी आकृतियाँ है उस बीज के अन्दर! किसी प्रकार से हम बीज व पेड को अलग नहीं कर सकते। हमको यह जो शरीर प्राप्त होता है एक परम्परा से, स्थूल रूप में उसके आचार का एक प्रवाह भी होता है उसके अन्दर। यह जो आचार का प्रवाह है, इसको आगे प्रवाहित करना। एक अनुभव की पोटली पिता के पास मे, माता के पास में। उनको चाहिये कि वे उसको संशोधित करके आगे की पीढ़ी को प्रदान करें। इसको अच्छी तरह से समझ लेना। अपने-आप को थोपना नहीं, यह तो हिंसा हो गयी। अपनी अधूरी इच्छाओ को अपने बच्चे के ऊपर थोपना—यह तो हिंसा हो गयी। परन्तु एक शुद्ध आचार के प्रवाह को आगे बढाना। इसको कहते हैं पितृ-ऋण से उऋण होने की प्रक्रिया।

जयपुर मे एक बहुत ऊँची पोस्ट के व्यक्ति थे। वे एक गोष्ठी मे अपनी स्वयं की बात को बता रहे थे। किस संदर्भ में, अभी मेरे को स्मरण नहीं है। वे बता रहे थे कि वे अपने लडके को डॉक्टर बनाना चाह रहे थे। वह किशोर अवस्था का लडका। अब तुम को तो डॉक्टर बनना है, पी एम. टी मे बैठो। एक-दो बार बैठा। सफल नहीं हुआ। 'नही तेरे को तो डॉक्टर ही बनना है।' इस प्रकार से इतना दबाव डाला तो फिर एक Gap होना शुरू हो गया। उसकी माँ ने पुत्र से कहा—आखिर तू पढता

क्यों नही! तुमको तो पी. एम. टी की तैयारी करनी चाहिये। तू पापा का कहना क्यो नहीं मानता। तीसरी दफे कहा तो पुत्र ने घृणा से भरकर कहा—आई हेट डैडी—मैं पिता से घृणा करता हूँ। इतनी जुगुप्सा से, इतनी घृणा से बोला तो उसकी माँ एकदम से स्तब्ध हो गयी। शाम को पिताजी आये और उनको यह बात माँ ने बतायी—मुन्ना तो ऐसे बोल रहा था। धीरे-धीरे करके पिता के प्रति उसके अन्दर एक घृणा का भाव आ गया। उन सज्जन को पुत्र के उद्गार का पता लगा, तुरन्त उन्होंने दबाव देना छोड दिया। उस गेप को उन्होंने दूर किया। पुत्र को बुलाया। उससे संवाद स्थापित किया। उसने कहा—मैं तो एम बी ए. करना चाहता हूँ। तो उन्होंने कहा 'कोई बात नहीं, तू एम. बी ए करले।' वे अपने-आप को थोपना चाहते थे, उनके अन्दर कोई कुण्ठा उत्पन्न हो गयी होगी, वे खुद डॉक्टर बनना चाहते होंगे पर बन नहीं पाए तो अब लडके को डॉक्टर बनाने की कोशिश करने लगे। खुद के अन्दर इच्छा होगी, अब पुत्र के ऊपर क्यों थोप रहे हो! उसको खुद को आगे बढने दो न! एक बालक को अपनी त्रुटियों को बताते हुए, जो श्रेष्ठ है उसे प्रवाहित करना। घाणी के बैल की तरह घूमना—उसको परम्परा नहीं कहते। कुछ जो त्रुटियाँ, जो गलतियाँ, जो दोष हैं उनको हटाते हुए एक सर्जनात्मक ढंग से आगे प्रदान करना—इसको परम्परा कहते हैं। इसको सम्प्रदाय कहते है। आज सम्प्रदाय का कैसा कुत्सित अर्थ हो गया है! सम्यक् रूप से प्रदान किया जाता है उसको सम्प्रदाय कहते हैं। एक कुल में जो ज्ञान का प्रवाह होता है उसको आगे प्रवाहित करना।

देखो! पितृकुल व गुरुकुल में थोडा-सा अन्तर समझ लेना। एक तो गुरु-परम्परा में शिष्य को कहते हैं—नाद-संतति। पुत्र को बिन्दु-संतति कहते हैं। जो शिष्य होता है वह भी गुरु का एक प्रकार से पुत्र ही होता है, उसको मानस पुत्र कहते हैं। उसको नाद-संतति कहते हैं और पुत्र को बिन्दु-संतति कहते हैं। पर ऐसा नहीं समझना कि पितृ-कुल मे कोई ज्ञान नहीं होता। वहाँ पर भी तो एक ज्ञान होता है। कुल का एक शील होता है, उसको आगे प्रवाहित करना। कुल का एक गौरव होता है, उसको प्रवाहित करना। अगर एक क्षत्रिय पिता अपने पुत्र में जो क्षत्रियत्व के गुण हैं, उनका संचार नहीं करता तो वह क्या करता है? उस प्रवाह को रोकता है। उसको

गुलगुला बना देता है, पिलपिला बना देता है। उसको शेर जैसा बनाना चाहिये न! और खुद मान लो किसी गलती के कारण शराब पीने की आदत पड गयी और उसको भी वह शराबी-कबाबी बना दे तो! क्षत्रिय के लिये गीता कहती है—

**शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।** गीता, 18/43

इस स्वभाव को थोडा समझना। आगे आयेगा तब मैं विस्तार से बताऊँगा। राजस्थानी भाषा में 'मोथा' शब्द का अर्थ है केवल शरीरबल का उपयोग करने वाला। यह बुद्धि का ज्यादा उपयोग नहीं करता। मध्यकाल मे यह मोथापन आ गया था, हमारे क्षत्रियों में। उन्होंने धर्म के तत्त्व को समझा नहीं था। वैरी आ गया, आततायी आ गया, उसको तुरन्त नष्ट कर देना चाहिये था, बिना विलम्ब किये मूल समेत नष्ट कर देना चाहिये था। उसको छोड दिया, किसके कारण छोडा? दम्भ के कारण, अहकार के कारण, झूठे धर्म की अवधारणा के कारण। क्षत्रिय का धर्म तो क्षमा करना है। क्या क्षत्रिय का धर्म क्षमा करना ही है? कितनी बार छोडा पृथ्वीराज ने गौरी को? सत्रह बार। यह कोई ढंग है बताओ, छोडने का। छोड दिया! उसी प्रकार से सामने से गायें आ रही हैं, उनके पीछे शत्रु आ रहे हैं और गौमाता-गौमाता, अरे गौमाता कहकर हथियार डाल दिये! जरा विचार करते कि शत्रु आए हैं गायों की आड लेकर। वे कितने आदमियो को, औरतो को, बच्चो को नष्ट कर देगे! सारे देश को गुलाम बना देगें!

वर्तमान परिस्थिति में इस परम्परा को कैसे आगे बढाया जाय! वर्तमान को कभी भूलना नहीं। वर्तमान परिस्थिति में क्षत्रियत्व के गुणों को कैसे आगे सचरित करना चाहिये? आज आप बच्चों को कॉन्वेण्ट स्कूलो मे भेजते जा रहे है और वह वहॉ पर हमारे धर्म की धारा से कट रहा है। संस्कृति की धारा से वह कट रहा है और आप उसे मोडर्न बनाने के चक्कर में है। सारे राज्यो की यही हालत हो गयी है। अगर हमारे सारे राजा वास्तव मे धर्म के अर्थ को समझते और संस्कृति के प्रति, राष्ट्र के प्रति एकजुट होकर मुकाबला करते तो मुगलो व अंग्रेजो की क्या ताकत थी कि वे हमारे ऊपर शासन करते!

अब आप कहो कि किसी के लडका ही नहीं हो, उसका क्या होगा? लडका नहीं है तो लडकी होगी। यह लडका-लडकी का भेद क्यो पैदा करते हो? चलो, किसी को न लडका है, न लडकी है। न पुत्र है, न पुत्री। तो आपके नहीं तो आपके भाई के होगा। आपके भाई के नहीं तो आपके सम्बन्धी के होगा। आपके सम्बन्धी के नहीं तो आपके अडोस-पडोस का होगा। बालकों की कोई कमी है! सारी नयी पीढी के प्रति आपका एक दायित्व है। इसलिये घबराना मत कि हमने गृहस्थ मे प्रवेश नहीं किया है तो हम पितृ-ऋण से कैसे उऋण होगे? अरे! बच्चों के लिये कितना कर रहे हैं! कितनी बाल-बाडियाँ चला रहे है, कितने विद्यालय चला रहे हैं, संस्कार-केन्द्र चला रहे है आप लोग! तो पितृ-ऋण उतर रहा है। इसे नहीं समझे तो ठीक से नहीं उतरेगा। अन्दर एक गॉठ पडी हुई है। समझ लेंगे तो ऋण सम्यक् रूप से उतरना शुरू हो जायेगा। तो बिना गृहस्थ मे प्रवेश हुए भी पितृ-ऋण उतर जाता है। मनु-महाराज ने कहा है—

**ऋणानि त्रीणि अपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत**

तीन ऋणों को हटाकर मन को मोक्ष मे लगाएँ अर्थात् संन्यास लेवें। तो तीन ऋण हटने पर ही मन इस पात्रता को प्राप्त करता है कि वह संन्यास के अन्दर प्रवेश करे। तीन ऋणों के हटने पर ही मन के अन्दर वह पात्रता आती है। और सही ढंग से, सचाई से इस पथ पर चल पडा है तो फिर उसके अन्दर वह ग्रन्थि, वह कुण्ठा आ ही नहीं सकती। उसके लिये तो प्रत्येक बालक आनन्द को देने वाला है। अपने बालक को लेकर ही आनन्द आता है क्या? जब हम सन्यासी लोग किसी के घर मे जाते है तो माता-पिता अपने छोटे बच्चे को हमारी गोद में रख देते है। तब कितना आनन्द देता है वह मुस्कराता हुआ शिशु! किन्तु जब वह रोने लगता है तो उसे माता-पिता को सौप देते है। असगता में आनन्द ही आनन्द है और ममता मे रुलाई भी। तो नयी पीढी के प्रति एक दायित्व को समझना और दायित्व से निवृत्त होने के लिये उनके लिये कुछ करना। किन्तु उनकी कण्डीशनिग नही करना।

देखो, शिक्षा का तात्पर्य कितना अद्भुत है! हम शिक्षा के तात्पर्य को नही समझें तो गुरु-ऋण से उऋण नहीं हो सकते। कम्युनिस्ट विचारधारा के लोग विद्यालय चलाते है तो वे सारे बच्चों को क्या पढायेगे?

कम्युनिज्म ही तो पढायेगे! तो यह बडी भारी हिंसा होगी। उसी प्रकार से क्या हम भी अपने बच्चे को कोई इज्म पढा रहे हैं? यदि इज्म पढा रहे हैं तो इसका मतलब बच्चो की कण्डीशनिग कर रहे हैं। बहुत अच्छे विद्वान-मनीषी-साहित्यकार कहते है कि शिक्षा में किसी प्रकार की कण्डीशनिंग नहीं करनी चाहिये बच्चों की। अपने-आप उनको बढने देना चाहिये। मैं तो कहता हूँ कि बालक कण्डीशनिंग लेकर ही पैदा होता है। पैदा होना भी अपने-आप मे एक कण्डीशनिंग है। अगर आपने उनके सामने कोई कण्डीशनिंग नहीं रखी तो क्या होगा? झाड-झंखाड जैसा उनका विकास हो जायेगा। वह विकास कहलायेगा नहीं। इसलिये कण्डीशनिंग होनी चाहिये। पर ऐसी कण्डीशनिंग रखनी चाहिये, जो डीकण्डीशनिंग की ओर ले जाए। हमारी भारतीय परम्परा में ऐसी ही कण्डीशनिंग रखते थे। *गुरुकुल का वातावरण ही ऐसा होता था। गुरु, शिक्षण, पाठ्यक्रम सभी* विकासशील होते थे। गुरु के साथ गुरु-पत्नी होती थी। गुरुकुल बिना गुरु-पत्नी के पूरा नही होता था। क्योंकि एक मातृशक्ति और एक पितृशक्ति के बिना आदर्श शिक्षण सम्भव नही है। मातृशक्ति शिशु के अन्दर प्रविष्ट होकर, रसमय होकर शिशु-अन्तःकरण में बीज-रूप से संस्कारों को अंकुरित करती थी। वह बुरे सस्कारो को हटा देती थी। अच्छे संस्कारों को बढाती थी। केवल पिता का कठोर अनुशासन रखेंगे तो बच्चा अपने संस्कारो को छिपा लेगा। इससे उसके संस्कारों के अंकुरित होने की प्रक्रिया मे भारी बाधा खडी हो जाएगी। इसलिये आदर्श गुरु मे मातृत्व एवं पितृत्व का सामरस्य होता है।

# सातवाँ प्रवचन

मानव मात्र के कल्याण के लिये एक पथ का उद्घाटन किया। मानव की वास्तविकता को स्वीकार करते हुये वेद भगवान्, श्रुति भगवती मानव को यह आदेश देती है—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः (बृ. उपनिषद् 2.4.5)।' यह आदेश है—'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः'—आत्मा को देखना चाहिये, श्रवण करना चाहिये, मनन करना चाहिये और आत्मा से तन्मय हो जाना चाहिये। आत्मसाक्षात्कार करने की पात्रता एकमात्र मनुष्य योनि के अन्दर आती है। वेद भगवान् यह नहीं कहते कि तुम स्वर्ग की प्राप्ति के लिये अमुक यज्ञ करो। वेद कहता है कि अगर तुम स्वर्ग जाना चाहते हो, तब इस विधि के द्वारा स्वर्ग जा सकते हो। अगर तुम पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा की पूर्ति करना चाहते हो तो उसका यह रास्ता है। इस पथ का, इस विधि का अवलम्बन करोगे तो तुम अपनी कामना की पूर्ति भी कर लोगे और आगे भी बढ जाओगे। इसलिये कामना-पूर्ति करने वाले व्यक्ति के लिये वेद बताता है कि तुम्हारे ऊपर ऋण है। और उन ऋणों के अन्तर्गत हमने देखा कि किस प्रकार से इस ऋणबोध के अन्तर्गत और इस ऋण-विमोचन के अन्तर्गत मनुष्य के सारे कर्तव्यों को समझा जा सकता है। ऋण उतारने के लिये हम ज्यों-ज्यों आगे बढते हैं त्यों-त्यों उसमें रस आने लगता है। जिसका हम ऋण उतार रहे हैं, वह एक विराट् सत्ता है। एक महान सत्ता है। हमारी एक लघु चेतना है, लघु सत्ता है। और हमको यह पता भी नही कि हम पर कितना ऋण है। पर हम जितना-जितना सचाई से ऋण उतारेंगे उतना-उतना मन के अन्दर एक हल्कापन आयेगा, एक निर्मलता आयेगी। एक संस्कार उत्पन्न होगा जो अद्वैत-संस्कार में परिवर्तित हो जायेगा।

मैं आपसे निवेदन करूँगा कि आप स्वयं इन सब पर विमर्श करें। देव-ऋण क्या है, कैसा है? ऋषि-ऋण क्या है, कैसा है? इसका विमोचन कैसे? हम विचार कर रहे थे देव-ऋण, ऋषि-ऋण, पितृ-ऋण

फिर मनुष्य-ऋण के बारे मे। बहुत ही संक्षेप मे मैंने बताया था मनुष्य-ऋण के बारे में। हम एक मानव समाज के अग है और मानव समाज के अलग-अलग घटक हैं। पूरे समाज मे प्रत्येक घटक का, प्रत्येक इकाई का अपना एक दायित्व हैं, उसका एक कार्य है। वह चाहे वर्ण की दृष्टि से विचार करे या कार्य की दृष्टि से विचार करे। हम भी उसी समाज के घटक है, उस राष्ट्र के घटक है। उसके प्रति एक भावना, एक दाय बनता है हमारे व्यवहार के समय। हमको कोई सैनिक मिलता है, सैनिक के परिवार का कोई व्यक्ति मिलता है, उसके माता-पिता और पत्नी व बच्चे मिलते है तो एक अलग भाव उत्पन्न होना चाहिये। उसको हम साधारण दृष्टि से नहीं देख सकते। और न हम सैनिक को ऐसा समझते हैं कि वह एक पेड सर्वेण्ट है। ऐसा बोध यदि हम उसको देते हैं तो उसके अन्दर वह भाव नही आयेगा जिसको लेकर एक छोटी-सी बात के लिये, एक छोटे-से आदेश को लेकर वह अपने प्राणों को न्योछावर कर देता है। यह भाव रहना चाहिये। इस प्रकार से वह चाहे क्षत्रिय हो, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे वैश्य हो, चाहे शूद्र हो, चाहे अन्त्यज हो—ये सारे-के-सारे मिलकर एक समाज का निर्माण करते है, एक राष्ट्र का निर्माण करते हैं। उन सबके प्रति एक ऐसा भाव होना चाहिये कि ये मेरे विराट् जीवन के अंग हैं। इनके प्रति मेरा एक दाय है। इसलिये मैं इसके विमोचन का प्रयास करूँगा। तो एक औचित्य आयेगा। सबने अपने-अपने ढंग से हमारे अपने जीवन के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये एक बहुत बडा त्याग किया है। एक बहुत बडा उनका अवदान है।

हम चाहे आरोप लगा दें कि देश के गुलाम बन जाने का मुख्य कारण ब्राह्मण है, उन्होंने दिशा नही दी। क्षत्रिय है, उन्होंने रक्षा नहीं की। वैश्य है, उन्होने अपने धन का विनियोग नहीं किया। पर कितने-सारे भामाशाह हो गये, कितने-सारे वीर पुरुष हो गये और कितने-सारे ब्राह्मण हो गये और कैसे-कैसे कष्टो को सहन करके उन्होंने विद्या की रक्षा की। पोटली में बॉध-बॉध करके वर्षा से, दीमक से, शत्रुओं से बचाते, जंगलो मे जाकर छिप गये और शास्त्र की रक्षा की उन्होंने। इसलिये सबका बहुत बडा त्याग है। सबके प्रति हम एक आदर की भावना रखें और उनके प्रति कुछ-न-कुछ करें। ऐसा एक विस्तृत चिन्तन हमारे मन में आयेगा।

अन्तिम आया था भूत–ऋण। भूत–ऋण के अन्तर्गत हमारे यहाँ पंचमहाभूत बताये—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। मै आपको पहले बता चुका था कि प्रत्येक वस्तु के पीछे एक सम्बन्धित चैतन्य होता है। जब हम देव–ऋण की बात कर रहे थे तभी वायु, तेज, जल, पृथ्वी, आकाश के बारे में बताया कि ये देव है। भूत–ऋण के प्रसग मे पृथ्वी, जल, अग्नि आदि को जड के रूप मे भी देख सकते हैं। उनके प्रति हमारा एक दाय है। प्रत्येक वस्तु के प्रति कुछ–न–कुछ दाय बनता है। वस्तुओ का मेरे जीवन में कुछ योगदान है।

रामकृष्ण परमहस का एक शिष्य कमरे में झाड़ू लगा रहा था। सफाई का काम पूरा हुआ तो उसने झाड़ू को कोने में फेक दिया। उसी समय ठाकुर ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होने शिष्य को झाड़ू फेकते हुए देख लिया। तुरन्त उसको बुला करके डॉटा और कहा कि झाड़ू को उठाओ, इससे माफी माँगो, इससे क्षमा माँगो, नमस्कार करो और इसको यथास्थान रखो।

वस्तु का भी एक व्यक्तित्व है। हम जिन–जिन वस्तुओं से व्यवहार करते हैं उनका हमारे ऊपर ऋण है। जल पीया और बचे हुये जल को उठा करके फेक दिया—यह उचित नही है। छोटे–से–छोटे व्यवहार में भी एक आदर की और एक समुचित उपयोग की भावना होनी चाहिये। आप थोडा–थोड़ा करके, बूँद–बूँद जल की रक्षा करो। आज के वैज्ञानिक आशंकित हैं कि तीसरा विश्वयुद्ध शुद्ध जल के लिये होगा। अब तो बडे–बडे शहरों मे आक्सीजन क्लब भी हो गये है। शाम को जाओ उस क्लब में और थोडी–सी आक्सीजन फेफडों मे भरकर आ जाओ। आज चारो तरफ प्रदूषण बढता जा रहा है। हम भूत–ऋण के अन्तर्गत इस पर भी विचार कर सकते हैं। इन पंचमहाभूतो के अलावा जितने भी प्राणी है, वे भी हमारे जीवन को चलाने में एक बहुत बडा सहयोग देते हैं। हम चाहे जलचरों को ले लें, चाहे नभचरों को ले ले, चाहे पृथ्वी पर रहने वालों को ले ले, चाहे पशुओं को, चौपायो को, रेंगने वालो को ले लें, चाहे बिलो मे रहने वालों को ले लें, जो छोटे–छोटे कीट है, पतंग है, चाहे उन सबको ले लें—इन सबका हमारे जीवन को चलाने मे एक सहयोग है। अगर हमको ऐसे ग्रह पर ले जाकर छोड दिया जाय जहाँ पर हमारे लिये खाने–पीने की

सब सुविधाएँ हों, पर वहाँ पर कोई भी दूसरा प्राणी नहीं हो, तब हमें पता नहीं क्या हो जायेगा। पता नहीं हम वहाँ जिन्दा रहेंगे अथवा मर जायेंगे! हमारा मन भी वहाँ पर लगेगा कि नहीं। जितना-जितना हमारा इन प्राणियों के साथ मे व्यवहार होता है—आदर का, प्रेम का, उतना-उतना हमारे जीवन मे एक रस आता है, एक समृद्धि आती है। हमारी देव-उपासना के प्रसंग में हम प्रत्येक देव और उसके वाहन पर विचार करें।

शिव का वाहन वृषभ है। देवी का वाहन सिंह है। कार्तिकेयजी का वाहन मोर और साथ मे मुर्गा भी उनसे जुडा हुआ है। गणेशजी का वाहन मूषक। क्यों भई! गणेशजी चूहे पर बैठेंगे तो बेचारे चूहे की क्या हालत होगी! भैरवजी का वाहन कुत्ता है। इन्द्र का वाहन ऐरावत है। अग्नि का वाहन मेष है। विष्णु का वाहन गरुड है। लक्ष्मी का वाहन उल्लू है। कुबेर का वाहन मनुष्य है। गंगा का वाहन मकर है। इस प्रकार से सभी देवताओं का अपना एक वाहन है। तो क्या किसी ने ऐसे ही मनगढन्त कल्पना कर ली कि ये इनके वाहन हैं या इनके पीछे भी कोई प्रमाण है? हाँ, इनके पीछे भी हमारे शास्त्र का प्रमाण है—कपोलकल्पना नहीं है। जिस कॉस्मिक माइण्ड ने सारे विश्व को प्रोजेक्ट किया, ये सारी आकृतियाँ, ये सारे प्राणी जिसने बनाये वह देव-तत्त्व अपना कोई वाहन चुन ले तो उसमें फर्क क्या पडता है, त्रुटि क्या है? यह मनुष्य की कल्पना नहीं है। ये दिव्य रूप हैं, इनके दिव्य वाहन हैं। इनको हम प्रतीक मात्र भी नहीं कह सकते। अनेक सन्तों ने दर्शन किया है वृष-वाहन भगवान् शिव का। अभी मै यह कहना चाह रहा था कि प्राणी जगत् का देव-तत्त्व के साथ एक सम्बन्ध है। सारे ग्रहो, नक्षत्रो का, प्राणियों का, वनस्पतियों का परस्पर एक सम्बन्ध है।

आज आपके संस्थान की एक शाखा 'नारडेप' गये थे। वहाँ राशियों और उनसे सम्बन्धित पौधों का प्रदर्शन देखा। हमारी स्वयं की अपनी एक राशि है। पौधे और जो ग्रह-नक्षत्र है इनका आपस मे सम्बन्ध है—यह ऋषियों को पता था। हम पुरातन काल में जाकर देखे तो पाएँगे कि एक ऋषि-परिवार प्रकृति के साथ एकमेक होकर रह रहा है। कितना तादात्म्य, कितना आदान-प्रदान, कितना आदर, स्नेह! इन सबको लेकर वह रह रहा है। इसको समझना पड़ेगा भूत-ऋण के अन्तर्गत। इसको जब

हमने समझा नहीं और इनका प्रत्येक का अलग-अलग एक स्थान है—इसको समझा नहीं तो जीवन-सूत्र और जीवन-वसन छिन्न-भिन्न हो गया। उसके अन्दर जगह-जगह छेद हो गये, इसके तन्तु इधर-उधर विखर गये।

अव हम विचार करके देखें कि ये गिद्ध क्यों मर रहे हैं? आज गिद्ध दिखाई नहीं देते। कहते हैं कि कौए भी कम होते जा रहे हैं और कबूतर भी कम और चिड़िया भी कम और भौंरों की गुजार, वह भी आजकल कम सुनाई दे रही है। इन सवका कारण क्या है? हमारे जीवन में जो भारतीय-दृष्टि है वह लुप्त हो गयी है। हमने ऐसे-ऐसे विषो का प्रयोग करना शुरु कर दिया कि अन्न, पेड, पौधे-सारे विषमय हो गये हैं। और उनको खाने वाले जो पशु-पक्षी हैं उनके अन्दर भी वह विष पहुँच गया है। इसलिये एक निरन्तर ह्रास हो रहा है। विषमय अन्न खाकर कोई गिद्ध, कोई चिडिया कैसे प्रसन्न व स्वस्थ रहेगी! इन सबका प्रभाव मनुष्य के ऊपर पड़ेगा। मैं तो यह वताना चाहता हूँ हमारे यहॉ पंचमहाभूतों में भी जब प्रदूषण आता है, वे जब विषमय होते हैं तो उसका असर हमारे शरीर पर पडेगा, उसका असर हमारी इन्द्रियों पर पडेगा, उसका असर हमारे मन पर पडेगा। आपने वह चार्ट देखा होगा जो आपको दिया गया है। किस प्रकार से एक अव्यक्त अवस्था से एक महत् तत्त्व, फिर एक अहंकार, फिर पंच-तन्मात्राएँ प्रकट हुई। शब्दो से घबराना नहीं। हमारे अन्दर पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, उनसे अनुभव मे आ रहे है—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध। तो हमारा विश्लेषण सुपर वैज्ञानिक है और वह एक तात्पर्य की तरफ जा रहा है। और उसका तात्पर्य है आत्मपूर्णता की अनुभूति।

सब्जेक्ट-ऑब्जेक्ट का, अहं-इदं का भेद बना रहे व जगत् का विश्लेषण हो—ऐसा नहीं है। अनुभव को लेकर जगत्-विश्लेषण किया है। एक अव्यक्त अवस्था का अनुभव हमें प्रतिदिन होता है। प्रत्येक वस्तु पैदा होती है, स्थिर होती है, लीन हो जाती है। तो एक महान् अव्यक्त तत्त्व और उसमें एक महत् तत्त्व, उसमे से एक अहंकार, उससे पंचतन्मात्राएँ और इस प्रकार से सारी सृष्टि प्रकट होती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध—ये पंचतन्मात्राएँ है। पंचमहाभूतों के सूक्ष्म रूप को पंचतन्मात्रा कहते है। इन पंचतन्मात्राओं से हमारी पॉच ज्ञानेन्द्रियाँ निकली हुई है। शब्द-

तन्मात्रा से श्रोत्र इन्द्रिय, स्पर्श-तन्मात्रा से त्वगेन्द्रिय, रूप-तन्मात्रा से नेत्र इन्द्रिय, रस-तन्मात्रा से जिह्वा और गंध-तन्मात्रा से घ्राण इन्द्रिय निकली हुई है। तो पॉच ज्ञानेन्द्रियॉ इन पंचतन्मात्राओ से निर्मित हैं। पाँच तन्मात्राओं के सत्त्वाश को अलग-अलग ले लेने से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ। पाँचों तन्मात्राओ के सत्त्वाश को मिलाने पर हमारा पूरा अन्तःकरण बनता है। अब आप विचार करके देखिये, ये जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध अर्थात् यह जो आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये जब प्रदूषित होते हैं तब पॉचो इन्द्रियो में विकार उत्पन्न होता है। जल प्रदूषित होगा तो आपकी रसनेन्द्रिय मे विकार आयेगा और आपकी रसनेन्द्रिय मे विकार आयेगा तो आपके चित्त मे विकार आयेगा क्योकि मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार—यह बताया। तो चित्त किससे बना है? चित्त रस-तन्मात्रा से उत्पन्न हुआ है, और रस-तन्मात्रा से ही रसनेन्द्रिय उत्पन्न हो रही है। रस-तन्मात्रा के रजोगुण से आपकी प्रजनन की इन्द्रिय उत्पन्न हो रही है। तो प्रजनन की प्रकिया मे दोष, रचना मे दोष और फिर आपके चित्त में दोष—ये तीनों—ज्ञानेन्द्रियॉ, कर्मेन्द्रियॉ और अन्तःकरण। ये तीनो के तीनो पचतन्मात्राओ से उत्पन्न हुए हैं। इन महाभूतों मे जब प्रदूषण होता है तो हमारी कर्मेन्द्रियो में दोष आता है, हमारी ज्ञानेन्द्रियो में दोष आता है और हमारे अन्तःकरण में एक विकार उत्पन्न हो जाता है।

इतना गहन विचार है हमारे शास्त्रो मे। जब हम पंचभूतों के ऋण का विचार करते है तो हमारे ये पाँच तत्त्व और सारा-का-सारा प्राणी जगत् इसमें आ जाते है। प्राणी जगत् के बारे मे आपको बता रहा था कि किस प्रकार से ये हमारे जीवन से जुडे हुए हैं। प्रत्येक प्राणी का इस सृष्टि की सरचना मे एक रोल है, उसका एक स्थान है। आप अच्छी तरह से समझ लेना। हमारे ऋषियो को यह पता था कि मानव जीवन के चलने मे और मानव जीवन के उन्नत होने में एक प्राणी-विशेष की, एक जीवन- विशेष की सन्निकटता की अधिक आवश्यकता थी। और दूसरे जीवन- विशेष की एक दूरी आवश्यक थी।

मै एक बार हृषीकेश के एक मन्दिर में गया था तो पुजारीजी ने कहा—महाराज, यहॉ ध्यान रखना। जब कोई महात्मा यहाँ आते हैं तो मुझे डर लगता है। मैने कहा—डर क्यो लगता है? पुजारी ने बताया कि

सन्तो को कुछ पता नही चलता, जो निर्देश देते है उनका पालन नही करते। मैने पूछा—बात क्या है? पुजारी ने बताया—यहाँ जोक बहुत ज्यादा है और जोंक जब चिपक जाती है तब पता भी नहीं लगता और खून चूस लेती है। एक महात्माजी आये थे। उनको जब बताया कि यहाँ जोंक बहुत ज्यादा हैं तो उन्होंने इस की अनुसनी कर दी और वे ध्यान करने के लिये बैठे तो जोक आयी और खून पीना शुरु किया। उन्होंने देखा—जोक आ गयी हैं, एक आयी, दो आयी, तीन आयी, दस आयी और वे देखते रहे और ध्यान करते रहे और वे खून चूसती रहीं और मोटी होती रहीं। सुबह महात्माजी की लाश पडी हुई थी। महात्माजी ने जोंकों को हटाया नहीं तो खुद भी संसार से हट गये। इसलिये मै आपको बता रहा हूँ। यह आवश्यक नहीं कि जोंक हमारे जीवन के साथ-साथ चले। उससे थोडा एक अन्तर बना हुआ रहना चाहिये। इसका मतलब यह नहीं कि सारी जोंक जो दिखाई दे, उनको पकड कर मारो। ये जो मच्छर है, खटमल हैं, जूँ हैं—ये इस विश्वजीवन के अंग हैं। पर हमारे मनुष्य-जीवन के लिये ये वांछनीय नहीं है। सीधे बिल्कुल हमारे निकट में आकर रहें तो वे हमारे लिये वांछनीय नहीं हैं। इसलिये हमारे ऋषियों ने ऐसी प्रक्रिया को निकाला जिससे इनकी एक दूरी बनी रहे। इनको खत्म भी नहीं किया। इनकी एक दूरी बनी रहे।

यहाँ तक कि असुरों को भी कहा—यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुं इच्छथः (श्रीदुर्गासप्तशती 8.26)।

देवी कहती है राक्षसों को—यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो पाताल मे चले जाओ।

ये तमोगुणी, रजोगुणी प्राणी, जो हमारे जीवन पर सीधा आक्रमण करते है, उनसे जीवन को खतरा है। उनका क्या करते है? एक यज्ञमय प्रक्रिया के द्वारा उनको दूर रखते हैं, नियन्त्रण में रखते हैं। चाहे वे हिंसक पशु हो, चाहे वे हमारी फसलो को नुकसान करने वाले कीटाणु हों या फिर हमारे ऊपर सीधा आक्रमण करने वाले जीवाणु हो—ये मच्छर, ये खटमल, ये जूँ आदि। इन सबको हमसे दूर रखने की और इनके ऊपर अंकुश रखने की, नियंत्रण में रखने की हमारे यहाँ पर एक यज्ञीय प्रक्रिया थी। क्योंकि विश्व के चक्र में एक प्रक्रिया को हमारे ऋषियों ने देखा कि

इस प्रक्रिया के द्वारा ये अंकुश में रहते हैं। ये नियंत्रण में रहते हैं। ये सीमा के अन्दर रहते है। अब वैज्ञानिक उसी प्रक्रिया को थोडा-थोडा समझ रहे हैं। हमारे बायोस्फीयर में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। प्राणी जगत् के केन्द्र के रूप में, या महत्त्वपूर्ण प्राणी के रूप में हमारे ऋषियों ने पाया—यह गौ-माता है। ऋषियो ने पता लगाया कि यह जो गौमाता है, यह हमारे इस जीवन-चक्र के केन्द्र में है। आपने पुराणों में सुना होगा कि जब कभी पृथ्वी के ऊपर राक्षसो का—असुरों का कोप बढ जाता था, उनका अत्याचार बढ जाता था तो पृथ्वी गाय का रूप लेकर विष्णु के पास जाती थी। वह भैंस का रूप लेकर क्यो नहीं जाती या यों ही क्यों नहीं चली जाती थी, या आदमी के रूप में क्यो नही चली जाती थी? नहीं। गौ के रूप में जाती थी। वैसे 'गौ' शब्द के अर्थ वेदवाणी, वाणी, इन्द्रिय, पृथ्वी और गाय हैं। गौ शब्द के कई अर्थ हैं। तो यह पृथ्वी जाती थी। पृथ्वी जाकर प्रार्थना करती थी कि राक्षस मेरे ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। तब विश्वपालनकर्ता भगवान् विष्णु अवतार लेकर असुरों का सहार करते है।

गौ एक मिनी बायोस्फीयर है। बायोनिक्स नाम से विज्ञान की एक शाखा सारे प्राणियों का अध्ययन कर रही है कि इन प्राणियों का और इस पर्यावरण का आपस में क्या सम्बन्ध है—इसका उन्होंने पता लगाया। कबूतर को सबसे पहले पता लगता है कि जल प्रदूषित हो गया है। दिल्ली मे वैज्ञानिको को पता लगा कि एक फैक्ट्री में पहले कबूतर आते थे और पानी पीकर चले जाते थे। कुछ समय बाद उन्होंने देखा कि कबूतर आये, उन्होंने पानी को देखा, सूँघा और उडकर चले गये। उन्होंने खोज की और पाया कि यह पानी प्रदूषित हो गया है। तो इस प्रकार से बायोनिक्स के अन्तर्गत वैज्ञानिक प्राणियो का अध्ययन कर रहे हैं। वह चाहे टिड्डी हो, चाहे मछली हो, चाहे भौरा हो—सबका अपना-अपना रोल है। हमारे परिवेश मे जो परिवर्तन होता है उसको ये प्राणी अनुभव कर लेते है। पता लगा लेते हैं। भूकम्प आता है तो आपने देखा होगा कि सारे प्राणियो में किस प्रकार हलचल मच जाती है। उनको पता लग जाता है। इसी प्रकार से वर्षा आने वाली है तो चीटी रानी क्या करती है? अपने अण्डो को लेकर सुरक्षित जगहों पर जाना शुरू होती है। अधिक वर्षा होने वाली है तो टिटहरी को बहुत पहले पता लग जाता है। टिटहरी सामान्यतः तालाब के

किनारे कुछ ककर इकट्ठे करके अण्डे देती है। टिटहरी, जिसे सस्कृत में टिट्टिभ कहते हैं, जब अधिक वर्षा होने वाली होती है तो तालाब के किनारे अण्डे नही देती, तब वह पहाडी के ऊपर अण्डे देती है। उसे पहले से पता लग जाता है कि अधिक वर्षा होने वाली है। हमारे ऋषियो को प्राणियों के स्वभाव का वहुत अच्छा ज्ञान था। वे उनसे संवाद करते थे।

टिट्टिभ की बात आ गयी तो मैं एक घटना बता देता हूं। चरक नामक एक महर्षि थे। तालाब के किनारे टहल रहे थे। जो जिस विद्या मे प्रविष्ट होना चाहता है वह उसके अन्दर डूबा हुआ रहता है। आज भी हमारे श्रेष्ठ वैज्ञानिक, जैसे न्यूक्लियर फिजिसिस्ट फ्रिट्जोफ केपरा आदि हैं, वे अपने-अपने विषयों के चिन्तन में डूबे हुए रहते हैं। हम भी जब कोई कार्यक्षेत्र को चुन ले, तो हमें क्या रहना चाहिये? उसके अन्दर डूबे हुए रहना चाहिये। रात-दिन उसी का चिन्तन चलना चाहिये। तभी तो उसकी गहराई में जा पाते हैं। उसमें आगे बढ पाते हैं। तो महर्षि आयुर्वेद के ज्ञाता थे। वे औषधियों के बारे में, रोगो के बारे मे चिकित्सा व स्वास्थ्य के विषय में चिन्तन कर रहे थे। टहलते हुए चिन्तन कर रहे थे। उस समय एक टिट्टिभ बोला। पहले बच्चे लोग कई प्राणियों की, पक्षियो की आवाजों की नकल कर लिया करते थे। आप लोग क्या टिट्टिभ की आवाज निकाल सकते हैं? टिट्टिभ कोरुक्-कोरुक्-कोरुक् इस प्रकार बोलता है। संस्कृत मे कोरुक् का सन्धि विच्छेद करें तो होगा—कः अरुक्। इसका अर्थ होता है—कौन रुग्ण नहीं? चरक महर्षि को लगा कि यह मुझसे पूछ रहा है—कौन बीमार नहीं है? कौन बीमार नही है? उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—'हित-मित-ऋत-भुक्, हित-मित-ऋत-भुक्, हित-मित-ऋत-भुक्। पक्षी पूछ रहा है—कोरुक्-कोरुक्-कोरुक् और महर्षि कह रहे हैं—हित-मित-ऋत-भुक्। जो हितभोजन करता है, जो मितभोजन करता है, जो ऋतभोजन करता है—वह बीमार नहीं है। सारा आयुर्वेद का सार निकालकर रख दिया। स्वस्थ रहने का रहस्य बता दिया।

ये प्राणी हमारे जीवन के अंग हैं। इन प्राणियो का कितना ऋण हमारे ऊपर है! एक-एक प्राणी को आप ले और मानव सभ्यता की जीवन-यात्रा को लेकर आप विचार करें तो कुछ पता लगेगा कि इनका कितना ऋण मानव पर है। एक हाथी को ले। कितना बुद्धिमान प्राणी है वह! यहाँ

तक कि हमारे शिव भगवान् ने भी जब गौरी–पुत्र का शिरोच्छेद कर दिया तो हाथी का ही सिर लगाया उनके। कह दो ये गपोडे हैं! जो बच्चे कॉन्वेण्ट स्कूल मे जाते है वे यही कहेगे। माउण्ट आबू में हमारे आश्रम में भी कुछ बच्चे आते थे। एक दिन एक बच्चा उदास होकर आया। मैंने पूछा—क्या बात हो गयी? उसने बताया कक्षा में फादर ने कहा—ये हिन्दू लोग भी कैसे है—हाथी का सिर लगाये हुए, पेट फूला हुआ है—ऐसे को भगवान् कहते हैं और उसकी पूजा करते है! वह बालक तो प्रतिदिन गणेशजी को प्रणाम करता था। गणेशचतुर्थी मनाता था। फादर की बात से उस बालक के हृदय पर कैसी चोट पहुँची! हममें से भी कई सोचते होंगे कि किसी ने ऐसे ही कल्पना करली होगी। कल्पना नहीं है यह। अधिदेव, अध्यात्म, अधिभूत—इन स्तरो पर हमें गणेश की जन्मकथा और उनके व्यक्तित्व को समझना चाहिये। ऋषियो ने दर्शन किया था गणेश का।

हाथी एक बुद्धिमान प्राणी है। कितने युद्धों मे इसने हमें विजय दिलायी। इस प्रकार हाथी हमारे जीवन का, सभ्यता का अंग है। अब इसको हटाकर बडे–बडे बुलडोजर और बडे–बडे ट्रक लाकर रख दो तो धीरे–धीरे हम आसुरी, शैतानी, राक्षसी सभ्यता की ओर जा रहे हैं, जिसके लिये गॉधीजी ने कहा—मै अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध तो लड ही रहा हूँ उससे ज्यादा तो शैतानी सभ्यता, जो हमें दबाए जा रही है, उसके विरुद्ध लडाई कर रहा हूँ। इस प्रकार हाथी का कैसा भव्य व्यक्तित्व है! उसको देखने से मन में भव्यता आती है।

केरल के एक आश्रम में एक पालतू हाथी की कथा बतायी थी वहाँ के ब्रह्मचारी ने। हाथी सडक पर जा रहा था, चलते समय जब स्कूल के छोटे–छोटे बच्चो को सामने से आता हुआ देखता था तो बच्चे कहीं उससे डर न जाएँ, इसलिये सडक के किनारे जाकर मुँह मोडकर खडा हो जाता था। जब बच्चे चले जाते थे तब पुनः वह सडक पर आ जाता था। कितना बुद्धिमान होता है हाथी! वैसे पालतू पशुओ मे चाहे हाथी हो, घोडा हो, वृषभ हो, गधा हो, चाहे बकरी हो—सबके साथ एक स्नेहमय रिश्ता बन जाता है। इस पर विचार करना।

कितने अश्वो की कहानियाँ हैं। महाराणा प्रताप के चेतक का नाम आप सब ने सुना होगा। मेरे एक परिचित कर्नल रहे थे। उनके परिवार का

एक व्यक्ति किसी गाँव में घोडे को खरीदने के लिये गया। वह कई दिनों के बाद लौटा। उससे पूछा भाई! तूने इतने दिन कैसे लगाये? तो उसने बताया—'घोडा बहुत ही चचल और बहुत ही तेजस्वी था। इसलिये वह अपने ऊपर हाथ रखने ही नहीं देता था। मैंने उसकी रोज सेवा करनी शुरू की। मैंने उसको उसका खाद्य पदार्थ देना शुरू किया। फिर उसको पानी देना शुरू किया। मैंने अपनी कमीज पानी के अन्दर धो करके उस पानी को उसे पिलाना शुरू किया तो वह मेरी गन्ध से परिचित होने लगा। फिर धीरे-धीरे पास मे जाकर उसके ऊपर हाथ फेरना शुरू किया। धीरे-धीरे उसके साथ में एक मित्रता हो गई।

गाय को लेकर बात की थी। हमारी सारी अर्थ-व्यवस्था, हमारी सारी कृषि-व्यवस्था और हमारी उपासना में गाय का कितना बडा स्थान है! पहले ही बता चुका हूँ—पचगव्य के बिना हमारा यज्ञ सफल नहीं हो सकता। यह सारी सृष्टि त्रिगुणात्मक है। गाय और भैंस के दूध मे बहुत अन्तर है। गाय का दूध सात्त्विक होता है। भैंस का दूध तमोगुणी दूध होता है। हमारे यहाँ श्रीहर्ष नाम से बहुत ही उत्कृष्ट विद्वान हुए। अपनी युवावस्था में जब वे अपनी रचनाएँ करते थे, दूसरे विद्वानो को समझ में ही नहीं आती थी। उनके पिता ने उन्हें एक माह तक भैंस के दही का सेवन करवाया, भैंस के दूध को जमाकर और साथ में उडद भी खिलाया। उडद एवं भैंस के दही का सेवन करवाया और उसके बाद उन्होंने जो रचनाएँ कीं, उनका स्तर थोडा कम हुआ, और इसलिये अन्य विद्वान भी उन रचनाओं को समझ कर उनका आदर करने लगे।

गाय को माँ कहा। वास्तव में यह माँ है। केवल कहने-भर को माँ नहीं कह दिया। गाय का दूध और माँ का दूध—इनमें बहुत साम्य है। आप इसका केवल रासायनिक विश्लेषण करके पता नहीं लगा सकते। वैज्ञानिको को कुछ ही तत्त्वों का पता है। कुछ ही तत्त्वों का रासायनिक विश्लेषण कर पता कर सकते हैं। अतः जो निरन्तर गाय के दूध का सेवन करते हैं वे मानो अपनी माँ के दूध का ही सेवन करते हैं। इसलिये गाय को माता कहा, इसके पीछे एक गहन अतिमानसिक एवं वैज्ञानिक तत्त्व छिपा हुआ है।

क्यों कहा कि गाय के शरीर में 33 कोटि देवता हैं? हमारे यहाँ कोई बात कभी एक दृष्टान्त के द्वारा, कहानी के द्वारा कह दी जाती है, उसकी

एक शैली होती है। अर्थवाद की शैली होती है। और उसके पीछे भी एक गहन तात्पर्य छिपा हुआ रहता है। तो मैने कहा न 33 कोटि देवता है। यदि उनसे सम्पर्क करना हो तो आपको पंचगव्य का उपयोग करना पडेगा। आपने सुना होगा—सभी देवों को गाय में प्रविष्ट होने को कहा गया तो सभी देवता रोम-रोम में चले गये, लक्ष्मीजी शायद किसी कारण से व्यस्त हो गयी होगी, वह बाद में आयीं। मैं अब कहाँ जाऊँ इसमे! तो भगवान् ने कहा यह गोबर है, उसी में तू प्रविष्ट हो जा। गाय के गोबर मे लक्ष्मी का वास है। मैने कहा—कहीं पर तो कहानी की बात होती है और कही पर एक वास्तविक बात होती है।

हमारी धरती मर रही है—इसे वैज्ञानिक कह रहे हैं। हमारी धरती जीवन्त है। धीरे-धीरे पृथ्वी में विष डाल रहे है। परिणामस्वरूप जीवाणु धीरे-धीरे समाप्त हो गए। रासायनिक खाद डालने से केंचुए मर गये। अब केंचुओं की खेती करनी पड रही है।

आपने देखा कि गाय किस प्रकार से हमारी अर्थ-व्यवस्था, कृषि-व्यवस्था, और उपासना में अपना महत्त्व रखती है। अगर आप गाय का सूक्ष्म निरीक्षण करेंगे तो आपको पता लग जायगा कि बायोस्फीयर में कितना प्रदूषण है। अगर हम गाय का ठीक तरह से सूक्ष्मतापूर्वक निरीक्षण करेंगे तो हमको गाय मे हुए परिवर्तन का पता लगा जाएगा। उससे हम पता लगा सकते हैं कि हमारा बायोस्फीयर असंतुलित हो रहा है, विषाक्त हो रहा है, अप्रसन्न हो रहा है। हमारा बायोस्फीयर एक जीवित प्राणी है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रिजोफ केपरा ने अपनी पुस्तक 'टर्निंग प्वाइण्ट' मे दो वैज्ञानिकों जेम्स लवलोक व मार्ग्युलिस द्वारा प्रतिपादित 'गैअ' हाइपोथेसिस का उल्लेख किया है। इन दो वैज्ञानिको ने आधुनिकतम उपकरणो का प्रयोग करके बायोस्फीयर का अध्ययन किया और निष्कर्ष निकाला कि हमारा बायोस्फीयर एक जीवित प्राणी की तरह व्यवहार कर रहा है। अपनी इस हाइपोथेसिस (परिकल्पना) का नाम उन्होंने 'गैअ' रखा। ग्रीक माइथोलोजी में पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी को 'गैअ' कहते हैं। सम्भवतः यह 'गैअ' शब्द गौ का ही अपभ्रंश है।

तो अभी मैं बता रहा था कि सारे प्राणियों का हमारे साथ सम्बन्ध

है। ऊँट, साँड, गाय, भैस हो, चाहे गधा व खच्चर—सभी हमारे जीवन के अग हैं। अगर ये खच्चर नही होते तो पहाडों पर सैनिको का सामान ले जाना सम्भव नही होता। भाखडा बॉध नहीं बनता, यदि ये गधे नहीं होते तो। अगर ये यूनियन बनाकर यह निश्चय कर ले कि मनुष्य नामक प्राणी का सहयोग नहीं करेंगे, तो हमारा जीना ही सम्भव नहीं हो सकता। इस प्रकार सारे प्राणियों का आपको विचार करना पडेगा।

उस परमेश्वर ने मनुष्य को बनाया। सारे प्राणियो को बनाया। आप पहले इस बात को अच्छी तरह लिखकर रख लेना कि परमेश्वर ने इन प्राणियों की रचना की। दूसरी बात कहूँ कि परमेश्वर इन प्राणियो के रूप मे घूम रहा है। दोनों बाते हैं। इसे सोपानदृष्ट्या समझना पडेगा। पहला स्तर कौन-सा होगा? परमेश्वर ने इनकी रचना की। और दूसरा श्रेष्ठ उन्नत स्तर आयेगा जब आपको लगेगा कि परमेश्वर इन प्राणियो के रूप मे बोल रहा है। पेडो के रूप में, पहाडों के रूप मे, नदियों के रूप में, प्राणियों के रूप मे परमेश्वर ही लीला कर रहा है। यह हमको कब अनुभव होगा? जब हमारे चित्त से कामना का मैल धुल जाएगा, अहंकार शनैः-शनैः करके अत्यन्त ही विनम्र बन जाएगा, तब आपको लगेगा—अरे! यह प्रभु तो पहाडों के सन्नाटों में, झरनो की कल-कल में, चिडियों की चहचहाहट में है। दोनो स्तरो को स्वीकार कर लेना—समझ लेना। यदि हमारे साहित्य को देखो तो इन ग्रन्थों में पक्षियो का, मृगो का, प्राणियों, लताओं का प्रचुर उल्लेख हुआ है। अगर सबके अन्दर से इस उल्लेख को हटा दें, तो हमारे साहित्य की जो रसमयता है, वह रहेगी ही नहीं।

भगवान् शंकराचार्यजी ने शिवानन्द लहरी में शिव की उपमा मोर से दी और लिखा है—मोर नीलकंठ है, यह ओकार की ध्वनि निकालता है, यह काली घटा को देख कर नृत्य करता है, उपवन में विहार करता है। काली घटा पहाडों से आती है। पार्वती भी पर्वत-पुत्री है। शिव भी नीलकण्ठ है, ओंकार स्वरूप है, पार्वती को देखकर नृत्य करते हैं। अतः सारे साहित्य को रसमय, कलामय बनाने वाले ये पेड-पौधे, पशु-पक्षी है। महाकवि कालिदास के मेघदूत मे से मेघ को निकाल दें तो क्या बचेगा? राजस्थानी का एक लोकगीत है—

उड़-उड रे म्हारा काळा रे कागला
जद म्हारा पिउजी घर आसी

तो विरहिणी पत्नी प्रार्थना कर रही है—उड-उड रे म्हारा काळा रे कागला। राजस्थान में ऐसा मानते हैं कि घर के ऊपर बैठे हुए कौओं से यदि कहे कि उड जा और वह उड जाये तो समझ लो—जिसकी प्रतीक्षा कर रहे है, लौट आएगा। विरहिणी पत्नी कहती है—कौवे! तू उड जायेगा तो तेरी चोंच मै सोने से मँढवा दूँगी। उसी प्रकार से कुरजाँ एक पक्षी होता है। कहते हैं वह साइबेरिया से आता है, उसकी आवाज में विरह की पीडा होती है। एकान्त मे सुनो तो चित्त मे एक टीस जैसी उठती है। मानो वह कोई एक विरहिणी हो। अनेक लोकगीतो में उल्लेख किया गया है इस कुरजाँ का। विज्ञान के अन्दर देखो। कहते है राइट ब्रदर्स ने पक्षियो को देखा—ये कैसे उडते है। आपके सारे कराटे-जूडो की प्रेरणा बन्दर से, चीते से, बिल्लियों से मिली है। अनेक योगासनों के नाम प्राणियों के नाम पर हैं—यथा भुजंगासन, शलभासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन, मकरासन आदि।

भारतीय दृष्टि को पहचानें, इसके वैशिष्ट्य को पहचानें। यह पर्यावरणीय दृष्टि है। यह आनन्दमयी दृष्टि है। पश्चिम की जो जीवन-दृष्टि है, वह भोग की दृष्टि है। उस दृष्टि के पीछे बाइबिल है। उसके अनुसार यह प्रकृति राक्षसी है। यह हमारे को नष्ट करने वाली है। इसके ऊपर हम विजय को प्राप्त करे। बाइबिल में एक कथा आती है—पुरुष-स्त्री पहले नंगे थे और शैतान पेड के नीचे बैठा हुआ था। उसने उन्हें एक सेव दी—इसको खालो। गॉड के द्वारा निषिद्ध होने पर भी शैतान के बहकावे में आकर उन्होने सेव खा लिया। खाते ही इनके अन्दर लज्जा उत्पन्न हो गयी, भय उत्पन्न हो गया। अब वह प्रकृति को राक्षसी समझने लगे। आज भी वह प्रकृति को राक्षसी समझते हैं। हमको इसे जीतना है। यह हमको नष्ट कर रही है। हमने प्रकृति को क्या देखा? यह जगदम्बा है। देखो, हमारे यहाँ पर भी नाना प्रकार के दर्शन आये। इनको हमने एक स्थान दिया। चार्वाक दर्शन है—

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

किसने देखा आना–जाना, स्वर्ग–नरक। खाओ पीओ और मौज करो। ऋण लेकर घी पिओ। कम–से–कम उन्होने यह कहा—ऋण लेकर घी पिओ। यह तो नहीं कहा—तस्करी करके, मिलावट करके मौज करो। थोडी–सी शिष्टता है उनमे। तो हमारे यहाँ पर भी यह दर्शन था। हमारा मुख्य दर्शन आत्मा–ब्रह्म ऐक्य का दर्शन, अद्वैत का दर्शन है। इसलिये जो प्रकृति को जड मानता है वह प्रकृति से बचने की कोशिश करेगा। हमारे सांख्य दर्शन मे भी यह कोशिश रहती है। पुरुष प्रकृति से अपने–आप को अलग कर ले। अभी पुरुप प्रकृति मे उलझा हुआ है। उससे अपने–आप को अलग कर ले तो वह मुक्त हो जाएगा।

अद्वैत दर्शन ने प्रकृति को माँ के रूप मे देखा है। आदर की दृष्टि से, वरेण्य रूप से देखा। इससे सारी जीवन–शैली, जीवन जीने की प्रक्रिया में एक महान् अन्तर आ जाता है। यह दर्शन हमारी भारतीय संस्कृति की—वैदिक सनातन धर्म की आत्मा है। हम प्रकृति को किस दृष्टि से देखते हैं? हम जगत् को बॉधने वाली दृष्टि से नहीं देखते। जगत् को एक वरेण्य रूप से देखते है।

त्र्यंवकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बंधनान् मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात्।। —यजुर्वेद

यह जगत् तो एक ऐसी बेल के समान है जिसके साथ हम जुडे हुए है। हम उर्वारुक (खरबूजा) हैं और संसार रूपी बेल के साथ जुडे हुए हैं। इससे रस ले–लेकर पक जाना है। अपने–आप छूट जाना है। महामृत्युंजय मंत्र में यह प्रार्थना की गयी।

संसार के सारे प्राणियों का विश्व–जीवन मे अपना–अपना स्थान है। क्यों शेरों को मारना शुरू कर दिया? क्यों हाथियों को मारना शुरू कर दिया? यह पश्चिम की दृष्टि–भोग की दृष्टि है। हमारे यहाँ भोग की दृष्टि नही है। हमारे यहॉ यह दृष्टि भी नही कि 'सादा जीवन उच्च विचार'। कई दफे सात्त्विक लोग बोल देते है तो मै थोडा परिष्कार करने की कोशिश करता हूँ। हमारी भारतीय संस्कृति का सार यह नहीं है कि 'सादा जीवन उच्च विचार'। एक युवा है, एक तरुणी है, एकदम रूखे–सूखे, न कोई शृंगार है, न कोई सौष्ठव उनके अन्दर आ रहा है। उसको आप अच्छा

थोडे ही समझेगे? हमारे यहाँ तो यह आदर्श है—

**शैशवेभ्यस्त विद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।**
**वार्धक्ये मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुस्त्यजाम्।।** —महाकवि कालिदास

पूरे जीवन का एक चित्र बना लिया। युवावस्था के अन्दर विषयो के साथ सम्प्रयोग होना चाहिये। यह प्रयोग करना उसको सिखाते है। इसलिये हमारे यहाँ पर श्रृंगार को लेकर, इसी प्रकार से कलाओं को लेकर एक समृद्धि आयी हमारी संस्कृति में। हमारी संस्कृति रूखी-सूखी नहीं है। 'सादा जीवन उच्च विचार' कब होना चाहिये? जब जीवन ढलने लगे। अब कोई सत्तर साल का व्यक्ति अपने बालो को काला कर रहा है, एक बुढिया लिपस्टिक लगा रही है, बन-ठन करके निकल रही है—क्या यह शोभनीय है? आपकी बहिन ने भी ऐसे ही गन्दे कपडे पहन रखे हों, तो कहेंगे कि नहीं, ढंग से कपडे पहनो। वह ज्यादा चटक-मटककर निकलेगी तब फिर डॉटेगे—यह भी कोई ढंग है! एक्टरनी जैसी बनकर निकल रही हो! समझ में आ रही है बात? एक सौष्ठवता और भव्यता, शालीनता होनी चाहिये। गृहस्थ मे विषय-प्रयोग के अनन्तर मुनिवृत्ति होनी चाहिये। तो यह भोग की दृष्टि नही है। भोग की दृष्टि माने प्रकृति को चूसना, उसका शोषण करना।

दुर्गासप्तशती के तीसरे चरित्र मे है—शुम्भ-निशुम्भ का वध। ये दोनो भाई थे। देखे शम्भु और शुम्भ में क्या फर्क है? शम्भु शिवजी को कहते है। शिवजी को शम्भु क्यो कहते है? शम् कहते हैं आनन्द को। 'भू' माने भूमि। शम्भु माने—जो आनन्द की भूमि है, आनन्द का अधिष्ठान हैं। शम्भु में 'उ' इधर आ गया तो क्या हो गया—शुम्भ। ब्रह्म ही तो जीव बना हुआ है न? 'उ' माने वितर्क आ गया, कुतर्क आ गया। वितर्क हो गया। उलट गया। विमुख हो गया तो शुम्भ बन गया। शुम्भ है तो फिर निशुम्भ होगा ही। 'नि' लगा दिया अर्थात् निश्चित ही। अहंता और ममता—ये शुम्भ-निःशुम्भ है। इनके चण्ड-मुण्ड नामक दूतों ने देखा—पहाडी के ऊपर एक सुन्दर स्त्री बैठी हुई है। आकर शुम्भ को कहा—सुन्दर स्त्री आपके लायक है। शुम्भ ने सुग्रीव नामक दूत को भेजा और संदेश दिलवाया—हमने सारे देवताओं के सुन्दर-सुन्दर रत्नो को छीन लिया। हम सुन्दर-सुन्दर चीजों का भोग करने वाले हैं, इसलिये

हमारे पास आ जाओ। हम दोनो में से किसी एक को पसन्द कर लो, विवाह कर लो। देवी भगवती खुद बैठी हुई थी वहाँ पर। उसने कहा 'ठीक है, मैंने बचपन में एक प्रतिज्ञा कर ली—जो मेरे को युद्ध में जीतेगा, वही मेरा पति हो सकता है।' तब फिर बडा–भारी युद्ध होता है। पहले आता है धूम्रलोचन नामक राक्षस। लोचन कहते हैं 'आँख' को। दृष्टि धुँधली है, आज हमारी दृष्टि स्पष्ट नहीं है। जीवन के प्रति दृष्टि, जगत् के प्रति दृष्टि, नारी के प्रति दृष्टि। वैदिक–सनातन धर्म की कैसी अद्‌भुत दृष्टि है—मातृवत् परदारेषु। यह कैसी अद्‌भुत दृष्टि है! अपनी पत्नी के अलावा संसार की सभी स्त्रियाँ देवी का रूप है।

जगदम्बा के लिये कहा है—

**विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः**

**स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।** —श्री दुर्गासप्तशती 116॥

सभी विद्याएँ व सभी स्त्रियाँ देवी–रूप है।

अद्‌भुत है ब्रह्म–शक्ति। उसकी खुद की निजता स्त्री रूप में प्रकट हुई। ऐसी अद्‌भुत आकृति धारण की जगदम्बा ने। जगदम्बा को पुरुष या स्त्री रूप नही कह सकते, फिर भी उसने स्त्री आकृति को पैदा किया है। आत्मा के अन्दर स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व नहीं होता। साधक उसी देवी से प्रार्थना करता है—भगवती मुझे मनोरमा पत्नी दे जो मुझे ससार–सागर से तार देवे। तो नारी मात्र के प्रति एक आदर–दृष्टि है, स्त्री को देखने की एक मातृ–दृष्टि है। यह वैदिक सनातन धर्म की, भारतीय संस्कृति की विशेषता है। नवरात्रि आती है। नवरात्रि का अनुष्ठान पूरा होता है तब कन्या–पूजन करते हैं, नौ कन्याओं का पूजन करते हैं। यह है प्रकृति को देखने की एक दृष्टि, जगत् को देखने की एक दृष्टि। यह पूज्य दृष्टि है, वरेण्य दृष्टि है, भोग की दृष्टि नहीं है।

हम साधारणतः इन शब्दों को काम में नही लेते—पार्टिसिपेटिरी युनिवर्स। वैज्ञानिक इन शब्दों का प्रयोग करते है। हमारे यहाँ शब्दो का अभाव नही है। हमारे यहाँ कहते हैं—जगत् वरेण्य है। हम शरीर की दृष्टि से कुछ और बोलेगे, जीव की दृष्टि से कुछ भिन्न बोलेंगे और आत्मा की दृष्टि से कुछ और ही बोलेंगे। जैसे–जैसे हमारी चेतना विकसित होगी, हमारी अनुभूति और अभिव्यक्ति बदलती जाएगी।

जब रामकृष्ण परमहस के पास राग-द्वेष से भरे हुए लोग बहुत आने लगे तो वे भगवती के पास जाकर रोए और कहने लगे—माँ, इन गीली लकडियो को मेरे पास मत भेजो ..इनको जलाने की प्रक्रिया में धुआँ-ही-धुआँ होता है, आँखे जलती हैं।

तो हम गीली लकडियाँ ही डाल रहे हैं। इसलिये धुआँ-ही-धुआँ है चारो तरफ। बडी-बडी योजनाएँ बन रही हैं। पर्यावरण को लेकर, विकास को लेकर, वनों को बचाने के लिये और अनाज को अधिक उत्पन्न करने के लिये, पर सभी पराई दृष्टि लेकर, सब-कुछ पराया-पराया, दूसरो की नकल करके, अपना कुछ नहीं। टूटन-टूटन बिखराव, अन्धानुकरण मूर्खतापूर्ण, लालच-लोभ से प्रेरित, इन्हीं मे फँसे हुए हमारे नेता व पंडित लोग। योजना पर योजना बना रहे हैं—शिक्षा को लेकर। हर जगह ऊटपटाँग प्रयोग कर रहे हैं। तो क्या कर रहे हैं? जीवन-यज्ञ मे उल्टा-सीधा डाल रहे है। आग जलाओ और उसके अन्दर मिर्ची डाल दो तो क्या होगा? भयकर धुआँ उठेगा। आँखें जलने लगेंगी। जब गीली लकडी व मिर्ची डालो, गन्दगी डालो तो धूम्रलोचन ही धूम्रलोचन होंगे। धूम्रलोचन माने जिनकी जीवन-दृष्टि धुँधली-धुँधली हो, अस्पष्ट हो।

धूम्रलोचन भगवती के सामने जाकर कहता है कि तेरे बाल पकड कर ले जाऊँगा। चल मेरे साथ मे। वह अपनी सेना को लेकर जाता है। भगवती उसके सामने हुंकार करती है। हुकार करते ही वह एकदम से मर जाता है। एक दफे हुंकार भर दो आप, एक बार हुंकारा भर दो, हाँ कर दो कि हम अपनी सस्कृति को बिलोग करते हैं, हम राष्ट्र की सेवा करेंगे। वैदिक सनातन धर्म को लेकर एक बार हुंकारा भर दो। अपनी बिलोंगिंग को अभिव्यक्त कर दो। हुंकारा भरने मात्र से यह धूम्रलोचन नष्ट हो जाएगा। अपने शास्त्रों के, अपनी संस्कृति के, अपनी परम्पराओं के स्वीकरण मात्र से यह धूम्रलोचन हट जायेगा।

उसके बाद मे चण्ड-मुण्ड आते है। ये राग-द्वेष हैं। चण्ड-मुण्ड को नष्ट करने के लिये देवी के अन्दर से काली प्रकट होती है—वैराग्य प्रकट होता है। चण्ड-मुण्ड का नाश करता है। उसके बाद में रक्तबीज आता है। रक्तबीज ऐसा भयंकर राक्षस है कि उसको मारो और उसकी खून की बूँद जमीन पर पडे तो वैसे का वैसा राक्षस उत्पन्न हो जाता है। उस दूसरे

राक्षस को मारो और उसका खून जमीन पर पडे तो वैसे का वैसा राक्षस। तो एक रक्तबीज से चारो तरफ अनेक रक्तबीज पैदा हो गये। तब देवी के अन्दर से मातृकाएँ निकलीं, शक्तियाँ निकलीं, देवताओं के अन्दर से शक्तियाँ निकलीं, मार-काट मची। जितना-जितना रक्तबीज को मारो उतना-उतना ही उनकी संख्या बढती गयी। सब देवता घबरा गये। तब भगवती ने काली से कहा—'विस्तीर्णं वदनं कुरु'—हे काली! तू अपने मुँह को विशाल कर ले, मै इनको मारूँगी और तुम उनके खून को जमीन पर गिरने मत देना। जीभ को लम्बा करके उनके खून को चट कर जाना। तो काली ने अपनी जीभ को लम्बा किया और भगवती ब्रह्मविद्या ने मारना शुरु किया और प्रवृद्ध वैराग्य ने अर्थात् भक्ति ने विषयो के संस्कारो को चाटना शुरु कर दिया। गीता में आया है—

**विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।**
**रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।** गीता 2/59

एक व्यक्ति यदि प्रणपूर्वक भोगों को छोड देता है, तो विषय छूट जाते हैं। पर रस जाएगा नही। जो अन्दर गहरे संस्कार पडे हुए है—कामिनी, कंचन और कीर्ति के प्रति, वे जाएँगे नहीं। वे जाएँगे कैसे? आपने तो छोड दिया। अन्दर पडा हुआ रहेगा। खूब ऊँचाई पर पहुँच जाओगे तब भी पडा हुआ रहेगा। दो कथा सुनाऊँगा बाद मे, एक तो चांगदेवजी का दृष्टान्त है। वह तो एतिहासिक घटना है। दूसरी एक सौभरी महर्षि की।

**रसवर्ज रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।**

अपने इष्ट देवता को प्रेम करना शुरू करो। इष्ट देवता से प्रेम करो, तो आप देखो कैसा अद्भुत सौंदर्य उनमें है। जो गहराई में संस्कार है, वे समाप्त होना शुरू हो जाएँगे। वासनाओ के गहरे संस्कार भक्ति के द्वारा ही जाएँगे।

भगवान् शंकराचार्यजी विरचित 'आनन्दलहरी' नामक स्तोत्र मे आया है—

*हे जगदम्बा! जिस प्रकार लोहे का टुकड़ा पारस के स्पर्श से सोना* बन जाता है। गंदी नाली गंगा के प्रवाह से मिलते ही स्वयं गंगा बन जाती है। उसी तरह नाना प्रकार के पापो से मलिन हो चुका मेरा अन्तःकरण

यदि तुम्हारे प्रेमपूर्वक प्रेम के वशीभूत तुम्हारे मे आसक्त हो गया तो मेरा मन कैसे शुद्ध नहीं होगा? वैराग्य ही भक्ति बन जाता है। याद रखे—विगत राग को भी वैराग्य कहते हैं, विशिष्ट राग को भी वैराग्य कहते है। भक्ति और ब्रह्मविद्या द्वारा रक्तबीज का नाश हुआ। उसके बाद मे भगवती स्वयं शुम्भ–निशुम्भ का नाश करती है।

हमारी बात चल रही थी कि किस प्रकार से हो हमारी जीवन की दृष्टि। जगत् के प्रति हम क्या दृष्टि रखते हैं? जगत् के प्राणियों के प्रति क्या दृष्टि रखते है? उनके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? हमारे साहित्य मे और हमारे शिल्प मे, स्थापत्य में, जगह–जगह देखो इन प्राणियों को, वनस्पतियों को कैसा आदरपूर्ण स्थान दिया हुआ है!

ह्वेल मछली को नाश करने की कोशिश की, क्योकि उसकी चर्बी से इत्र आदि बनते है। कुछ कोसमेटिक्स आदि बनते हैं। उससे क्या हुआ? समुद्र के अन्दर एक प्रकार की वनस्पति होती है, उसको वह खाती है। ह्वेलों के कम हो जाने से वह ज्यादा बढ जाएगी। उसके ज्यादा बढ जाने से, हमारे वैज्ञानिक कहते हैं, जो धरती का आक्सीजन बेलेन्स है उसमें एक अन्तर आ सकता है। ज्यादा सॉपों को मार दिया तो ज्यादा चूहे बढ गये। चूहों को मार दिया तो दूसरी कोई नई समस्या उत्पन्न हो गयी। मच्छरों को पूरा–का–पूरा मार दिया तो कोई और समस्या पैदा हो गयी। इसलिये यह जो विदेशी प्रक्रिया अपनाई जा रही है, इसको हम सही प्रक्रिया नही मानते। पहले घर–घर में अग्निहोत्र होता था। अग्निहोत्र होता था इसलिये सारे–के–सारे अवांछनीय कीटाणु, मच्छर आदि दूर चले जाते थे। ये जो डीडीटी—विषाक्त चीजो को छिड़कते हैं, मच्छरों आदि को हटाने–मारने के लिये, तो इनसे हमारे ब्रेनसेल्स को भी तो नुकसान पहुँचता होगा। जो बात मै बताना चाह रहा था वह यह है कि हमारी जीवन–दृष्टि सही रहनी चाहिये। सभी प्राणियों को लेकर आप पूरा विचार कर लेना। इनके नही रहने से हमारा जीवन शुष्क हो जाएगा। जीवन को चलाने में भी कठिनाई आयेगी और जीवन आनन्द से रहित हो जायगा। मैंने बोलने के लिये तो एक श्लोक बोल दिया—

**आहार–निद्रा–भय–मैथुनंच सामान्यमेतत् पशुभिर् नराणाम्।**
**धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।**

इसे सुनकर पशुओं को बडी नाराजगी आ जाएगी, हमको क्या समझ रखा है! केवल आहार, निद्रा, भय और कामना को लेकर ही पशु क्रिया करते हैं—ऐसा नहीं है। आप ध्यान से निरीक्षण करो। सुबह-सुबह उठकर देखो, ये पक्षी क्यों कलरव कर रहे है, किसी को बुलाने के लिये नहीं। एक पूरा पेड़ चिडियों से भरा हुआ और पूरा पेड एक ऑरकेस्ट्रा जैसा बना हुआ है। झण-झण-झण कैसे वह बज रहा है!

जगल के अन्दर जाओ, उसमें छोटे-छोटे बदर हैं, बदरों के बच्चे है, वे उछल रहे है। बंदर आपस मे खेल रहे है। भूख आदि से प्रेरित होकर दौड-भाग नही रहे है। वे आनन्द से प्रेरित है। सृष्टि के मूल में आनन्द है। इसके ऊपर मनन करना। आप उसका विश्लेषण करना। आनन्द ही वह कारण है जिसने सृष्टि को प्रकट किया। सृष्टि का उपादान-कारण 'आनन्द' है; सृष्टि का निमित्त-कारण आनन्द है; अरे! आनन्द ही तो भगवान् है, ब्रह्म है।

**आनन्दादध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।**
**आनन्देन जातानि जीवन्ति।**
**आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।।**

—तैत्तिरीय उपनिषद् 3 6

आनन्द से ही सारे-के-सारे भूत प्रकट हुए है। आनन्द मे ही सारे भूत रहते है। आनन्द में ही सारे भूत लीन हो जाते है। तब तो वह आनन्द सब जगह दिखायी देना चाहिये। सारे-के-सारे प्राणी जो उछल रहे है, गा रहे है, वे आनन्द को लेकर। आनन्द नहीं हुआ होता तो प्राणियो मे उल्लास नहीं हुआ होता। उमग नहीं होती। आपस में प्रेम का व्यवहार नही होता। वह आनन्द ही जगत् का उपादान कारण है। वह आनन्द आना चाहिये।

पहले हमारी संस्कृति जीव-जगत् से एकमेक होकर चलती थी। कुछ वर्ष पूर्व तक हमारे रहन-सहन का तरीका पर्यावरणीय था। आप लोगो ने तो नही देखा होगा। बचपन के दिनों की बात है—

**झिर-मिर झिर-मिर कुतडी बियाई है...**

कुतिया ने बच्चे दिये हैं। छोटे-छोटे बच्चे हैं। हर घर में बर्तन लेकर जाते थे—'झिर-मिर झिर-मिर कुतडी बियाई है'—ऐसा गाते हुए। एक

कुतिया ने बच्चे दिये है इसलिये हमको कुछ तेल दो, हमको कुछ आटा दो, हमको कुछ गुड दो। सब जगह से इकट्ठा करके लाते और महल्ले में से लकडियाँ इकट्ठी करके लाते, फिर उनको जलाते, हलवे को बनाते और उस कुतिया को खिलाते थे।

कैसी एक आत्मीयता थी! महल्ले के अन्दर चूहे भी निकलते-खेलते थे। अब तो कंक्रीट का जंगल हो गया। सब-कुछ रूखा-सूखा।

जब श्राद्धपक्ष होता था तब कौओं को खिलाते थे। उसी प्रकार से गुलगुले बनाते थे, पकौडी बनाते थे और चीलों को खिलाते थे। अब चील भी कम दिखाई देती है। पकौडी को उछालते थे तब वह ऊपर से लपक कर आती थी और लपककर पंजे में पकड़कर ले जाती थी। ये सारे-के-सारे क्या हैं? बच्चो का विकास होता था। इन सारे प्राणियों के साथ में कैसा एक निकट का सम्बन्ध था! इससे जीवन में एकरसता आती थी। यह जो कुत्ता है, यह जो बिल्ली है, यह जो साँप है। साँप है तो उसको पकडकर गले नहीं लगा लेना। इन सबका अपना-अपना स्थान है। इनसे उपदेश बहुत मिलता है। ज्ञान मिलता है। देखो, ये हमारे जीवन के सहचर हैं और ये निरन्तर उपदेश देते रहते हैं। दत्तात्रेयजी को उपदेश मिला था न? साँप से उपदेश मिला था। चील से उपदेश मिला था।

हमारे शिक्षा के केन्द्र कौन-कौन से हैं? बच्चा माँ के पेट मे है तब से शिक्षा मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। मैं स्कूलो मे जाता हूँ और बच्चों से पूछता हूँ तो बच्चे अपने-आप बताते है। अभिमन्यु को चक्रव्यूह को तोडने का ज्ञान कहाँ से मिला था? महाभारत सीरियल से इतना फायदा हुआ। थोडा-बहुत पढते भी हैं, सुनते भी हैं। आज जैसे संस्कारी विद्यालयों से भी यह ज्ञान मिलता है। घर में शिक्षा मिलती है। महल्ले में शिक्षा मिलती है, विद्यालय में शिक्षा मिलती है और चौथा विद्यालय हमारा पर्यावरण है, वह हमको शिक्षा देता है। पेड शिक्षा देता है। फूल शिक्षा देता है। 'फूलों से हम हँसना सीखें, मोरो से नित गाना'। और कौआ क्या सिखाता है? उसे कुछ खाने को मिला और वह अपने साथियो को बुला लेता है—इधर आओ, इधर आओ। हम तो कौए से भी गये-बीते हैं। माँ ने बच्चों को मिठाई दी और कहा—जा कमरा बन्द करके अकेला-अकेला खा ले, किसी को पता नहीं लगे। अभी बहुत-से मेहमान आये हुए हैं। किसी को पता नही लगे, चुपचाप जाकर खा ले। तो कौओ से भी गये-बीते है।

बडी प्रसिद्ध कहानी है, आपको मालूम है। यह सिर्फ कहानी नही, हकीकत है। यह हमारे जीवन मे शिक्षा देती है। पराजित होकर एक राजा जगल मे चला गया। निराश होकर, छिपकर बैठा हुआ। तीन-चार बार कोशिश कर ली, सफल नही हुआ। फिर उदास होकर बैठा हुआ था। देख रहा था कि एक चींटी बहुत बडे मरे हुए कीडे को लेकर चट्टान पर चढ रही थी। एक बार चढी, गिरी। दो बार, तीन बार, बार-बार प्रयास करके 20 बार गिरी, पर 21वीं दफे मरे कीडे को लेकर चट्टान पर चढ ही गयी। राजा उसी समय उठा और बुद्धिमत्तापूर्वक सेना का सगठन किया और जीत गया। सब शिक्षा देते हैं। पूरा पर्यावरण शिक्षा देता है।

महाभारत युद्ध की बात है। संध्या हो गयी है। भगवान् कृष्ण लहूलुहान है। सबसे पहले वे क्या करते है—रथ से घोडों को खोलते हैं और उनको स्नान करवाते हैं। हाथ फेरते हैं, पोंछते है, सेवा करते है। ये सब कृष्ण भगवान् करते हैं। कैसा अद्‌भुत उनका व्यक्तित्व है! जूठी पत्तल को उठाने वाले, सबको अपनाने वाले। पशु की सेवा करने वाले।

तो भूत-ऋण की कितनी चर्चा करें! मधुमक्खियाँ एक फूल से दूसरे फूल में संचरण कर रही हैं। कैसे जीवन उमड रहा है, उल्लसित हो रहा है आनन्द से। ये सब हमारे जीवन के अंग हैं और हमारे लिये उपयोगी है। अब क्या चीज है जो पृथ्वी हमे नही देती है! कितने रत्न, कितनी खेती, कितने खनिज—सब-कुछ पृथ्वी ही तो देती है। पर याद रखना एक बात—मनुष्य के अन्दर पौरुष प्रकट हुआ है। उसका एक कर्तृत्व प्रकट हुआ है। उसका एक रोल है सृष्टि में। हम मोक्ष पुरुषार्थ पर चिन्तन करेंगे तो एक उद्दाम कर्मठता, एक रसमयी कर्मठता आयेगी। ढिलमिल जीवन नहीं रहेगा। यदि मोक्ष को अलग, दूर करके रख दिया या किसी अवस्था-विशेष के लिये, किसी वर्ग-विशेष के लिये छोड दिया तो समझो कि अभी ज्ञात ही नहीं है कि मोक्ष किसको कहते हैं। मनुष्य में एक कर्तृत्व है। अब अहंकार को कम करना है व पौरुष को बढाना है। यह रहस्यमयी प्रक्रिया है। हमारे अन्दर से वह विश्व-पौरुष प्रकट होना शुरू हो जाय, विश्व की शक्ति हमारे अन्दर से प्रकट होना शुरू हो जाय। वह उसकी इच्छा है कि कितनी प्रकट होती है। हम, बस, अपने अहंकार को हटाते जाएँ।

पृथ्वी को मनुष्य ने कहा—हे भगवती माता! तू सब-कुछ देती है तो

सारी फसलों को अपने-आप उगा दे। हमको कुछ करना नहीं पडे। त धरती ने कहा—हाँ, मैं यह कर सकती हूँ। मै तो कर दूँगी। मनुष्य ने कहा—तू बडी दयावान है, तू तो माँ है, तू बडी करुणामयी है, दयामयी वात्सल्यमयी है। सारी फसलों को अपने-आप उगा दे। 'मैं तो उगा दूँगी पर तेरा पौरुष लज्जित हो जायेगा' धरती ने कहा।

भगवान् ने मनुष्य को एक रोल दे रखा है, एक दायित्व दे रखा है। इस प्रकार से आप भूत-ऋण का चिन्तन करेंगे तो आप देखेंगे कि कितना ऋण हमारे ऊपर इस प्राणी-जगत् का पडा हुआ है। वन औषधियो से भरे हुए है।

जंगल में शेर नष्ट हो गया तो वन का संतुलन नष्ट हो जाएगा। एक आर्च बनाते हैं तो उसके बीच मे एक की-स्टोन लगाते है। वह की-स्टोन निकालते ही वह आर्च गिर जाएगा। इस प्रकार से आर्च में जो की-स्टोन का स्थान है, वैसा ही शेर का स्थान वन में है। शेर को मार दो तो जंगल का सारा संतुलन बिगड जाएगा। शेर का अपना एक स्थान है। इस प्रकार हरेक प्राणी का एक स्थान है। और जंगल नहीं रहेगे तो शहर कैसे रहेंगे? मानव की सभ्यता आपस में जुडी हुई है। चाहे उपयोग की दृष्टि से देखो, साहित्य, कला आदि की दृष्टि से देखो—इन सारे प्राणियों का हमारे जीवन मे एक महत्त्वपूर्ण, महनीय स्थान है—ऐसा समझकर इनके प्रति प्रतिदिन कुछ करना चाहिये। भूतयज्ञ करो। हमारी बची-खुची संस्कृति में देखो, माताएँ आ रही है, चींटियों के लिये चीनी और आटा- नारियल, कभी मिठाई, कभी अनाज डाल रही है। पक्षियों के लिये दाने डाल रही है। चीटियों के लिये, पक्षियों के लिये कुछ अर्पण कर रही हैं। कुत्तों के लिये रोटी दे रही हैं। भोजन करने से पहले और कुछ नहीं कर सकती तो गौ-ग्रास निकालती है। इसको विशद रूप से, अच्छी तरह से समझते हुए वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे हम इसका क्रियान्वयन स्वय कैसे करें और दूसरो को करने की प्रेरणा कैसे दे—यह विचार करना चाहिये।

हम मे से प्रत्येक के ऊपर कई-कई गौ-हत्याएँ बैठी हुई हैं। इसलिये आगे तैयार रहो, ये भूकम्प और आऐंगे, तूफान आऐंगे। सम्भावना बता रहा हूँ। मै ऐसे कोई भविष्यवक्ता नहीं हूँ। सामने जो दिखाई दे रहा है उसी के आधार पर बोल रहा हूँ। कितने कत्लखाने चल रहे है? यह बुद्ध का देश,

गॉधी का देश, महावीर का देश—पता नहीं क्या-क्या नारे लगाते हैं! बडे-बडे फोटो लगा देते है। गॉधी के नाम पर सब-कुछ करते जा रहे हैं। और बडे-बडे कत्लखाने लगाते जा रहे हैं। कत्लखानों में जाकर आपको देखना चाहिये। उसके वीडियो कैसेट बने हुए हैं। देखें तो आप मूर्च्छित होकर गिर जाएँगे। गर्भवती गाय है, उसका क्रूरतापूर्वक गर्भपात करते हैं। गाय के ऊपर उबलता हुआ पानी डालते हैं तो ऊपर से कोमल-कोमल चमडा निकल करके आता है। उसके जूते बनते है, पर्स बनते है। कोई कोमल हृदय का हो और वह ऐसे दृश्य देखे तो बेहोश होकर गिर जाये। ऐसे हम चला रहे हैं प्रजातत्र को। हम ही तो हैं चलाने वाले। हम वोट दे रहे है। क्योकि हम वोट दे रहे है इसलिये हम किसी को दोष नही दे सकते है। हमारे ऊपर भी वह दोष जाता है। हमको उपाय मालूम है, हम करें क्या? इसलिये हम भारत राष्ट्र, भारत देश, सबकी बात कर रहे हैं, सस्कृति की बात कर रहे हैं। हम आज संविधान की, वर्तमान प्रजातंत्र की उपेक्षा करके, वैश्विक परिप्रेक्ष्य को अनदेखा करके अपना कार्य करेंगे तो बहुत बडी भूल करेंगे। हमारे हाथ-पैर में, कण्ठ में एक जकडन जैसी स्थिति आयी हुई है, उसको समझना पडेगा। हमने ही इन क्रूरकर्मियों को ताकत दे रखी है। हम हर वोट के द्वारा उनको ताकत देते हैं। संविधान को स्वीकार किया हमने। उस कानून-व्यवस्था को हमने स्वीकार किया, हमने उस प्रणाली को स्वीकार किया, और यहाँ पर कत्लखाने लगते जा रहे है। दूसरे कल-कारखाने लग रहे है उनकी तो बात ही और है। कत्लखाने लगते जा रहे है और हम बात करते हैं पर्यावरण की। पर्यावरण के भी बडे-बडे आफिस लगे हुए हैं, अरबों रुपये खर्च हो रहे है उसके लिये। पर उनके पास न कोई दृष्टि है, न कोई समझ है। हम भी ऐसे ही साधना करने वाले, पूजा-पाठ करने वाले, मंत्र-दीक्षा लिये हुए हैं।

एक युवक आकर कहता है—महाराज! मैने सोनाग्राफी से पता लगा लिया कि लडकी आ रही है, झट से नष्ट करवा दिया मैने। खुद ऐसे सामान्य ढंग से कहते है जैसे कुछ किया ही नहीं। कितना जघन्य कृत्य है यह, इसको हमने मान्यता दे दी। और दूसरे कितने अच्छे है; जो कहते हैं कि यह हमारे धर्म के विरुद्ध है, हम यह सब नही करवाते। वे न नसबंदी करवाते हैं और न भ्रूण-हत्या करवाते हैं। और ये सब कृत्य करके भी हम अपने-आप को बहुत बडे सनातनधर्मी मानते हैं। हमने इसको स्वीकार

कर लिया, कानून को बनने दिया। भ्रूण–हत्या को कानून ने स्वीकृति दे रखी है। हम कर क्या रहे हैं? ब्राह्मण लोग, अपने को आस्तिक कहने वाले खुद करवा रहे हैं ये सब। हम दो—हमारे दो! ऐसा शायद ही कोई हिन्दू घर बचा हो जहाँ भ्रूण–हत्या न हुई हो। भ्रूण–हत्या बैठी हुई है, गौ–हत्या बैठी हुई है सिर पर, तो कैसे ईश्वर की भक्ति उत्पन्न होगी? खैर! इन सब तथ्यों पर चिन्तन करना पडेगा।

कम से कम देखो तो सही कि यह संसार अपनी गति से चल रहा है। इसका एक नियम है। हम संसार के अंग है। हमारा इसमे एक रोल है। प्रत्येक व्यक्ति का एक प्रभामण्डल, प्रभावमण्डल होता है। इस दायित्व को, इस रोल को समझते हुए उस ऋण को पूर्ण करना चाहिये। पर हमारे चलाये हुए यह संसार चल नहीं रहा। मै प्रमाद, आलस्य से किसी कर्तव्य से विमुख होने की बात नहीं कह रहा। पर असलियत को आपको समझना चाहिये। असलियत को नही समझेंगे तो जीवन में निराशा आने की, अवसाद आने की सम्भावना रहती है। इसलिये इसको पूरा समझते हुए हमारा क्या दायित्व है, इसको समझते हुए, बिना उद्विग्न होते हुए; उद्विग्न होते ही हमारे द्वारा भी कुछ त्रुटि हो जाती है, उद्विग्न नही होना, अपने को स्थिर रखते हुए शास्त्र के बल को लेकर हमको क्या करना चाहिये, उसको करें। और आप सब लोग तो कर ही रहे हैं।

इस प्रकार भूत–ऋण से उऋण होने के लिये भूतयज्ञ करना चाहिये। तो भूतयज्ञ करेंगे। पॉच महायज्ञ करने से, शास्त्र में तो यह बताया कि प्रतिदिन जो अपना जीवन चलाते हैं, घर के अन्दर चक्की भी चलाते हैं, आग भी जलाते हैं, सफाई भी करते है, उसमें जो प्राणियों की हत्या होती है उसकी क्षतिपूर्ति के लिये पाँच यज्ञ हैं। देखने में कितनी छोटी–सी बात कही है। पर इसमे शास्त्र का गहन तात्पर्य है। पूरे जीवन की शैली, इन पंचमहायज्ञो के द्वारा सही हो जाती है। महायज्ञ क्यों कहा? यज्ञ नही, पंचमहायज्ञ कहा। पचमहायज्ञ प्रतिदिन करने चाहिये। इसका मतलब इनके पीछे कोई गहन दर्शन छिपा हुआ है। तो ये पंचमहायज्ञ करेंगे तो चित्त मे एक निर्मलता आयेगी। चित्त में वह ईश्वर तत्त्व, आत्मतत्त्व प्रकट होना प्रारम्भ हो जायेगा, जीवन में आनन्द आयेगा। आगे के प्रसंग को हम फिर देखेगे।

# प्रश्नोत्तर

*प्रश्न : हमारी संस्कृति को बौद्धिक ढंग से, इतने सूक्ष्म रूप से समझने की क्या आवश्यकता है? हम न समझते हुए भी परम्परागत ढंग से पंचमहायज्ञो आदि का पालन करते ही हैं। तो क्या इतने सांस्कृतिक आक्रमण हो रहे हैं उनसे बचने के लिये इन सबको इतने सूक्ष्म ढंग से समझना आवश्यक है? ताकि अपने ऋषि-ज्ञान को, हम सही ढंग से, सही परिप्रेक्ष्य में समाज में रख सकें?*

उत्तर : एक चिन्तन होता है, एक भाव होता है और एक क्रिया— चिन्तन, भावना और क्रिया। अधिकतर जनता जो आचार का पालन कर रही है, वह परम्परावश कर रही है। श्रद्धा भी है। पर वह कौन–सी जनता है? उस जनता मे और वर्तमान पीढी में एक बहुत बडा गेप है। और वह निरन्तर बढता जा रहा है। भोजन की दृष्टि से, भूषा की दृष्टि से, भाषा की दृष्टि से, आचार की दृष्टि से एक बहुत बडी खाई तीव्रता से पूरे देश में फैल रही है। न केवल शहर में, सुदूर इण्टीरियर में, गांव मे भी, पहाडो में भी, जंगलों में भी वेशभूषा को देखो, बदलती जा रही है। आदते बदलती जा रही है। जंगल में एक गिरासिया जा रहा है। वह भी पेट पहने हुए, ट्रांजिस्टर लटकाये हुये जा रहा है। ये निम्नवर्ग के लोग हों, चाहे मध्यम वर्ग के लोग हों, चाहे तथाकथित ऊँचे वर्ग के लोग हो, अधिकतर बिना समझे हुए इनको कर रहे हैं। समझकर करना। ऋषियों ने किया होगा। समझकर किये बिना, उसके मिटने की सम्भावना है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती आये थे। वे प्रकाण्ड विद्वान थे। वेद के मंत्र कंठस्थ थे। उन्होने अच्छे–अच्छे विद्वानों से जाकर मंत्र का अर्थ पूछा। विद्वानो ने कहा—अर्थ जानने की जरूरत ही नहीं है। ये तो सिर्फ याद होने चाहिए। इनको बोलना चाहिए। इसलिये कई

लोग उनका मुकाबला कर नहीं पाये। हमारा स्थान अलग है। हम समाज के साथ मे इण्टरेक्शन करते है, और पक्षधर बनकर भारतीय संस्कृति के आचार पक्ष को, उसके पक्षधर बनकर किसी पर्व को, उत्सव को किसी के सामने रखते है। कोई पूछे—यह सब क्या है? इसके पीछे कोई विज्ञान है, कोई युक्ति है, कोई प्रमाण है? इससे लाभ क्या है? इसलिये हमें अपनी साधना मे आगे बढने के लिये और हमारे कार्यक्षेत्र, जिसमें कि नाना प्रकार के लोगों से, नयी पीढी के लोगों से मिलना पडता है, की दृष्टि से और जो हमको प्रदूषित और नष्ट करने वाले लोग हैं उनसे भी मुकाबला करने के लिये हमें ये सब सूक्ष्मता से समझना है।

*प्रश्न : धर्म और संस्कृति में क्या अन्तर है?*

उत्तर : अखिल ब्रह्माण्ड जिस ईश्वरीय विधान से उत्पन्न होता है, सचालित होता है और लीन होता है उस विधान को धर्म कहते है। अखिल ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत सभी भुवन व उनमे रहने वाले देव से लेकर सूक्ष्मतम जीवाणु तक आ जाते है। पृथ्वीलोक मे उत्पन्न मानव कर्मयोनि है। यह जिन शास्त्रीय नियमों को लेकर कामनापूर्ति करता है व सम्पूर्ण पर्यावरण के प्रति अपने कर्तव्यो को पूर्ण करता है, उसको भी धर्म कहते है।

शिव का वाहन वृषभ है। 'वृषो धर्मः' स्पष्ट ही कहा है वृष ही धर्म है। और सिह के लिये दुर्गासप्तशती में आया है—देवी का वाहन सिंह सम्पूर्ण धर्म का प्रतीक एव षड्विध ऐश्वर्य से युक्त है। उसी ने इस चराचर जगत् को धारण कर रखा है।

मनुष्य अपनी चेतना मे परिष्कार लाने के लिये जो-कुछ भी करता है वह सारा संस्कृति के अन्तर्गत आता है। संस्कृति की बात आती है सीधे मनुष्य से। उसका सम्बन्ध है उसकी क्रिया से, उसकी भावना से, उसके चिन्तन से। उसकी चेतना मे परिष्कार लाने की जो-जो प्रक्रियाएँ है वे सब संस्कृति के अन्तर्गत आती है।

संस्कृतीकरण भी तभी सम्भव होगा जब सभी क्रियाएँ धर्ममय हों। यदि हम किसी चीज मे रिफाइनमेण्ट ला रहे हैं तो वह उस

वस्तु का संस्कार हुआ। मान लीजिये शरीर में, इन्द्रियो मे, अन्तःकरण में किसी योग की प्रक्रिया के द्वारा, किसी बदलाव के द्वारा परिष्कार तो ला रहे हैं, पर हो सकता है वह परिष्कार ऐसे उद्देश्य से हो जिसके कारण लोकहित नहीं होगा, प्राणियों का हित नहीं होगा; हम किसी स्वार्थ के वशीभूत होकर परिमार्जन कर रहे हैं तो वह अधार्मिक कृत्य कहलायेगा। इसलिये धर्म वहाँ पर भी आकर शासन करेगा और वस्तुतः हम उस परिष्कार को मानव-संदर्भ में संस्कृति नहीं कहेगे। राक्षस लोग हैं। मान लीजिये वे मन्त्र का प्रयोग करते हैं। वे योग का भी प्रयोग करते हैं। पर किसलिये करते हैं? अपने भोग के लिये, दूसरों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये करते हैं। इसलिये उनको हम कहते हैं—ये अधार्मिक हैं। इसलिये उनके सन्दर्भ मे हम कहते हैं—यह आसुरी-सस्कृति है। हम तो आसुरी पक्ष के नहीं हैं। हम तो अपने-आप को दैवी पक्ष का मानते हैं। हमारे संदर्भ में हम कहते हैं—यदि व्यक्ति के परिष्कार में लोक-मंगल नहीं है तो वह अधार्मिक कृत्य है, अतः संस्कृति नहीं है, विकृति है। तो यह अन्तर समझ में आ गया। संस्कृति शब्द का अर्थ होता है संस्कार लाना। एक ऐसी क्रिया जिसके द्वारा वस्तु में एक परिष्कार आ जाता है, वह वस्तु श्रेष्ठतर हो जाती है—संस्कृति कहलाती है। आपने एक लौकी के छिलके को हटा दिया, बीज हटा दिये, उसके अन्दर जो अवांछनीय तत्त्व है, उसको हटा दिया—यह उसका संस्कार हुआ है। पर हम मानव-प्रयत्नों, मानव-अभिलाषाओं, मानव-चिंतन—इन सबको लेकर विचार करते हैं तो संक्षेप में हम कह सकते हैं—संस्कृति वह है जिसमें चेतना का परिष्कार हो। उसके लिये हम जो-जो संस्कार करेंगे, जो क्रियाएँ करेंगे वह संस्कृतीकरण की प्रक्रिया हो जाएगी। संस्कृतीकरण की प्रक्रिया के तीन सोपान है—पहला दोषापनयन, दोषों को हटाना। दूसरा हीनांगपूर्ति; उसके अन्दर कुछ न्यूनता आ गयी है काल के कारण, प्रमाद के कारण, उपेक्षा के कारण। उसका जो मूल रूप था उसमें कुछ कमी आ गयी। अंग उसके कुछ कमजोर पड गये तो हीनांगपूर्ति, माने हीन अंग

हो गया उसको पूर्ण कर दिया। फिर तीसरा संस्कृतीकरण मे आता है—अतिशय आदान या गुणाधान। उसके अन्दर एक नूतन गुण को लाते हैं, तब जाकर संस्कृतीकरण की प्रक्रिया पूरी होती है—दोषापनयन, हीनांगपूर्ति और अतिशय आदान या गुणाधान। जैसे कोई खेत को लें, दोषापनयन का मतलब पत्थर हटा दिये, काँटे, झाड-झंखाड आदि को हटा दिया। इन दोषों को हटा दिया। हीनांगपूर्ति—इतने दिन धरती उपेक्षित पड़ी रही, कई झाड-झंखाड उग आये, उसमें वह उर्वरता रही नहीं इसलिये कुछ खाद डाल दी, कुछ जल डाल दिया—यह हो गई हीनांगपूर्ति। तीसरा हो गया अतिशय आदान। अब हम उसमें एक नया आयाम जोडना चाहते हैं, मतलब इसमें कुछ बीजों को डाल दिया तो यह एग्रीकल्चर हो गयी, खेत का संस्कृतीकरण। इसको हम अगर स्वयं की चेतना के संदर्भ में लेते हैं तो मनुष्य-शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण—इन सबको लेकर और पूरे समाज को लेकर हम संस्कृतीकरण को करते हैं, इसमें हमारा अतीत भी शामिल हो जाता है, हमारा भविष्य भी शामिल हो जाता है और फिर इन तीनों प्रक्रियाओं को लगाते हैं—दोषापनयन, हीनांगपूर्ति और अतिशय आदान। तो यह संस्कृतीकरण होता है। पर यह सारा का सारा धर्म के अनुसार होना चाहिये। हमने धर्म की जो परिभाषा समझी है उसके अनुसार होना चाहिये। वह रिफाइनमेण्ट प्राणीमात्र या पर्यावरण को प्रदूषित करने वाला हो, उस पर आघात करने वाला हो तो हम कहेंगे—धर्ममय नहीं हुआ, इसलिये हमारे अर्थो में वह संस्कृतीकरण भी नहीं हुआ।

धर्म एक व्यापक शब्द है। संस्कृति का सीधा सम्बन्ध मनुष्य से है। मनुष्य से इतर भी धर्म शब्द अपने अर्थ को रखता है। हम उसका प्रयोग करते हैं; शेर का धर्म अलग है, पृथ्वी का धर्म अलग है, अग्नि का धर्म अलग है। तो हम ऐसा थोडे ही कहते हैं—शेर की संस्कृति अलग या पृथ्वी की सस्कृति अलग, पर शरीर का धर्म अलग कहते हैं। इस संदर्भ में दोनों का अन्तर समझ लेना।

प्रश्न : लोग तो संस्कृति शब्द व्यापकता के अर्थ मे लेते हैं, धर्म शब्द को संकुचित अर्थ मे लेते हैं।

उत्तर : हमारे ऊपर बहुत बड़ा संकट गहरा रहा है। किसी भी सस्कृति को नष्ट करना हो—उसकी भाषा को पकडो। उसके मुख्य-मुख्य शब्दों को पकड़ो और उनको प्रदूषित कर दो। आपको मेरे से ज्यादा मालूम है। मैं असम गया तो गौहाटी के कार्यकर्ताओं ने मेरे को बताया—असमी भाषा की डिक्शनरी मे धर्म परिवर्तन करने वाले अपनी भाषा के शब्दो को डाल रहे हैं। हमारे शब्दों के अर्थ को बदल रहे हैं। दो-चार सस्करण ऐसे निकालेंगे तो पता ही नहीं लगेगा कि मूल क्या था। वहाँ असम की भाषा को नष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं। इसलिये पुनः अपनी भाषा की प्रतिष्ठा, अपने शब्दों का बार-बार प्रयोग करे। बीकानेर मे मैंने कई सभाओं में धर्म शब्द के मर्म को बताया। मैंने कहा—स्त्री शरीर में होने वाला 'मासिक-धर्म' होता है वह हिन्दू धर्म होता है, या बौद्ध धर्म होता है या इस्लाम-धर्म होता है? पर हम इस धर्म शब्द का रात-दिन प्रयोग करते हैं। धर्म-भाई, धर्म-बहन बन गये। वह चाहे मुसलमान हो चाहे हिन्दू हो—धर्म-भाई, धर्म-बहन बन जाते हैं। मारवाड़ी में कहते हैं—धर्मेला हो गया। तो उस शब्द का प्रयोग हम करते आये हैं। अब जो अखबार आ रहे हैं, पुस्तके आ रही हैं, ये क्या कर रहे हैं? हमारे मन में उस शब्द के अर्थ को संकुचित करते जा रहे हैं, काटते जा रहे हैं। हम उसका प्रयोग करें अपने लेखो मे, अपनी भाषा में। हम भी मीडिया की देखा-देखी 'धर्मनिरपेक्ष' 'धर्मनिरपेक्ष' करने लगे। यह हिन्दू धर्म, वह जैन धर्म, वह ईसाई धर्म करने लगे तो फिर हम खुद ही धर्म शब्द को सीमित कर रहे हैं। महाभारत युद्ध हुआ था तो हिन्दू-मुसलमान का थोड़े हुआ था। कहते हैं—धर्मयुद्ध हुआ था। उस शब्द को वापिस उज्जीवित रखना, यह इसके प्रयोग के द्वारा होगा। अगर हम प्रयोग करना छोड़ दे तो नहीं होगा। यह आपका प्रश्न उचित है। हमको

बहुत कुशलता से काम करना है। आपने बहुत अच्छा और सुन्दर प्रश्न किया। पर आप लोगों को अपने कार्यक्षेत्र में बुद्धिमत्ता से कार्य करना होगा। क्योंकि सामने शत्रु भयंकर आये हुए हैं। हम महात्मा तो धर्म-धर्म कहते रहेंगे, आप ऐसा नहीं कर सकते। आप को तो अपने कार्यक्षेत्र में संस्कृति की बात करनी पडेगी। हम यहाँ के मूल निवासियों की संस्कृति की रक्षा कर रहे हैं—यह कहना होगा। आप धर्म शब्द का प्रयोग करेंगे तो आपको काम करने नहीं देंगे।

आप की बात अलग है। मेरी बात अलग है। मैं तो ऐसे भी गेरू कपडा पहने हुए हूँ। मै तो धर्म की बात बोलूँगा ही। पर आप गेरू कपड़ा पहनेगे तो बिल्कुल साम्प्रदायिक कहलाएँगे। आप काम नही कर पाओगे।

प्रश्न : *श्राद्ध का कोई वैज्ञानिक आधार है क्या? और श्राद्ध-तर्पण की सरल व कम खर्चीली व्यवस्था है क्या?*

उत्तर : श्राद्ध के पीछे वैज्ञानिक आधार है। विज्ञान की अधुनातन, अद्यतन जो खोजें हो रही है, वे यह सिद्ध कर रही हैं कि सारा संसार एक काण्टिन्युअम है, वन इण्टिगरल होल—मानो सारा-का सारा एक एनर्जी के समुद्र में डूबा हुआ है और उसी एनर्जी मे कुछ परिवर्तन होकर ये अलग-अलग फॉर्म्स उत्पन्न हो गये है। इसलिये यहाँ पर कोई भी एक्टिविटी होती है तो उसका प्रभाव सारे विश्व में पहुँच जाता है। यह टी. वी. के द्वारा, तरंगों के द्वारा हम समझ सकते है। श्राद्ध एक सुपर वैज्ञानिक प्रकिया है। पर आपकी मुख्य बात है कि इस श्राद्ध-कर्म में खर्चीलापन आ गया है, तो उसको कम कैसे करना? इसके लिये जो यह कार्य करते है उन संस्थाओ को, पुजारियों से सम्पर्क करना पडेगा और उनको समझाना पडेगा कि तुम्हारी रोटी-रोजी सारी समाप्त हो जाएगी अगर इस तरह धर्म-परिवर्तन चलता रहा तो। अतः श्राद्ध-कर्म को सरल रूप मे करो। उसको वे स्वयं की भाषा मे कर सकते हैं। सरल विधि अपना सकते है। हिन्दी में कर सकते हैं। अपनी भाषा में कर सकते हैं। हमारे रतनगढ

मे एक पंडितजी थे। उन्होंने श्राद्ध के लिये, तर्पण के लिये हिन्दी में पितर-चालीसा लिख दी। श्रद्धा करने में मुख्य मन्त्र की शक्ति होती है। प्रत्येक मात्रा मन्त्रात्मक होती है। अ आ इ ई उ ऊ, क से क्ष तक—इन सबके अन्दर शक्ति होती है। उसके साथ मे भावना और संकल्प की शक्ति जुड़ती है तब वह काम करना शुरू कर देती है।

तो एक तो खर्च कम हो, दूसरा विधि सरल हो जाय—ये दोनों बातें हो सकती हैं।

प्रश्न : *इसके लिये वहां के पुजारियों के साथ आप जैसे साधु समाज का कुछ इण्टरेक्शन हो तो कुछ काम बन सकता है। जैसे जब असम में पुरी के प. पू. शंकराचार्यजी गये थे तो वहाँ पुजारी समाज से इण्टरेक्शन हुआ था तो बहुत-कुछ अच्छा समाधान निकला था।*

उत्तर : यह मेरा क्षेत्र नहीं है ज्यादा। इसके लिये ऐसे व्यक्ति चाहिए जो शक्ति से सम्पन्न हों, जिनके पास में कोई अतिमानसिक या दैवी शक्ति हो, ऐसे व्यक्ति का उपयोग वहाँ पर हो सकता है। मैं तो ऐसा हूँ नहीं। क्योकि मेरा क्षेत्र वेदान्त का है। पर ऐसे व्यक्ति हैं कई, जो तन्त्रशक्ति का प्रयोग करते हैं। हमारे दशनाम सम्प्रदाय में भी जो नागा साधु होते हैं, वे गाँवो मे, जंगलों में, पहाड़ों में रहते हैं। वहाँ वेदान्त सुनाओ तो लोग क्या समझेंगे? वे कहेंगे—मेरी गाय खो गयी है, यह गाय बीमार पडी है, दूध नहीं देती। वह साधु अपनी धूणी में से भस्मी उठाकर देगा और उनका काम बन जाएगा। वे अभिमन्त्रित करके भस्मी को रखते हैं और ऐसे छोटे-छोटे प्रयोग होते हैं, जिनके द्वारा वे उनको प्रभावित कर देते हैं। जैसे विच्छू खा गया, साँप खा गया, तो वे सिद्ध करके रखते है मन्त्र को, फिर उसके जहर को वे उतार देते है। अभी मैं सवाईमाधोपुर गया तो वहाँ एक व्यक्ति को देखा। उसने कुरान की आयत का प्रयोग करके सॉप का झाडा कर दिया। कुरान की आयत को उसने ग्रहण में सिद्ध किया। इस प्रकार अपने पास भी बहुत-से मन्त्र है जिनको साधु सिद्ध कर लेते है। मैं आपसे तो नहीं कहूँगा कि आप ऐसे मन्त्र

सिद्ध कर लो परन्तु अगर आपको किसी परम्परा से ऐसा मिल रहा हो तो उसे करना चाहिये। मैने तो आपको सिर्फ एक संकेत दे दिया। आप देवीकवच करेंगे तो आप बहुत सुरक्षित रहोगे। आप इतना ज्यादा इण्टरेक्शन करते हैं, आपको सुरक्षित रहना होगा। फिर यह भी तात्पर्य था कि कुल-परम्परा से आपको यह विधि मिल रही है तो सीखने में कुछ हर्ज नहीं है। आपके किसी साथी को मिल रही है कि यह झाडा दे दिया तो यह बीमारी ठीक। दवाओं का ज्ञान, जडी-बूटियों का ज्ञान—उनसे बीमारी ठीक हो गयी। छोटे-मोटे टोटके। पर यह मेरे कहने से मत करना। इसमें खतरा भी है। पर यह अधविश्वास नहीं है। इस विषय में आप स्वयं नीति-निर्धारण करे। यह पूरा-का-पूरा विज्ञान है। आप कुछ प्रयोग करेंगे तो यह कार्य करेगा। विज्ञान से लोग बहुत कन्फ्यूज्ड (Confused) हैं। जो इन्द्रियगोचर होता है उसी को लोग विज्ञान समझ रहे हैं। इन्द्रियों के भी तो कई स्तर हैं। मन के द्वारा भी तो कुछ एक्सपेरीमेण्ट (experiment) होते हैं। इसमे कोई खास बात नहीं है। अध्यात्म में आगे बढते है तब यह बाधा का काम करते है। पर जो प्रचार-प्रसार में जाते हैं, इन छोटी चीजों को सीख लेते है तो इण्टीरियर (Interior) के क्षेत्र मे बहुत सफल होते हैं। हमारे नागा साधु लोग हैं जो जंगलों में सुदूर बस्तियों में बैठे हुए हैं, उनके अनुयायी बहुत ज्यादा है। ऐसे कुछ लोग जुड जाएँ तो उनका बहुत प्रभाव पडता है।

हमारी शक्ति अल्प, कार्यकर्ता अल्प और अल्प राशि है। उनके पास अपार शक्ति, उनके पीछे चर्च शक्ति और उसके पीछे राज्य शक्तियाँ यानी पूरी-की-पूरी आसुरी शक्तियाँ खडी है। जहाँ आप 10 हजार रुपये लगाते है वहाँ वे दस लाख, दस करोड रुपये डाल देते है, तो वहाँ आप क्या करेंगे? घबराने की आवश्यकता नहीं है। शिवाजी के सामने भी बडी-बडी सेनाएँ आती थी तो वे गुरिल्ला युद्ध करते थे। आप भी अपनी शक्तियों का विनियोग बुद्धिमत्तापूर्वक करें। फिर आगे भगवान् की इच्छा है।

आज जहाँ हिमालय खडा है वहाँ पहले समुद्र लहराता था। समुद्र हट गया, हिमालय प्रकट हो गया।

महाभारत युद्ध के पश्चात् उत्तंक महर्षि से भगवान् कृष्ण की भेंट हो गयी। महाभारत युद्ध कृष्ण के कारण हुआ—यह मानकर उनको शाप देने के लिये प्रस्तुत हो गये उत्तंक महर्षि। तब भगवान् ने अपना विराट् रूप प्रकट किया और कहा—दो अब मुझे शाप, तब वे क्षमा माँगने लगे।

बुरा मत मानना, आज भारत माता प्रकट होकर कह दे—मुझे आपकी सेवाओं की जरूरत नहीं है, तब आप क्या करोगे?

उनको जरूरत नहीं है पर हमको जरूरत है, यानी प्रेरणा हमारे अन्दर है, बाहर नहीं। मोटीवेशन हमारे अन्दर पडा हुआ है। हम अपने ऋण चुका रहे है—यह सेवाकार्य करके। यह तो हमारी भारतीय संस्कृति और सनातन धर्म सिखाता है। मोटीवेशन बाहर नहीं, अन्दर है। हम अपने कार्य को जीवन से जोडते हैं, जीवन के मूल से जोडते हैं तो फिर हम अपने लिये उसको कर रहे हैं। तब उसमें एक उन्मुक्ता रहेगी। नहीं तो निराशा आयेगी। अच्छे-अच्छे कार्यकर्ताओं को देखा, वे वृद्धावस्था मे निराश हो जाते हैं—'इतना समय हो गया, अभी तक कुछ कर नहीं पाये'। बुढापा आ गया और कुछ कर नही पाये। क्या सोचा था, क्या हो गया! एक निराशा। प्रश्न है—किसने हमको बुड्ढा किया? हम बुड्ढे क्यों हो रहे है? कौन हमको बुड्ढा कर रहा है? वही शक्ति जो सूरज को चमका रही है, जो पृथ्वी को घुमा रही है, जो सृष्टि को चला रही है वही हमको बुड्ढा कर रही है। तो बुड्ढा होकर हम कहें—अरे! अभी तक तो कुछ काम हुआ ही नहीं। क्या सोचा था, क्या हो गया! भाई, तुम्हारे हाथ में कुछ नहीं है। तो कइयों को एक निराशा की स्थिति में देखा।

प्रतिदिन ज्यों-ज्यो बढते जाएँ त्यों-त्यो खुलते जाना, खिलते जाना, महकते जाना, परिपक्व होते जाना—कैसा भी काम हो, कही भी काम हो—यही हमारा लक्ष्य है।

प्रश्न : *आप श्राद्धकर्म को संक्षिप्त, सरल और कमखर्चीला बनाने को क रहे हैं। तो जो देवता हैं, पितर हैं उनको वह पूरी सामग्री न मिलने से वे नाराज नही होंगे क्या ?*

उत्तर : नहीं। उसमे भावना का जोर आ जाता है। मूल रूप क्या था— हमको मालूम नहीं। याद में बढते-बढते, विकृत होते-होते क्य रूप ले लिया—यह हमको मालूम नहीं। इसलिये हम अपन भावना को इतनी तीव्रता से आगे बढाते हैं, इतना ऊँचा करते है तो फिर उसका विपरीत फल नहीं होता है।

प्रश्न : *उनका विधान—एक व्यक्ति जिस भी वस्तु का उपयोग करता था, चाहे वह नयी गाड़ी हो, सुई से लेकर नयी गाडी को मिट्टी में गाड़ेंगे उसकी कुछ भी निशानी नही रखते। रिश्तेदारों के पास भी उसके नाम का पैसा है तो वह भी मिट्टी में गाड़ेंगे। फिर जो पुजारी होता है वह उनके घर नहीं जाता पर जब वह पूजा करता है तब वह कहता—इनकी अमुक वस्तु अमुक जगह पड़ी है, वह चाहिये उसको।*

उत्तर : इसके लिये पहले ही पुजारी को आपको हेण्डल करना पडेगा नहीं तो कुछ नहीं हो सकता।

प्रश्न : *नहीं, वह आत्मा माँगती है, वह चीज वहाँ पड़ी है, वह मुझे दो।*

उत्तर : यह एक Psychic field (अतिमानसिक क्षेत्र) मे प्रवेश कर रहे हैं। इसमें दखल या प्रवेश करने के लिये बहुत सावधानी रखनी पडेगी। इसलिये बार-बार देवीकवच के लिये जोर दे रहा हूँ। आप दखल दोगे तो आप पर भी अटेक (attack) हो जायेगा।

हमारे ही एक परिचित महात्माजी थे। किसी गृहस्थ की कन्या मे उनके पितर आते थे। उसमें आकर बोलते थे। उन महात्माजी ने कहा—यह ठीक नहीं है। इससे इस कन्या का विकास रुक जायेगा। इसको ज्यादा प्रोत्साहन मत दो। ऐसा उन्होने कहा। तो ठीक दूसरे दिन ही उस पितर ने उन महात्माजी के आश्रम में आकर अपना 'परचा' दे दिया। परचा दे दिया, मतलब डराने की कोशिश की उनको। पर वे तो श्रेष्ठ साधक थे, इसलिये वे

पितर कुछ कर नहीं पाये। इसलिये पितर आदि नाराज तो हो जाते हैं। इस प्रकार जो छोटे देवता हैं, क्षुद्र देवता हैं, वे नाराज हो जाते हैं यदि उनके बीच कोई दखलन्दाजी करता है तो। इसलिये एक दूरी रखते हुए काम करो। जितना होता है उतना करें, आगे जैसे प्रभु की इच्छा। क्योंकि भूत, पितर—ये सारे छोटे-छोटे देवता होते हैं।

हम तो उस पुजारी को सुझाव दे सकते है। तुम्हारी इतनी खर्चीली एव पेचीदा विधि के कारण सारे-के-सारे कनवर्ट हो रहे हैं, ईसाई बन रहे हैं। इससे तुम्हारा काम भी नहीं चलेगा इसलिए इस विधि को सरल कर दो।

प्रश्न : *बडी मेहनत करने वाले, जैसे रिक्शा चलाने वाले, कुली, मुटिया आदि जो चावल आदि सडा कर उसका सेवन करते हैं, क्या उनको सात्त्विक भोजन के लिये कहें, क्योंकि आपने कहा—'जैसा खाये अन्न, वैसा होवे मन'—सात्त्विक अन्न से मन भी वैसा ही बनता है।*

उत्तर : सात्त्विक वाली बात है। वर्ण व्यवस्था हमने इसीलिये की थी। हमको तो सारी दृष्टि से विचार करना है। जो पूजा-पाठ करता है, ध्यान करता है, उसके लिये सब-कुछ सात्त्विक होना चाहिये। जो युद्धक्षेत्र के अन्दर जाता है उसको रजोगुण चाहिये। वह ऐसे पिलपिला हो जायेगा तो कैसे काम कर सकेगा! उसी प्रकार जो खूब परिश्रम करता है उसका खान-पान उसके अनुसार ही होगा। उसमें ज्यादा इण्टरफीयर नही करना चाहिये। उनकी आर्थिक अवस्था क्या है? उनकी परम्परा क्या है? ये सब देखना। वे मछली खाते है तो वे खायेंगे ही—उन्हें खाने दीजिये। पर जो साधना में आगे बढना चाहता है वह अगर छोडे तो अच्छा है।

प्रश्न : *भैंस का दूध तमोगुणी, गाय के दूध को सत्वगुणी क्यों कहते हैं?*

उत्तर : प्रकृति त्रिगुणात्मिका है अतः उससे निर्मित सभी वस्तुएँ भी त्रिगुणात्मक है। प्रत्येक वस्तु में तीनों गुण रहते है पर उनका

तारतम्य होता है। जन्म से ही किसी में सतोगुण की अधिकता होती है, किसी में रजोगुण की तो किसी में तमोगुण की।

ऋषियों ने परीक्षण करके पाया कि गाय सतोगुणी है, भैंस तमोगुणी है। और यह उनके खान-पान, वेश-भूषा, आचार-विचार एवं कार्य आदि से भी पता चल जाता है कि वे सतोगुणी हैं या रजोगुणी या तमोगुणी? इन सब दृष्टियों से परीक्षण करके पाया कि गाय सात्विक है और भैंस तमोगुणी है।

दूध का पतला या गाढा होना कोई क्राइटेरिया नहीं है, आधार नही है।

*प्रश्न : गणेशजी इतने बडे पेट वाले, इतने विशाल शरीर वाले हैं और उनका वाहन चूहा इतना छोटा—इसे कैसे समझें?*

उत्तर : ये जब अधिदेव रूप के अन्दर होते हैं तो उस समय चूहा अपने-आप को बडा कर लेता है। जैसे Air छोटी-बडी हो जाती है—फैल जाती है, कम हो जाती है। अधिदेव रूप तो बहुत सूक्ष्म होता है, एनर्जी लेवल समझो। और अधिभूत मे गणेशजी हैं वे पृथ्वी तत्त्व के प्रतीक हैं। पृथ्वी तत्त्व भी, जो अभी आगे जीवन का प्रकटन करने वाला है, मतलब उसके अन्दर अग्नि तत्त्व आ चुका है। अधिभूत में गणेशजी पृथ्वी तत्त्व के प्रतीक हैं इसलिये मोटे है, भारी है, और चूहा तो पृथ्वी तत्त्व को मूव करने वाली जो शक्ति है—ग्रेवीटेशनल फोर्स। सम्भवतः चूहा उस ग्रेवीटेशनल फोर्स का प्रतीक है। अध्यात्म में गणेशजी बुद्धि के प्रतीक हैं और चूहा तर्क करने की शक्ति का प्रतीक। कुतरता है, छिपा लेता है। युक्ति, तर्क, कुतर्क करने की जो शक्ति है, तर्क-वितर्क करने की शक्ति, जिसके द्वारा बुद्धि आगे बढती है—चूहा उसका प्रतीक है। पर अधिदेव में तो चूहा ही उनका वाहन है। गणेशजी तो हाथी के सिर वाले और अमुक मुद्राओं वाले ही होते है। कभी-कभी मुद्राएँ बदल भी लेते हैं। किसी में पाश-अंकुश है, किसी में मोदक है, किसी में मोदक नहीं है, एक कमल का फूल हाथ मे लिये हुए हैं। कहीं वे पंचानन बन जाते है, पॉच मुँह वाले गणेशजी हैं—

यह अधिदेव रूप में। उनसे सम्बन्धित अनेक मन्त्र हैं। 'ओम् गणपतये नमः'—यह भी एक मन्त्र है। ऐसे अनेक मन्त्र है। 12 अक्षर के, 9 अक्षर के, 6 अक्षर के—उनसे सम्बन्धित मुद्राएँ बदल जाती हैं, तो यह अधिदेव रूप के अन्दर। ऐसा ही अन्य देवताओं के वाहन के सम्बन्ध मे समझ लेना।

*प्रश्न : शिव के परिवार के वाहन एक-दूसरे के भक्षक हैं, इनमें समन्वय कैसे?*

उत्तर : समन्वय तो है ही। शिवजी का परिवार यह सारी सृष्टि है, जिसको हम परिवार के रूप में देखते हैं। ये सारी शक्तियाँ समन्वित रूप में रह रही हैं। यही तो इनकी विशेषता है। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा है, आपस में अण्डरस्टैंडिंग (Understanding) ऐसी है, आपस में प्रेम ऐसा है कि सारी विषमताओं, विभिन्नताओं को एक समन्वय में लेकर चलने वाला शिव-तत्त्व है। शिव अद्वैत स्वरूप हैं।

*प्रश्न : आत्मविश्वास और अहंकार में अन्तर क्या है? बहुत बार आत्मविश्वास जब व्यक्त होता है तो अहंकार का रूप ले लेता है।*

उत्तर : आत्मविश्वास होता है आत्मा की अनुभूति को लेकर। आत्मविश्वास होता है आत्मा की शुद्धि को लेकर और अहंकार होता है क्षुद्र, सीमित अहम् को लेकर। अहंकार किसको लेकर होता है? शरीर को लेकर, शरीर में कोई बल हो उसको लेकर, पैसे को लेकर, अपने मित्र वर्ग को लेकर, सम्पत्ति, पद, विद्वत्ता को लेकर। कुछ भी अनात्मा, जो हमारी पजेशन मे आ जाता है, उसको लेकर अहंकार हो जाता है। और जिसमें पजेशन की *कमी होती है तो अहंकार आने की सम्भावना कम।* आत्मविश्वास के पीछे तो हमारी ईश्वर-भक्ति है। जिसमे आत्मतत्त्व की अवगति है, अवबोध है तो वह आत्मविश्वास के साथ कठिन कार्यक्षेत्र में कूद पडेगा। तो पहले आत्मविश्वास को समझ लिया। अहंकार के पीछे कोई-न-कोई कामना काम करती है। कोई-न-कोई क्षुद्रता काम करती है। दोनों में अन्तर

हो गया। अहकार में तमोगुण और रजोगुण की अधिकता है। *आत्मविश्वास मे सत्त्वगुण रहता है। यदि साधक आत्मविश्वास* की गहराई मे नही जाये, उसे शुद्ध नहीं करे तो आत्मविश्वास ही अहंकार बन जाता है। उदाहरण के लिये, आप पूर्वांचल के बहुत अन्दर के इण्टीरियर क्षेत्रों में जाकर काम करते है। वहाँ बहुत खतरा भी है, वहाँ आतंकवादी लोग भी आते हैं, पर आपको ईश्वर के न्याय में, कर्म के सिद्धान्त में, खुद की कुशलता मे विश्वास है, अतः आप वहाँ एक आत्मविश्वास को लेकर चले जाते है। वहाँ आपको कुछ सफलता मिलनी शुरू हो गई और आप सावधान नहीं रहे तो फिर अहंकार आ जाएगा। आप भूल गये कि किन-किन शक्तियों के कारण यह सफलता मिली। और आपमे अहकार आया—मैंने किया है, मेरी विशेषता है—तो यह अहंकार आ गया। प्रारम्भ मे अहंकार को लेकर नही गये। प्रारम्भ मे तो आत्मविश्वास से आगे बढे। आत्मविश्वास के पीछे एक दिव्यता काम कर रही है। पर अभी तो ज्ञानी नहीं है, सिर्फ साधक मात्र हैं। इसलिये वह अहंकार आ न जाय, इसलिये सावधानी रखते हैं।

*प्रश्न : आत्मज्ञान किसको होता है ?*

उत्तर : आत्मज्ञान आत्मा को ही होता है। शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रिय, अन्तःकरण को नहीं। ये सीमित है, जड है। आत्मज्ञान आत्मा को ही होता है कि मैं न कभी बन्धन मे था और न कभी बँध ही सकता हूँ।

*प्रश्न : आत्मज्ञानी के क्या-क्या लक्षण प्रकट होते है ?*

उत्तर : आत्मज्ञानी मे कुछ लक्षण प्रकट होते है, जैसे दया, करुणा, मैत्री, संयम, सदाचार, शास्त्रीय आचरण, लोककल्याण—ये सब प्रकट होते हैं। पर आप सिर्फ ऐसी एक परिभाषा को लेकर बैठेंगे तो बहुत कन्फ्यूजन में पड जाएँगे, क्योंकि आत्मज्ञानी अलग-अलग प्रकार के होते हैं। इस विषय को 'त्रिपुरा-रहस्य' ग्रन्थ में बडे सुन्दर ढंग से बताया है। एक बार कई आत्मज्ञानी

इकट्ठे हो गये—दुर्वासा, दत्तात्रेय, वशिष्ठ आदि-आदि, और सब विचार करने लगे कि हममे सर्वश्रेष्ठ आत्मज्ञानी कौन है? श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी कौन है? वे ब्रह्माजी के पास गये—आप बताएँ कि हममे से श्रेष्ठ कौन है? ब्रह्माजी ने सोचा—सभी ब्रह्मज्ञानी है। किसी को श्रेष्ठ बता दूँगा तो दूसरे नाराज हो जायेंगे, विशेषकर साथ मे दुर्वासाजी है। अतः उन्होने कहा—विष्णु के पास चलें। विष्णु भगवान् के सामने भी वही समस्या। अतः उन्होंने कहा—शकरजी के पास चलें। शंकरजी ने सोचा—अपनी बला टालने के लिये विष्णु अपनी समस्या को मेरे पास लेकर आ गये। उन्होंने कहा—कौन श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी है, यह तो भगवती जाने, ब्रह्मविद्या जाने। ब्रह्मज्ञानी है तो ब्रह्मविद्या जाने। ब्रह्मविद्या का आह्वान किया तो भगवती उमा, ब्रह्मविद्या प्रकट हुई और फिर ब्रह्मज्ञान का सुन्दर वर्णन करते हुए कहती है—सभी ब्रह्मज्ञानी समान है।

तो एक वशिष्ठजी है, उनका जीवन, उनकी कर्मठता अलग। दुर्वासा हैं, वे अत्यन्त क्रोधी। चन्द्रमा थे, वह अत्यन्त कामी फिर भी वे ब्रह्मज्ञानी। इसी प्रकार से दत्तात्रेय हैं, वे अवधूत हैं, वे भी ज्ञानी। तो अनुभूति की दृष्टि से सारे-के-सारे समान। जनकजी है, वह बडे साम्राज्य को चला रहे हैं। वे भी आत्मज्ञानी। तो बाहर के लक्षणों को देखकर पता लगा नहीं सकते। यहाँ तक कि एक व्यक्ति श्रेष्ठ साधक है या नहीं, इसका भी पता नही लगा सकते। एक आश्रमधारी पैसे को बहुत हिसाब से खर्चता है, बहुत हिसाब से रखता है तो आपको लगेगा कि यह तो बडा लोभी है। इसको पैसे से क्या मतलब! अतः जब तक आप स्वयं साधक नही है तब तक आप किसी को पहचान नहीं सकते। हाँ, आपका यह कहना ठीक है कि उस ज्ञानी से दुराचरण नहीं होगा। शास्त्र के विरुद्ध कार्य नहीं होगा। ये मोटे-मोटे लक्षण देख सकते है। पर वह वास्तव में आत्मज्ञानी है या नही, यह आप तब तक नही जान सकते जब तक आप स्वयं आत्मज्ञानी नहीं हैं। उससे बिना सम्पर्क किये आप जान नहीं सकते।

आत्मज्ञानी ज्योंही आत्मतत्त्व का वर्णन करेगा, उसके वर्णन मे जरा भी त्रुटि नही हो सकती। अगर त्रुटि होती है तो वह आत्मज्ञानी नहीं है। वह बहुत बड़ा व्याख्याता हो सकता है, वह बहुत बडा लेखक हो सकता है, पर वह आत्मज्ञानी नहीं है। पर जो बहुत बडा विद्वान् है, साधक है, उसके सामने कोई आत्मज्ञानी आयेगा तो थोडी-सी बात करने पर ही उसको पता लग जाएगा कि उसको आत्मज्ञान हुआ या नहीं या वह किस स्तर तक पहुँचा हुआ है। आपको पता नहीं लगेगा।

साधना गुरु के मार्गदर्शन में करनी चाहिये या श्रेष्ठ साधक के सान्निध्य में करनी चाहिये, नहीं तो आपको सम्मोह हो सकता है, गलतफहमी हो सकती है कि आप साधना मे आगे बढ रहे है। जब आपने श्रेष्ठ साधक के साथ रहकर साधना की तो पता लगता है कि आपकी साधना ठीक चल रही है या नहीं। थोडा-बहुत आप जिस ग्रन्थ का अवलम्बन लेकर चलते हैं उससे पता लग सकता है कि आप साधना में आगे बढ रहे हैं या नहीं। इष्ट से घनिष्ठ सम्बन्ध है तब भी पता लग सकता है कि आपकी साधना ठीक है या नहीं। यह बहुत दुर्लभ होता है कि जब इष्ट देवता आपको गाइड करें।

नामदेवजी की एक बात है। कई सन्त बैठे हुए थे। एक सन्त कुम्हार थे। एकनाथजी ने उन्हें कह दिया—देखो भई! यहाँ कौन कच्चा सन्त है, कौन पक्का—पता लगाओ। अब वह सन्त कुम्हार थे तो सबके सिर में ठोले मार कर परखने लगे कि कौन कच्चा है और कौन पक्का है। जैसे घडे को देखते हैं न! यह कच्चा है कि पक्का है? तो नामदेवजी के सिर मे ठोला मारा तो नामदेवजी बिगड गये। बाकी किसी सन्त ने प्रतिक्रिया नहीं की। तब सबने निर्णय कर दिया और हंसने लगे—'यह तो कच्चा है', 'यह तो कच्चा है'। इस अपमान से नामदेवजी बहुत दुःखी हुए। वे अपने इष्टदेव के सामने जाकर एकदम रूठ गये, नाराज हो गये—'आज तो आपने मेरी बेइज्जती करवा दी। आपके रहते हुए मेरा अपमान हो गया! मेरे को भरी सभा में कह

दिया कि तू कच्चा है।' इष्टदेव कृष्ण ने कहा—कच्चा तो तू है ही। इतनी अन्तरंगता का व्यवहार तो कलियुग मे दुर्लभ है। जब पुण्य का पुज इकट्ठा होता है तब इष्टदेव के साथ ऐसा व्यवहार होता है, जैसे रामकृष्ण परमहंस। नही तो ऐसा उदाहरण बहुत कठिन है।

अतः स्वयं श्रेष्ठ साधक के साथ रहें। साथ मे इष्टग्रन्थ भी देखते रहे, जैसे भगवद्गीता या श्वेताश्वतर आदि उपनिषद्। इनमें ज्ञानी के लक्षण बताये हैं।

ईश्वर का साक्षात्कार होने पर चेहरे में भी झलक मिलने लगती है। चेहरे पर एक निर्मलता, एक विमल हास्य, एक आनन्द प्रकट होता है—इससे कुछ तो पता लगता है। ईश्वर की खुशबू आयेगी। पर चेहरा सूखा हुआ, उदास और एकदम से कहीं खोये हुये और कहे कि मुझे ईश्वर के दर्शन होते हैं तो समझना—यहाँ भ्रान्ति है। अतः श्रेष्ठ गुरु होता है वह बताता है—अभी नहीं, अभी नहीं। तब हम साधना में आगे बढते जाते हैं। स्वयं के अन्दर भी लक्षण प्रकट होते हैं। पर खुद अपने-आप को धोखा भी तो दे सकते है। अतः सावधानी की दृष्टि से गुरु की, श्रेष्ठ साधकों की सन्निधि होना आवश्यक है।

सिर्फ शान्ति का अनुभव, एकत्व का अनुभव शान्ति नहीं। तमोगुण के अन्दर भी शान्ति का अनुभव आता है। पर वह तमोगुणी शान्ति है। एक संस्था के लोग चार-चार घण्टे तक, आठ-आठ घण्टे तक एकदम स्थिर होकर बैठे रहते है—'मै मेडीटेट कर रहा हूँ'। दूसरे साधक सोचते है—बडा गजब है, मेरा तो आधे घण्टे मे ही पैर दुखने लगता है और मन लगता नहीं और ये वास्तव में चार-चार घण्टे तक बैठते है, स्थिर होकर बैठ जाते हैं। पर उनका भगवान् का कॉन्सेप्ट बिल्कुल खोटा है। उनके अनुसार ईश्वर एक पॉइण्ट है। एक ज्योति बिन्दु—आकाश मे दूर। कितनी दूर? यह भी उनको मालूम नही। बस दूर है। बहुत दूर है। मैंने पूछा—कितने लाइट ईयर है?

मेरे को एक बार मिल गये यात्रा के समय। पूरा डब्बा उनसे भरा हुआ था। मेरा उनका शास्त्रार्थ शुरू हो गया। मैं अकेला था। इसलिये उनको जोश आ गया। उन्होंने कहा—आप ईश्वर को कहाँ मानते है? मैने कहा—सब जगह। उन्होने कहा—डब्बे में? 'हॉ डब्बे में।' 'इस लकडी के अन्दर भी?' 'हाँ, लकडी के अन्दर भी।' फिर मैने कहा—मै प्रह्लाद तो हूँ नहीं कि इसके अन्दर से नृसिंह प्रकट हो जायेंगे। और मै यह भी नही चाहता कि यहाँ कुछ चीरा-फाडी हो। मैने उनसे पूछा—आप भगवान् को कहॉ मानते है? उन्होंने कहा—ऊपर है। मैने पूछा—कैसे कहते हो कि ऊपर है? तो बोले—'किसी भी आदमी को जब दुःख पडता है तो वह अगुली ऊपर उठाते हुए कहता है—हे भगवान्!' उनका तर्क देखो! जब दुःख पडता है तब अंगुली ऊपर कर हम कहते हैं—हे भगवान्! इसका मतलब भगवान् ऊपर है। तो मैंने कहा—आपके मत को मानने वाला इसी क्षण में अमेरिका में खड़ा हुआ है, उससे पूछेंगे कि भगवान् कहॉ है तो वह भी अंगुली ऊपर करके कहेगा। और अभी आप भी अंगुली ऊपर उठाकर कह रहे है तो दोनों अंगुलियाँ 180 डिग्री पर हो गयीं। एक नीचे और दूसरी एकदम अपोजिट। फिर मैंने कहा—कितने लाइट ईयर ऊपर है भगवान्? तब वह थोडा घबरा गए। कोई उत्तर नहीं था उनके पास।

हम कहते है—शरीर मे ही आत्मा का, ईश्वर का वास है। वे कहते है—शरीर में काम-क्रोध-लोभ-मोह है, वहॉ परमात्मा कैसे हो सकता है? पायखाने जैसे गन्दे स्थान में ईश्वर कहॉ से हो सकता है? अतः ईश्वर सर्वव्यापक नही है, वह तो ऊपर है। तो उनके बडे ऊल-जलूल आचरण व व्यवहार एवं उनका सिद्धान्त है। सबमे खोट ही खोट है। पोल ही पोल है। अतः ऐसे ध्यानियों से ज्ञानियों से बचें।

इसलिये यह याद रखना कि वह किस अवधारणा को लेकर ध्यान कर रहा है। वह तो एक लय की अवस्था मे चला जाएगा, जड अवस्था में चला जाएगा। इसको हम ध्यान नही कहते।

इसलिये ध्यान मे आगे वढने के लिये पहले डिफाइन करे—किसको आगे वढना कहते हैं? ईश्वर को पाना चाहते हैं तो ईश्वर को डिफाइन करना पडेगा। यदि आपने आगे वढने की डेफीनेशन गलत पकडली तो मुश्किल होगी। पहले मैं घण्टे-भर वैठता था अव दो घण्टे वैठता हूँ—यह आगे वढना नहीं। आगे वढने का मतलव प्रेम, करुणा, अधिकाधिक सयम, एकत्व का अनुभव, परिष्कृत होता हुआ सौन्दर्यवोध—ये सारे-के-सारे आगे वढने के लक्षण हैं।

ऐसे नहीं तो वहुत गडवड हो जाएगी। थोडा भी जोर मन के ऊपर लगाया तो नाद सुनाई दे जाएगा। ज्योतियाँ दिखाई देने लग जाएँगी। वीकानेर मे एक व्यक्ति आया था—'मुझे नाद सुनाई देता है।' मैंने कहा—कौन-सा, कैसा नाद? उसने *विल्कुल सही वर्णन कर दिया—'ज्योतियाँ दिखाई देती हैं।'* मैंने पूछा—घर मे कौन-कौन हैं? 'पत्नी है, वच्चे हैं'। मैंने कहा—पत्नी से आपस मे पटती है या नहीं पटती? तो कहा— 'वहुत गुस्सा आता है उस पर, पीटता भी हूँ उसे।' तो मैंने कहा—यह ध्यान अभी वंद कर दो। मन वहुत शक्तिशाली है। उसको कही से रोकते है तो उसमें से कई प्रकार की शक्तियाँ प्रकट होती है। ध्यान की उपलब्धियों के वारे में सुनकर, पढकर भी मन इनकी कल्पना करने लगता है। इसलिये एक मार्गदर्शक के अधीन रह कर ही साधना करनी चाहिये।

महाराजजी का संदेश कार्यकर्ताओं के लिये—

कार्यकर्ताओ को खूब डटकर काम करना चाहिये। आप अपने कार्य में सफल हों—यह शुभकामना व आशीर्वाद है। आप श्रेष्ठ कार्य कर रहे *हैं—यह आश्वासन है। यह श्रेष्ठतर, श्रेष्ठतम होता जाये।* और अभी मैंने आपको प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से वता दिया कि मोटीवेशन का केन्द्र आत्मा होनी चाहिये। वाहर का केन्द्र नहीं। वाहर जो-कुछ कर रहे है वह अन्दर के परिष्कार के लिये कर रहे है। विना वाहर कार्य किये अन्दर परिष्कार होगा नही। वाहर का एक क्षेत्र आपने चुना। सबसे पहले अपने-

आप को स्वीकारो। अपने-आप को नकार नहीं सकते। अपने-आप को सम्पूर्णता के साथ मे स्वीकार किया। और फिर कार्यक्षेत्र में आगे बढे। और मैंने इष्ट देवता की बात की। इष्ट देवता होना चाहिये। सीधे एक मूर्ति को अपना नहीं सकते, एक व्यक्ति को अपना नहीं सकते। पूरी सस्कृति और राष्ट्र को अपनाना कितनी बडी बात है! सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम् 'वन्देमातरम्' को पूरा गाओ। कभी उसकी मुस्कान को देखा है? उसके दुख हैं, कष्ट हैं, वह टूट रही है, गुलाम है—आप यही देख रहे हो। सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्। वह मधुरभाषिणी है। वह बोलती है—सुनते हो कभी? मधुरभाषिणी कहते हो! उसकी मधुर भाषा को कभी सुना? यह बहुत विराट् चेतना होती है। चेतना से साक्षात्कार करना बड़ा कठिन होता है। हम तो उसका एक अंशमात्र ही पकड रहे हैं।

मेरी एक केन्द्र के अधिकारी से बात हुई, वे बोले—महाराज आप यह सब बताते है तो ये बचे-खुचे कार्यकर्ता सुबह-सुबह 2-3 घण्टा पद्मासन लगाकर बैठ जायेंगे। काम कैसे करेगे? यह बात नहीं है। इष्ट देव के साथ एक लिंक रहना चाहिये। अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार उस सम्बन्ध को कैसे निभाएँ, यह भी साथ मे बताया। दिन-भर कहाँ भी हों, कैसे भी हों, हम अपने उस सम्बन्ध का स्मरण रख सकते हैं। अब आपने सम्बन्ध ही नहीं जोडा। मै तो सबको ही मानता हूँ। जैसे जरूरी थोडे ही है कि पत्नी अपने पति का नाम लगातार दिन-भर लेती रहे, पर सम्बन्ध तो हमेशा बना रहता है। पति विदेश में गया, ऑफिस में गया, तो सम्बन्ध तो बना हुआ ही है। ऐसा हमारा ईश्वर के साथ रिश्ता तय हो जाना चाहिये। वह मेरी माँ है या वह मेरा मालिक है, मेरा अभिभावक है, मेरा पिता है, मेरा मित्र है—ऐसा कोई-न-कोई रिश्ता तय हो जाना चाहिये।

और आप बहुत अच्छा कार्य कर रहे है। अपनी पात्रता को निरन्तर बढाते जाना।

# आठवाँ प्रवचन

वैदिक सनातन धर्म प्रत्येक मानव के अभ्युदय और निःश्रेयस का पथ प्रशस्त करता है। उसके अन्तर्गत हमने धर्म की परिभाषा को विस्तार से देखा था। उसी सदर्भ मे हमने मनुष्य-धर्म की बात कही थी। उसको सत् कर्म, सत् चिन्तन, सत् भावना के नाम से पहचानने का प्रयास किया था। उसी को हमारे यहाँ पर स्वधर्म के नाम से अपने जीवन में उतारने की बात कही। अन्तरतम रूप से एक ही आत्मतत्त्व सबमें विराजमान है। अन्तरतम रूप से, तत्त्व के रूप से सबमें अलग-अलग आत्मा नहीं, अद्वैत का दर्शन कहता है एक ही आत्मतत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। पर इसके बावजूद ही प्रत्येक के अन्तःकरण में एक गुण का तारतम्य प्रकट होता है। जन्म-जन्मान्तर से यह जीव चला आ रहा है। अनेक योनियों में जाता हुआ, असंख्य बार मनुष्य योनि को प्राप्त करता हुआ वह एक विशिष्ट देश, काल, परिस्थिति में प्रकट होता है। इसके कारण उसके अन्तःकरण में गुणों का तारतम्य होता है। गुण कौन-से होते हैं? सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। ये तीनों गुण एक साथ रहते हैं और ये तीनों गुण उस परमेश्वर की जिस अनिर्वचनीय मायाशक्ति के हैं वह मायाशक्ति त्रिगुणात्मिका है। उसके आधार में भी जाकर हमारे दर्शनों ने बताया कि वह सत्-चित्-आनन्द ही इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति वाला है। वही सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण में प्रकट होता है। शैवागमों मे इसका अत्यन्त ही सूक्ष्म और सुन्दर विवेचन किया। वेदान्त इतनी सूक्ष्मता में जाकर उसका खुलासा नहीं करता। तो इस प्रकार से इन तीन गुणों में असन्तुलन हुआ, सृष्टि प्रकट हुई और इसके अन्तर्गत जब एक अन्तःकरण प्रकट होता है तो उसमें त्रिगुणों का तारतम्य होता है। यह गुणों का तारतम्य क्यो आया है? इसके लिये हमें पुनर्जन्म के सिद्धान्त को, कर्म के सिद्धान्त को मानना पडेगा। आप लोगों ने भगवद्गीता का *प्रसिद्ध श्लोक सुना होगा—*

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। 4/13

श्रीकृष्ण कहते हैं—गुणो और कर्मों के आधार पर मैंने चारों वर्णों की रचना की। तो ये जो तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तमोगुण—इनको अच्छी तरह से समझ लें। प्रथम बात तो यह है कि ये त्रिगुणात्मिका शक्ति के ही रूप हैं। तीनो गुण एक साथ रहते हैं। जब तीनों मे एक सन्तुलन, एक Harmony रहती है तब कोई प्रकटन नहीं, एक अव्यक्त अवस्था रहती है। उसके पश्चात् जिस अन्तःकरण में सत्त्वगुण सबसे अधिक हो, उसके पीछे रजोगुण, उसके ही पीछे तमोगुण हो; सत्त्वगुण को 'स' कहें, रजोगुण को 'र' कहें, तमोगुण को 'त' कहे, तो जिस अन्तःकरण मे 'सरत' यह क्रम हो तो उस अन्तःकरण को ब्राह्मण अन्तःकरण कहते हैं। और जिसके यह 'रसत' हो अर्थात् प्रमुखतया रजोगुण, उसके पीछे सत्त्वगुण और तमोगुण बिल्कुल पीछे हो तो हो गया क्षत्रिय वर्ण। और तीसरा जिसमे रजोगुण सबसे प्रमुख हो, उसके पीछे तमोगुण और सत्त्वगुण सबसे पीछे, वह हो गया 'रतस'; इस तीसरे वर्ण को वैश्य कहा। चतुर्थ वह है जिसमें तमोगुण सबसे ऊपर, उसके पीछे रजोगुण और सत्त्वगुण सबसे पीछे तो 'तरस' हो गया। तो 'सरत', 'रसत', 'रतस' और 'तरस'—ये चार प्रकार के अन्तःकरण हुए। इन्हीं के अनुसार चार वर्ण हैं। अ से लेकर क्ष तक जो अक्षर हैं उनको भी वर्ण कहते हैं। रंग को भी वर्ण कहते हैं। और मनुष्यों को लेकर भी हमने जो विभाजन समझा उसको भी वर्ण कहते हैं। तो इन चार वर्णो का जो विभाजन है इसको जन्म से मानें कि कर्म से माने? भगवान् ने तो कह दिया 'गुणकर्मविभागशः'। गुण और कर्म को दृष्टि में रखते हुए, चार वर्णो का विभाजन है। इसको गीता में स्वधर्म के नाम से बताया। यह उनकी एक आइडेण्टिटि, उनकी एक निजता है, जिसको कहते है—यह ऐसा है। उसके अनुसार उसका स्वभाव, उसका प्रकटन, उसका कर्म होगा। अब प्रश्न उठ सकता है—यह जन्मजात होता है या क्या इसमें परिवर्तन भी हो जाता है? या फिर इसको परिवर्तित भी किया जा सकता है अथवा नहीं किया जा सकता? इस पर हम लोग थोडा-सा सूक्ष्मता से विचार करेंगे। भगवान् गीता में कहते हैं—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। 18/42

ब्राह्मण किसको कहते हैं? ब्राह्मण का जो स्वाभाविक कर्म है वह क्या होगा? कर्म का मतलब अभिव्यक्ति। कर्म बाहर भी हो सकता है, कर्म मन के अन्दर भी हो सकता है—जिसे मानसिक कर्म कहते हैं। मन मे जो सोचे वह भी कर्म। सकल्पपूर्वक चिन्तन का एक क्रम रखते है तो वह भी एक मानसिक कर्म है। हम 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' प्रार्थना करते है—यह भी एक मानसिक कर्म हो गया। प्रार्थना करने पर उसका प्रभाव पडता है।

गीता 18 42 मे ब्राह्मण के लिये बताया है कि ब्राह्मण ऐसा होता है। और क्षत्रिय के लिये बताया कि—

**शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।** 18/43

यह क्षत्रिय का बता दिया—उसका स्वभाव, उसका कर्म।

**कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।**
**परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।** 18/44

तो यह चार वर्णो का उल्लेख हो गया। अभी हम कौनसे वर्ण में बैठे हुए हैं। कौनसे युग में बैठे हुए हैं? कलियुग में-कलियुग का भी अपना एक स्वभाव है। जैसे स्थान का एक स्वभाव होता है, एक प्रभाव होता है, वैसे प्रत्येक युग का भी एक स्वभाव, एक प्रभाव होता है। और इसका प्रभाव प्रकट होना शुरू हो गया—जब द्वापर का अन्त हुआ। कृष्ण भगवान् ने जब अपनी लीला समाप्त की तब कलियुग के प्रारम्भ को हम मानते है। तो कलियुग का भी अपना एक स्वभाव है। पुराण बताते है कि प्रारम्भ में सभी सत्त्वगुणी होते थे। अतः सब ब्राह्मण वर्ण के होते थे। पर आज के युग के सन्दर्भ मे हम यह कह नहीं सकते कि जन्मजात ही इन सारे गुणों को लेकर कोई प्रकट होता है। जन्म अपने-आप में बहुत बडा एक पेरामीटर, क्राइटेरिया बनता है—यह निर्णय करने के लिये कि यह व्यक्ति किस वर्ण का है, एक सुविधा हमको प्राप्त होती है। परन्तु क्योकि आज यह कलियुग है, इसमें एक संकरता है, एक मिली-जुली स्थिति सब जगह प्रकट हो रही है। इसको लेकर जो जडता मे बैठ जाते है उन पर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया स्वयं वेदव्यासजी ने ही। और महाभारत मे बहुत-

सारे श्लोक मिलते हैं जो अच्छी तरह बताते हैं कि हम जन्म को लेकर यह निर्णय नहीं कर सकते कि अमुक व्यक्ति इस वर्ण का है। एक ब्राह्मण वर्ण के लिये जो स्वभाव बताया, उसका स्वकर्म बताया, उसी वर्ण के लिये बता दिया जो अपने नित्यकर्म का—संध्या-गायत्री आदि का जप और अग्निहोत्र आदि नहीं करता वह जन्म से ब्राह्मण होने पर भी ब्राह्मण नहीं है। और शूद्र के लिये बताया कि जो शम-दम आदि का अभ्यास करता है वह शूद्र होते हुये भी एक ब्राह्मण के समान है। बडा प्रसिद्ध श्लोक है—

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् हि भवेत् द्विजः।
वेदाभ्यासी भवेद् विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।।

'जन्मना जायते शूद्रः' जन्म से तो सारे-के-सारे शूद्र होकर ही उत्पन्न होते हैं। संस्कारात् हि भवेत् द्विजः। अभी संस्कारो पर भी चर्चा करेगे। यज्ञोपवीत संस्कार से बालक को द्विजत्व की प्राप्ति होती है। उसको दूसरा जन्म प्राप्त होता है। किसके कारण? संस्कारों के कारण। संस्कार कौन करता है? उसके माता-पिता। उसके समाज के विज्ञ, कुशल, अतिमानसिक शक्तियो से सम्पन्न, शास्त्र से सम्पन्न शुद्ध आचरण वाले—वही तो एक संस्कार को उत्पन्न कर सकते हैं। वह सिर्फ एक भौतिक क्रिया थोडे ही है। उसमे मन्त्र का प्रयोग, वस्तु का प्रयोग, एक विधि का प्रयोग और एक सदाचारी व्यक्ति का उपयोग होकर संस्कार-सम्पन्न होता है। यज्ञोपवीत संस्कार की क्रिया के अन्तर्गत सूक्ष्मस्तर पर बालक को जीव कलिका में रख कर मन्त्रों के प्रयोग द्वारा उसे पुनः प्रसवित किया जाता है। अतः उसको द्विज कहते है। आजकल संस्कारो की प्रक्रिया नही रही। गर्भाधान के संस्कार से लेकर अंत्येष्टि सस्कार तक विचार करना होगा। एक बात ध्यान में लेवें—प्रथम तो भगवान् ने चतुर्वर्ण-व्यवस्था क्यों बनाई—

*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*

क्यो भगवान् ने ऐसा भेदभाव किया? भगवान् भेदभाव नही करते। पहली बात तो यह है कि जिसके जैसे संस्कार थे, उनके अनुसार प्रकटन कर दिया। किसी को ऊँचे कुल में डाल दिया, किसी को नीच कुल में डाल दिया—ऐसा करेंगे तो भगवान् पक्षपाती कहलाएँगे। जिसके लिये मैने

पहले ब्रह्मसूत्र का उल्लेख किया था। क्या भगवान् के अन्दर भेदभाव व विषमता है? तो वेदव्यासजी कहते हैं—नहीं। वे तो कर्मसापेक्ष होकर जीवों का प्रकटन करते है। सारी सृष्टि का प्रकटन कर्मसापेक्ष होकर करते हैं। जैसे कर्म—वैसे जन्म की प्राप्ति उसको हो जाती है। तो जैसे कर्म, वैसे उसका स्वभाव बनता जाता है और उसके अनुसार उसको एक जन्म की प्राप्ति हो जाती है। यह जो इस प्रकार से उल्लेख किया गया कि—

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् हि भवेत् द्विजः

भगवान् ने यह व्यवस्था क्यो की? इससे जुडा हुआ प्रश्न है—भगवान् ने इस प्रकार से विषम सृष्टि क्यों की? तो एक उत्तर आया—कर्मसापेक्ष होकर। इस व्यवस्था को हमने क्यो स्वीकारा? एकमात्र श्रुति में इसका उत्तर मिलता है। श्रुति के अनुसार यह नर-जन्म ही अपनी आत्म-पूर्णता की अनुभूति करने के लिये मिला है। इसी के लिये कुछ विधान प्रकट किये गये। तो भगवान् ने यह विधान क्यों प्रकट किया? प्रत्येक व्यक्ति ने पहले चाहे जैसे कर्म किये हों, चाहे जिन संस्कारों को लेकर आया हो, परन्तु उसके सामने ऐसी व्यवस्था रखी जाय, ऐसी विधि रखी जाय, जिसका पालन करता हुआ वह सहजता से उस पूर्णता के पथ पर आगे बढ जाए। तो यह अच्छा हुआ या बुरा हुआ? इसको यदि नहीं समझा और हम समझें कि कुछ मनुष्यो ने बैठकर कुछ व्यवस्था बना ली और कर्मो का विभाजन कर दिया कि अमुक यह कार्य करें, अमुक यह कार्य करें—ऐसी धारणा बिल्कुल गलत है। अगर ऐसा किया तो यह भेदभाव क्यों? अमुक समूह तो पठन-पाठन का कार्य करे अमुक समूह रक्षा का काम करे, अमुक समूह व्यवसाय का कार्य करे और अमुक समूह सेवा का कार्य करे। सेवा वाले आपत्ति उठा सकते है—हम यह काम क्यो करे? हम तो सिर्फ पढने-पढाने का काम करेंगे। तो यह इनके चाहने के कारण मनुष्यों ने बैठकर कुछ निर्णय कर लिया हो—ऐसा नहीं है।

जीव अनादिकाल से चला आ रहा है। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारो को लेकर जीव आता है। उसके कर्मो के अनुसार जीव को मनुष्य योनि मिली। अपने संस्कार-पुंज, अपने स्वभाव को लेकर वह आगे कैसे बढे? मुख्य तात्पर्य यह है कि वह अपने अद्वैत स्वरूप का साक्षात्कार कैसे करे?

क्योंकि सबका अन्तरतम ब्रह्म ही है। सबके हृदय में परमेश्वर का ही वास है और सबको उस परमेश्वर की प्राप्ति करने का एक अवसर प्राप्त हुआ मनुष्य योनि मे। इसको तो नजर–अन्दाज कर दिया, अनदेखा कर दिया और जो एक व्यवस्था की बात कही उसको भी एकमात्र जन्म से जोड करके रख दिया। वह व्यवस्था, जो सबके सामूहिक रूप से व व्यक्तिशः रूप से उत्थान का कारण थी, अभ्युदय का कारण थी, वह व्यवस्था एक बधन का कारण बन गयी। उसने एक बेडी का रूप ले लिया और आज भी वह रूप बना हुआ है। इसलिये बीच–बीच मे महापुरुष आते हैं और आकर जड हो चुकी व्यवस्थाओं पर प्रहार करते है।

भगवान् शंकराचार्यजी के जीवन में एक बडी अद्भुत घटना घटी थी। उसका भी लोग सही ढग से अर्थ लगा नहीं पाते, समझ नहीं पाते, क्योकि विमर्श करते नहीं। आप लोगो ने घटना सुनी होगी। शंकराचार्यजी का जन्म ब्राह्मण कुल मे हुआ था, गुरुजी के पास गये थे, संन्यास लिया और ब्रह्मवित् हो गये। उसके पश्चात् वे काशी पहुँचे थे। प्रतिदिन का उनका नियम था कि वे भगवान् विश्वनाथ का गंगाजल से अभिषेक करते थे। एक दिन स्नान किया गंगा में और कमण्डलु में जल लेकर जा रहे थे चढाने के लिये। आज भी हमारे वाराणसी आश्रम में जो मठ है, उसमे संन्यासी लोग रहते है उनका यह नित्य का नियम है कि प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर स्नान करते गंगाजी में, कमण्डलु भरते और भगवान् भोलेनाथ का अभिषेक करते है। तो शंकराचार्यजी आ रहे थे। उसी समय सामने से एक चाण्डाल कुत्तो को लेकर आ रहा था। पतली–सी गली थी, सामने से चाण्डाल आ रहा था, शंकराचार्यजी के मुँह से सहसा निकला 'गच्छ–गच्छ'—रास्ता दो, रास्ता दो, हटो–हटो। वे तेजी से जा रहे थे और वह चाण्डाल तेजी से सामने आ रहा था। उन्होने कहा—हटो–हटो। तब चाण्डाल ने रुककर पूछा—क्या कहा? आप किसको हटो–हटो कह रहे हैं? शरीर से शरीर को हटाने के लिये कह रहे हैं या आत्मा को आत्मा से अलग करने के लिये कह रहे है? अगर शरीर को शरीर से हटाने के लिये कह रहे हो, तो आपका शरीर भी पचभूतो का बना हुआ है और यह शरीर भी पचभूतो का बना हुआ है। किसको किससे हटाने के लिये कह रहे हैं? यदि आत्मा को आत्मा से हटाने के लिये कह रहे है तो आत्मा तो

एक है, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप है। उसके लिये चाण्डाल ने एक श्लोक बोला था। उस श्लोक में वह चाण्डाल कहता है—हे द्विजवर! देखो, क्या सम्बोधन देता है! सामने शंकराचार्यजी सन्यासी वेश में थे। हे द्विजवर! आप किसको किससे हटाने के लिये कह रहे हैं? इस सम्बोधन मे एक बहुत बडा रहस्य पडा हुआ है। 'द्विज' कहते है ब्राह्मण को। और ब्राह्मण जब संन्यास लेता है तो उसको 'द्विजवर'—ऐसी संज्ञा प्राप्त हो जाती है। द्विजों मे जो श्रेष्ठ, वह द्विजवर। चाण्डाल ने द्विजवर कहा शंकराचार्यजी को। और फिर कहा कि नभमणि अर्थात् सूर्य चाण्डाल के पिछवाड़े के पानी में प्रतिबिम्बित होता है या किसी स्वर्ण कलश में रखे गंगाजल में प्रतिबिम्बित होता है तो उस प्रतिबिम्ब को क्या फर्क पडता है? प्रतिबिम्ब में कोई मलिनता या शुद्धता नही आती तो सूर्य की तो बात ही अलग है और आत्मा तो सूर्य की तरह है।

चाण्डाल द्वारा अभिव्यक्त प्रज्ञा को पहचान कर शंकराचार्यजी ने जो श्लोक बोले, वे 'मनीषा पंचक' नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्रथम श्लोक है—जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिषु स्फुटतरा या संविद् उज्जृम्भते...

'जाग्रत्, स्वप्न व सुषुप्ति—इन अवस्थात्रय में जो संवित्—जो आत्मा स्पष्टतः अभिव्यक्त हो रही है और जो ब्रह्मा से लेकर एक चींटी, एक सूक्ष्मतम जीवाणु में ओत-प्रोत है तथा जो जगत् की साक्षी है, वह आत्मा मैं ही हूँ—ऐसी जिसकी दृढ प्रज्ञा है वह चाहे चाण्डाल हो, चाहे द्विज हो—वह मेरा गुरु है।'

चाण्डाल ने द्विजवर कहा तो शंकराचार्यजी ने चाण्डाल शब्द और द्विज शब्द का प्रयोग किया। आपको आ रही है सूक्ष्म बात समझ में? चाण्डाल ने द्विजवर शब्द का प्रयोग किया तो इसका मतलब है चाण्डाल भी मानता था कि कोई द्विज होता है और कोई द्विज नहीं होता, कोई द्विजवर भी होता है। द्विज माने ब्राह्मण। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—तीनो द्विज कहलाते थे, क्योंकि उनका यज्ञोपवीत संस्कार, उपनयन संस्कार होता था। इसका अर्थ है—शूद्र भी होते थे। इसका अर्थ है—अन्त्यज भी, चाण्डाल भी होते थे। इस व्यवस्था को स्वीकार करता हुआ ही चाण्डाल अपनी एक सूक्ष्म बात को सामने रखता है। शंकराचार्यजी भी उस वर्ण-व्यवस्था का उल्लेख करते हुए मुख्य बात सामने रखते है—'चाहे

चाण्डाल हो, चाहे द्विज हो, चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र हो, चाहे अन्त्यज हो, जिसमे ऐसी दृढ प्रज्ञा है—वह मेरा गुरु है।' एक व्यवस्था की भी स्वीकारोक्ति हो गयी उनकी। वह भी एक व्यवस्था है। उसका भी अपना एक स्थान है। पर असलियत क्या है? शंकराचार्यजी प्रज्ञा के उपासक हैं, गुणों के उपासक हैं। हमारी संस्कृति प्रज्ञा की, गुण की, आत्मज्ञान की उपासिका रही है।

शंकराचार्यजी का एक दूसरा ग्रंथ है—'शिवानन्द लहरी'। उस शिवानन्द लहरी मे भी एक श्लोक की बात है। शिवानन्द लहरी के 63वें श्लोक मे कणप्पर नामक भील का उल्लेख किया है। वह पूरी कहानी आपको याद होगी कि किस प्रकार एक भील था। जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों के कारण उसने एक मन्दिर में प्रवेश किया तो उसकी भक्ति उमड पडी। ऐसा नहीं समझ लेवे कि हम भी किसी एक एकान्त जंगल मे चले जायेंगे तो भक्ति उमड जायगी। उसके तो जन्म-जन्मान्तर के सस्कार जाग उठे। उस पूरी कहानी को स्मरण कर लेना। उसने अपनी ऑख को भी उखाड करके चढा दिया। अपना जूठा मांस शिवलिंग पर चढाया, मुँह मे पानी भर करके गया, उससे अभिषेक किया, तीन दिन तक ऐसे ही करता रहा। तब फिर भगवान् को आँख भी चढाने लगा, दूसरी ऑख भी चढाने लगा तो भगवान् प्रकट हो गये उसके सामने। शंकराचार्यजी उस श्लोक मे कहते हैं, उस भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहते है, जो ऐसा था, जिसने जूठा मांस भगवान् को खिलाया, मुँह से कुल्ला उस पर किया, अपने पैर के जूते से भगवान् को रगड-रगड करके साफ किया उसको भी भगवान् ने दर्शन दिया। उसको भक्तों में भक्तशिरोमणि बना दिया। ऐसी भक्ति का वे वर्णन करते हैं। वहाँ पर चिन्तन करने लायक एक बात है—वह चाहे अन्त्यज हो या और कोई हो, जिसके हृदय में ईश्वर का प्रेम है—वह हमारे लिये वरेण्य है, श्रेष्ठ है, पूज्य है—इस बात का विस्मरण कर दिया और केवल जन्मजात व्यवस्था को लेकर बैठ गये, इसलिये समाज में एक प्रकार की जडता आ गयी। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था को लेकर हम किसी जडता में नही चले जायें—इसलिये महापुरुष आये, सन्त पुरुष आये और इसको एक नूतन व्यवस्था दी। वैदिक सनातन धर्म जब इस वर्ण-धर्म की बात करता है तो

उसका एकमात्र तात्पर्य एक वैज्ञानिक तथ्य का प्रतिपादन है। कोई भी ईवोल्विंग सोसाइटी (Evolving Society) हो, जिसमे सर्वाङ्गीण उन्नति हो रही होगी, एक सन्तुलित विकास हो रहा होगा, जिसमें से ईश्वर से साक्षात्कार करने वाले लोग प्रकट हो रहे होगे, उसमें चतुर्वर्ण होगा ही होगा। वह चाहे कहीं पर भी हो, किसी भी जगह पर हो। जहाँ पर सर्वाङ्गीण उन्नति हो रही है, पूरा समाज इवोल्व (Evolve) हो रहा है। समाज इवोल्व होने का मतलब है कि खूब-सारी चारों तरफ समृद्धि हो रही है। इवोल्व होने का अर्थ है समग्र दृष्टि से उस समाज की चेतना मे परिष्कार हो रहा है। इसका क्या प्रमाण है कि समाज की चेतना में परिष्कार हो रहा है? इसका अर्थ है—समाज के जो घटक हैं, उन घटको में से कुछ सन्त प्रकट हो रहे हैं, जीवनमुक्त पुरुष प्रकट हो रहे हैं, उसमें से भक्त प्रकट हो रहे हैं। यह उसके इवोल्व (Evolve) होने का प्रमाण है। इसके साथ-साथ अभ्युदय की बात है, उसमें बड़े-बड़े वैज्ञानिक, साहित्यकार, कलाकार, शिल्पी—ये सारे प्रकट हो रहे हैं। पूरा समाज एक सुरक्षित, संगठित, सशक्त इकाई बना हुआ है—ऐसी व्यवस्था थी चतुर्वर्ण की। ऐसे पूरे राष्ट्र की आप कल्पना कर लें जिसके अन्दर चारों वर्ण एक हारमनी में रह रहे हैं। ये चारों शक्तियाँ—एक श्रम की शक्ति या सेवा-शक्ति, एक अर्थ की शक्ति, एक बाहु की शक्ति या शस्त्र की शक्ति, चौथी बुद्धि या शास्त्र की शक्ति। ये एक प्रकार से फोर्सेज हैं। ये चारों प्रकार के फोर्सेज एक हारमनी में हैं तो वह समाज क्या होगा? अन्य जो आसुरी शक्तियाँ हैं, उनके विरुद्ध में भी सशक्त इकाई के रूप में खडा रहेगा और अपने में से भी जीवनमुक्त पुरुषों को, भक्तों को, ज्ञानियों को, गुणवान पुरुषों को प्रकट करता रहेगा। यह तात्पर्य है वर्ण व्यवस्था का।

संसार में अनेक चिन्तनधाराएँ प्रचलित हैं—किसी-किसी चिन्तन में तो व्यक्ति को मुख्य बना दिया और समाज और राष्ट्र को गौण कर दिया। कहीं पर समाज और राष्ट्र को मुख्य कर दिया और व्यक्ति को कुचलकर रख दिया। वह चाहे साम्यवादी, समाजवादी दर्शन हो, चाहे पूजीवादी दर्शन हो। एकमात्र हमारे भारतीय दर्शन में ऐसी व्यवस्था की कि व्यक्ति को गौण रखते हुए मुख्य रखा, समाज को भी गौण रखते हुए मुख्य रखा।

यह कैसे सम्भव है? जब हमारा व्यक्तित्व मल्टी डाइमेन्शनल है, हमारे अस्तित्व के कई स्तर हैं—इसको स्वीकार किया जाय। इसका उल्लेख पहले कर चुका हूँ—हनुमानजी ने रामजी से कहा था :

देह-दृष्ट्या तु दासोऽहं जीव दृष्ट्या त्वदंशकः।
आत्म-दृष्ट्या त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः।।

दूसरा श्लोक है—

त्यजेत् एकं कुलस्यार्थे, ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थं पृथिवीं त्यजेत्।।

इसका मतलब प्रत्येक व्यक्ति में एक ऐसी गहराई है या उसकी गहराई में एक ऐसा आयाम है जो कि वह जिस समाज का या राष्ट्र या संस्था का या संस्कृति का सदस्य है, वह आयाम उस समाज, राष्ट्र, संस्कृति की चेतना से भी बडा है। जब हम कहते हैं—ईश्वर हृदय में छिपा हुआ है—इसका मतलब क्या हुआ? क्या सिर्फ कहने के लिये कह देते हैं या इसका अनुभव करते हैं, इस पर मनन करने का प्रयास करते हैं? तो व्यक्ति की गहराई में एक ऐसा आयाम है जो आयाम परिवार से भी बडा है, समाज से भी बडा है राष्ट्र से भी बड़ा, पूरी पृथ्वी से भी बड़ा है—'आत्मार्थम् पृथिवी त्यजेत्'। कभी मनन किया इस श्लोक पर? आत्मार्थम् पृथिवी त्यजेत् का मतलब क्या हुआ? आत्मा के लिये पृथ्वी को भी छोड दो। वह आत्मा क्या है? वह आत्मा पृथ्वी से भी बडी है। जैसे 'त्यजेत् एकम् कुलस्यार्थे' कुल की रक्षा करनी हो और एक व्यक्ति का त्याग करना पडे तो त्याग दो उसको। जैसे विदुर ने कहा था—इस दुर्योधन को मार दो, नहीं तो कुल नष्ट हो जायेगा और वे कर नही पाये। एक व्यक्ति को कुल की रक्षा के लिये छोड सकते हैं, बलिदान कर सकते हैं। कुल को ग्राम के लिये छोड सकते हैं। ग्राम की चेतना बड़ी चेतना है। ग्राम को जनपद के लिये और आत्मा के लिये पृथ्वी को। प्रश्न है—यह आत्मा क्या है? शरीर आत्मा नही, इन्द्रिय आत्मा नहीं, मन-बुद्धि आत्मा नहीं है। आत्मा माने आत्मा। आत्मा शब्द का अर्थ शरीर भी होता है, इन्द्रिय भी होता है, मन भी होता है, बुद्धि भी होता है और कुछ लोग शून्य भी मानते है। वास्तव में जो आत्म-तत्त्व है, उसके लिये हम कहते हैं आत्मा और परमात्मा मे अन्तर

नहीं है। उस आत्म तत्त्व के लिये पृथ्वी का भी त्याग किया जा सकता है। इसलिये हमारी जो सन्यास की अवधारणा है उसे दूसरे सम्प्रदाय वाले समझ ही नही सकते। हमारी संन्यास की अवधारणा बहुत बडी है। सन्यास लेने की पात्रता किसी विरले मनुष्य मे ही होती है। तो यहॉ पर यह बात बतायी गयी कि चतुर्वर्ण व्यवस्था के पीछे तात्पर्य क्या है? यह व्यवस्था अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करने वाली है। इसको नही समझने के कारण यह सारी गडबडी हो गयी और विकृत अवस्था मे चली गयी। इस जडता को तोडने के लिये कितने-सारे सन्त आये।

स्वधर्म की बात चल रही थी। इसके लिये गीता मे स्वभाव, स्वकर्म, स्वधर्म शब्दों का प्रयोग हुआ है। सबका एक ही अर्थ है—मेरी जो असलियत है वह प्रकट होवे। उसमें बनावटीपन काम नहीं करेगा। इसलिये असलियत को पकडो। ब्राह्मण—जिसके अन्दर सत्त्वगुण सबसे ज्यादा है उसका स्वभाव कैसा होगा—उसका वर्णन यहॉ पर किया गया। 'सरत' इस क्रम को स्मरण रखे और यह स्मरण रखें कि सत्त्वगुण किसको कहते हैं। तब आपको समझ में आ जायगा कि शम, दम आदि ब्राह्मण का स्वभाव, स्वकर्म, स्वधर्म कैसे हैं? सत्त्वगुण किसको कहते है? सत्त्वगुण का मनन करना, सत्त्वगुण को स्मरण करना। हमारी भारतीय सस्कृति को लोग कहते हैं—यह ब्राह्मण-संस्कृति है। क्यो ऐसा कहते है? वे विदेशी समझते नहीं। उन्होंने ब्राह्मण को समझा नहीं, ब्राह्मण को एक जाति समझ लिया। यह सत्त्वगुणी, सत्त्वोन्मुखी संस्कृति है। तो सत्त्वगुण क्या है—गीता में अनेक स्थानों पर इसका खुलासा किया गया है। सत्त्वगुण निर्मल होता है, प्रकाशक होता है, सुखमय होता है, एकत्व वाला होता है। सात्त्विक ज्ञान, सात्त्विक बुद्धि, सात्त्विक कर्म, सात्त्विक-यज्ञ, सात्त्विक तप—इसका पूरा एक चार्ट बना हुआ है। सत्त्वगुण क्या है—इसको पहचानना पडेगा। इसको पहचानोगे तब सात्त्विक कर्ता समझ मे आयेगा। बिना सात्त्विक कर्ता हुए आपका निष्काम कर्मयोग होगा नही। सात्त्विक कर्ता आपको बनना पडेगा। एक तरफ तो हमारा स्वयं का स्वभाव है—वह 'रसत' भी हो सकता है, 'तरस' भी हो सकता है, 'रतस' भी हो सकता है। दूसरी तरफ हमें निष्काम कर्मयोग की ओर आगे बढना है। आपमें एक परिवर्तन आना शुरू हो जायेगा। अभी मै बात बता रहा था सत्त्वगुण को समझो। सात्त्विक

ज्ञान किसको कहते है कि जो एकत्व को देखता है। एकत्व को देखने का मतलब क्या हुआ? जैसे उदाहरण के लिये मान लीजिये—इस कक्ष मे एक जैन मत को मानने वाला, एक सिख मत को मानने वाला, एक बौद्ध मत को मानने वाला, एक ईसाई मत को मानने वाला और एक इस्लाम मत को मानने वाला व्यक्ति है। पर सबमें एक भारतीयता बैठी हुई है। सारे-के-सारे भारतीय है। भारत के नागरिक हैं। उसी प्रकार यहाँ एक विदेशी अमेरिका का है, एक इग्लैण्ड का या अलग-अलग देशो के व्यक्ति बैठे है। सारे-के-सारे मानव हैं। तो मानवता को सबमे देखना—एकत्व देखने की यह जो शक्ति है उसको सत्त्वगुण की शक्ति कहते हैं। इससे भी आगे बढकर मान लीजिये यहॉ पर कई प्रकार के प्राणी है, जिनमें गाय भी है, भैंस भी है, पक्षी भी है, मनुष्य भी है—सारे-के-सारे प्राणी मात्र हैं। सभी प्राणियो मे प्राण-तत्त्व, जीवन-तत्त्व सबमे ओत-प्रोत है—ऐसा देखने में जिसकी बुद्धि सक्षम है वह अधिक सात्त्विक है। इससे भी ज्यादा आगे बढकर वह है जो सारे चराचर जगत् मे एकत्व को देख पाता है। जब आप ऐसा विचार करते हैं तो आपको समझ मे आ जायगा कि क्यों कहा कि ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकारी होता है? ऐसी कुछ विद्वानों की मान्यता है। अर्थात् ब्राह्मण एकत्व को देखता है। एकत्व को देखने की सर्वाधिक क्षमता ब्राह्मण मे होती है। वह सारे मानवो मे, मानवता में ही नहीं, वह प्राणी मात्र में ही नहीं, वह तो सारे चराचर जगत् मे एक ईश्वर को ही देखता है। जिसमें यह एकत्व को देखने की दृष्टि नहीं, वह फिर कैसे आगे बढ पायेगा। इसलिये ब्राह्मण को ही संन्यास लेने का अधिकार है—इसका तात्पर्य यह है कि पहले से ही जिसमें एकत्व को देखने की शक्ति है वह ब्राह्मण है। एकत्व को देखने की शक्ति जिसके अन्दर होती है वह ब्राह्मण। पहले क्या होता था, कल्पना करो। बहुत पुरानी बात नही। ब्राह्मण पूरे समाज का, एक परिवार का अंग होता था। चाहे जिस घर के अन्दर उसकी पहुँच (Approach) होती थी। उस पर सब लोग भरोसा करते थे। 'यह तो बडा तपस्वी है', 'बडा त्यागी है'—लोग ऐसा मानते थे। सबको प्रेम करने वाला। सभी परिवारों का अङ्ग था। हरेक परिवार में वह स्वीकृत था। यह ब्राह्मण का गुण।

पर कालान्तर में कैसा विकृत रूप आ गया। यह जो ब्राह्मणत्व था वह

*सिमटता-सिमटता, कटता-कटता छुआछूत में जाकर कैसी विकृत* अवस्था को उसने धारण कर लिया। सत्त्वगुण घटता जा रहा है और वे समझते हैं कि यह ब्राह्मणत्व है। उसी प्रकार से यह 'शम'—मन को वश में रखने की ताकत, इन्द्रियो को वश मे रखने की ताकत। स्वभाव से जो तपस्वी है; सारी सुविधाएँ उपलब्ध करवा दो, फिर भी वह तपस्वी है। सुविधाएँ सारी हैं, फिर भी वह तप करेगा। खाने मे तप, सोने में तप, व्यवहार में तप, शारीरिक तप, इन्द्रियों मे तप, मन का तप—वह तपस्वी है सहजता से शौचाचार का पालन करने वाला। बाहर का भी शौच, अन्दर का भी शौच। पर कालान्तर में वह छुआछूत का धर्म, खाने-पीने का धर्म, रसोई का धर्म बनकर रह गया। कैसी एक गलित, घृणित अवस्था मे आ गया। बाहर के लोग आक्षेप करते हैं—यह तो रसोई का धर्म है। सनातन धर्म क्या है? छुआछूत का धर्म है, रसोई का धर्म है। उसके पीछे कितना विज्ञान छिपा हुआ है—वह सारा-का-सारा विस्मृत कर जब कोई चीज एक विकृत अवस्था मे चली जाती है तब उसको तोडना हो तो हम को भी कोई एक्स्ट्रीम स्टेप लेना पड़ता है। तो यह स्टेप लेना पडेगा। और ऐसा स्टेप लेने की ताकत किसमे है? वह भी ब्राह्मणत्व में, जहाँ असली ब्राह्मणत्व है। इसलिये शंकराचार्यजी कहते हैं गीताभाष्य मे—ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म सुरक्षित रह सकता है। शंकराचार्यजी ब्राह्मण की बात नहीं करते, ब्राह्मणत्व की बात करते हैं। वैदिक धर्म माने मानव धर्म। मानव को यदि बचाना हो तो मानव मात्र को प्यार करने वाले, अपनाने वाले, सहजतया जिनमें शम, दम करने की शक्ति, तप करने की शक्ति और क्षमा करने की शक्ति और अन्दर-बाहर की आर्जवता हो। राजा की जगह लगा दोगे तो आया शत्रु, उसको क्षमा कर दिया। क्षमा करना ठीक है पर इससे गड़बडी भी हो सकती है। ब्राह्मणत्व को लेकर देश का नेतृत्व करने लगा। *उसको तो नेतृत्व का अधिकार ही नहीं है।* उसको राय देने का अधिकार है। शासन करने का, Lead करने का, रक्षा करने का अधिकार किसका है? उसके अन्दर क्षात्र धर्म चाहिये। ब्राह्मण उस काम को करने लगे। एक संन्यासी को बना दो आप देश का लीडर। तो वह सारा गडबड़-सड़बड़ कर देगा। चाहे जिसको वह क्षमा कर देगा। उसमे वह पात्रता ही नहीं है। *मैं अपनी साधना को इम्पोज (Impose) करना शुरू कर दूँगा। सबको क्षमा* कर दो। आपके एक गाल मे थप्पड मारा, दूसरा गाल सामने कर दो। इससे

गडबड हो रही है। अहिंसा का पूर्ण पालन तो यति के लिये बताया, वह भी विवेकानन्द जैसो के लिये नही। ज्यादा कोई गडबड करता तो वे आस्तीन ऊपर कर लेते । तो यह जो आ गयी एक विकृत अवस्था उससे छूटें। अतः समझ लेना—यह ब्राह्मणत्व है। इस ब्राह्मणत्व में है—ज्ञानम् विज्ञानम् आस्तिक्यम्। वह न जाने कितने जन्मों से साधना करता-करता आया और आकर इस अन्तःकरण को प्राप्त किया, उसके अनुकूल माता-पिता प्राप्त हुए। पर क्योकि यह कलियुग है इसलिये ध्यान रख लेना—भगवान् को इसमें कुछ गडबड करनी है। इसलिये एक ब्राह्मण कुल में भी आसुरी वृत्ति वाला बालक पैदा हो जाता है। इसलिये हम इसको सिद्ध मानकर नहीं चलते कि इसने एक ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है इसलिये यह ब्राह्मणत्व से युक्त ही है। इसमें ब्राह्मणत्व ही है—इसको सिद्ध मानकर नहीं चलना। हमको उस पर गौर करना होगा, विचार करना होगा। आजकल एप्टीच्यूड टेस्ट करते हैं ताकि उसके स्वभाव को पहचानें और हम अपने-आप को इस प्रकार स्वीकार करेगे तो जब हम ईश्वर की ओर बढना चाहेगे या अपने-आप का अभ्युदय सिद्ध करना चाहेंगे, तो इसमें मदद मिलेगी। इसलिये गीता में कहा है 'परधर्मो भयावहः' यदि परधर्म का पालन करोगे तो बडा भयकर हो जायेगा। आपके लिये, समाज के लिये भयंकर हो जायेगा क्योंकि आप एक परधर्म में जा रहे हैं। उसके पीछे कारण क्या है? निश्चित रूप से उसके पीछे अहंकार है, निश्चित रूप से उसके पीछे वासनाएँ हैं जिनके कारण आप उस परधर्म को अपना रहे हैं। हो सकता है उसके पीछे कोई विवशता हो। पर कुछ भी हो, आप अपने-आप को उसमें पूर्णतः अभिव्यक्त कर नही सकते। आप उसको करते हुए अपने अहंकार से छुटकारा पा नहीं सकते। आप उसको अपनाते हुए उस कर्म के द्वारा ईश्वर की अर्चना कर नहीं सकते। इसलिये आपका अध्यात्म विकास रुक जायगा। इसलिये कहा—'परधर्मो भयावहः'। जब हम स्वधर्म की बात करते हैं तो स्वधर्म को पहचानो—हमारा स्वधर्म क्या है? हमारा स्वभाव क्या है? हमारे अन्तःकरण की सरचना कैसी है? उसमें रुचियाँ क्या हैं, क्षमता क्या है, वैशिष्ट्य क्या है—उनको पहचानना पडेगा। यह जो ब्राह्मण का धर्म है, इसको पहचानना। इसको पहचान करके इसकी प्रतिष्ठा करना, इसको समाज मे आदर देना, उसको अपने अन्दर भी पहचानना और उसको लेकर आगे बढना। वैसे देखा जाय तो प्रत्येक व्यक्ति मे ये चारों

शक्तियाँ काम करती है। यह चार प्रकार की शक्ति किसी में प्रमुख रूप से होती है, किसी में गौण रूप से। प्रत्येक व्यक्ति 24 घण्टे के अन्दर चारो वर्णो मे जाता है। चार वर्णो की प्रक्रिया को करता है। 24 घण्टे का विचार करके देखे। प्रत्येक व्यक्ति जब सुश्रूषा करता है, सेवा करता है, स्वच्छता का पालन करता है तो वह शूद्रकर्म हो जाता है। जब अर्थ को लेकर व्यवहार करता है तो वैश्यकर्म हो जाता है। जब रक्षण को लेकर, शासन को लेकर व्यवहार करता है तो क्षात्रकर्म हो जाता है और जब सबको अपनाने का, प्यार देने का, संयम आदि करने का काम करता है तो वह ब्राह्मणकर्म हो जाता है। इस दृष्टि से इसका विचार करके देखना। भगवान् शकराचार्य कहते हैं—

स्ववर्णाश्रम धर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनानि भवेत् पुंसां वैराग्यादि चतुष्टयम्।।

बडा प्रसिद्ध श्लोक है शंकराचार्यजी का। अपने वर्ण और आश्रम के धर्म का पालन करके जो ईश्वर की प्रीति के लिये जीवनयापन करता है तो उसके अन्दर दिव्य गुण प्रकट होंगे। जो ब्राह्मण के गुण गिनाये हैं वे प्रकट होते हैं। उनसे भी आगे उत्कृष्ट गुण प्रकट होते है जिनसे ईश्वर का साक्षात्कार होता है। तो एक बात अच्छी तरह से पकड करके देखना। जब कोई स्वधर्म का पालन करता है, अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करता है तो उसमें परिवर्तन आना शुरू होता है। किसमे परिवर्तन आयेगा? वह साढे पाँच फुट का है तो क्या साढे छः फुट हो जायेगा? शरीर मे तो कुछ ही परिवर्तन आयेगा। वर्णाश्रम का कोई पालन करे तो उसके शरीर में तो कुछ परिवर्तन आयेगा। शरीर से अधिक परिवर्तन इन्द्रियों में आयेगा, इन्द्रियों की अपेक्षा अधिक परिवर्तन उसके अन्तःकरण में आयेगा। अन्तःकरण आमूलचूल तो नही बदल जायगा परन्तु उसके अन्तःकरण मे इतना परिवर्तन आयेगा कि ईश्वर तत्त्व का प्रकटन हो जायेगा। बहुत गम्भीर बात कह रहा हूँ। उस पर ध्यान देना, नही तो समझ में नही आयेगा।

सुकरात अपने शिष्यो के साथ बैठे हुए थे और उस समय सामुद्रिक लक्षणों को जानने वाला एक व्यक्ति आया। सामुद्रिक विद्या को जानने वाले चेहरे को देखकर बता देते है कि व्यक्ति का चरित्र कैसा है। उसका

स्वभाव कैसा है। देखें, हमारे यहाँ कितना सूक्ष्म चिन्तन हुआ है। यह शरीर मन का ही एक प्रोजेक्शन है। यह शरीर किसके अन्दर से निकला? मन के अन्दर से निकला। हाथ-पैर देखकर स्वभाव बता देते हैं। अंगूठा-अंगुलियाँ-चेहरा देखकर स्वभाव बता देते हैं। उसने सुकरात को देखकर बताया कि आप एक अत्यन्त कामुक व्यक्ति हैं। इस बात को सुनकर सुकरात के शिष्य बहुत नाराज हो गये। हमारे गुरुदेव के प्रति ऐसी बात कहता है—कैसा दुष्ट व्यक्ति है यह। इसको कुछ आता-जाता नहीं। सुकरात ने कहा—ऐसा मत कहो। पहले मैं ऐसा ही था। अब मैं ऐसा नहीं हूँ। मेरी साधना के द्वारा मेरे चेहरे में जो सूक्ष्म परिवर्तन हुआ है, उसको यह नहीं जान सकता। यह तो मोटे तौर पर देखकर, आँख, नाक की बनावट को देख करके इस बात को कह रहा है।

इस प्रकार साधना के द्वारा शरीर मे भी सूक्ष्म परिवर्तन आता है। विशेषकर आँखों में परिवर्तन आता है। व्यक्ति की आँखों को देखने से पता लग जाता है कि यह साधना करता है या नही करता। लोग कहते है—मै खूब ध्यान करता हूँ तो मैं खासतौर से उनके चेहरे को देखता हूँ और खासतौर से जब ध्यान करके उठता है तब आँखों को देखता हूँ। आँखों को देखकर ही पता लग जाता है कि वह ध्यान के समय सोया है या वास्तव में ध्यान किया है। इस प्रकार साधना के द्वारा इस अन्तःकरण मे परिवर्तन होता है। मुख्य बात यह बतायी जा रही थी कि स्वभाव को पहचानना। तो ब्राह्मण के स्वभाव के विषय मे यह बात आ गयी।

**शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।**
**दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्। 18/43**

क्षत्रिय मे ऐसे गुण होते है। वे और अधिक प्रकट होना शुरू हो जाते है। शौर्य है, तेज है, धृति है—धारण करने की शक्ति। ध्यान देवे, परशुरामजी के पास कर्ण अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने गया था। मै ब्राह्मण हूँ—ऐसा उसने अपना परिचय दिया। परशुरामजी की प्रतिज्ञा थी कि मैं ब्राह्मणों के अलावा अन्य किसी को अपना ज्ञान नहीं दूँगा। कर्ण ने उनसे विद्या प्राप्त करली। समावर्तन का दिन निकट था। एक दिन गुरुदेव उसकी गोदी मे सिर रखकर आराम कर रहे थे। उसी समय एक कीडा

उड़ता हुआ आया और कर्ण की जाँघ पर बैठकर उसको खाना शुरू कर दिया। खाते-खाते वह गहरा अन्दर जाता गया। कर्ण की जाँघ से खून निकलना शुरू हो गया, खून बहकर परशुरामजी को भिगोने लगा। उससे परशुरामजी उठ गये। देखा, तो चारो तरफ खून। कर्ण से पूछा—यह क्या है? कर्ण ने कहा—एक कीडे ने आकर खाना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, मैं हिलूँगा तो आपकी नींद मे बाधा पड जाएगी। नींद उचट जाएगी। इससे उसे तो शाबासी मिलनी चाहिये थी, पर उन्होने कहा—सच बता, तू कौन है? ब्राह्मण ऐसे खून को देखकर विचलित हो जाता है। तू ब्राह्मण नही है। तू असलियत बता। असलियत बताने पर उसको शाप दे दिया।

यह एक खोज है, उसको हमने मेण्टेन (Maintain) किया, उसकी रक्षा की, उसको बढाया। क्षत्रियों के ऐसे वर्ग को तैयार किया जो देश की रक्षा करने वाले थे। मुख्यतः ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व दोनों मिलकर ही संस्कृति को आगे बढाते हैं, राष्ट्र को आगे बढ़ाते हैं। यह बात पुराणों एव उपनिषदों मे आयी। जब आपस में झगड़ा होना शुरू हो गया तो दोनों को समझाया। ब्राह्मणत्व एवं क्षत्रियत्व मुख्य हैं। रक्षा करने वाले, शासन करने वाले क्षत्रिय और उनको दिशा देने वाला ब्राह्मण। राजा जब सिंहासन पर बैठता था तो कहता था—मैं सबके ऊपर हूँ। ब्राह्मण पुरोहित उसके सिर पर डण्डा रख कर कहता था कि तुम धर्म के द्वारा शासित होने वाले हो। तो ये जो शक्तियाँ यहाँ पर बतायी थीं, उनको समझना। पर इन सबका रूप विकृत भी हो गया। इस विकृति को दूर करना हमारा धर्म हो जाता है। इस विकृति को स्वयं मे से दूर करना, समाज में से दूर करने का प्रयास करना चाहिये।

आश्रम धर्म क्या है—इस पर भी हमको विचार करना है। वैदिक सनातन धर्म क्या है? शंकराचार्यजी कहते हैं—यह वर्णाश्रम धर्म। वैदिक सनातन धर्म वर्णाश्रम धर्म है। आश्रम धर्म को समझे बिना आप सिर्फ वर्ण-धर्म की बात करते है तो अपने-आप में अधूरी बात हो जाती है। वर्ण-धर्म की बात आती है पूरे समाज को लेकर। आश्रम-धर्म की बात आती है एक व्यक्ति को लेकर। चार आश्रम है—ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम। उनका विश्लेषण किये बिना, मनन किये बिना यदि आपने केवल वर्ण-धर्म की बात करना शुरू

कर दिया तो बहुत बडी विकृति आयेगी। बहुत बडी एक कुण्ठा उत्पन्न हो जायगी। अच्छे-से-अच्छे विद्वानो में उस कुण्ठा के दर्शन, उस जडता के दर्शन होते है। यह शंकराचार्यजी के समय से ही शुरू हो गया था। इसे दृष्टान्तो के द्वारा बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार से ब्राह्मणों मे, आचार-विचार में कुछ साधना करते नहीं, अग्निहोत्रादि करते नहीं, आचार-विचार का ध्यान करते नहीं, केवल ब्राह्मण के घर में जन्म लिया है, इसको लेकर मिथ्या अभिमान पाले हुए समाज को और अधिक विभाजित कर रहे है।

एक दृष्टान्त के द्वारा बताया—किस प्रकार क्षत्रिय का स्वभाव होता है। छोटा-सा दृष्टान्त है कर्ण और परशुराम का, मैंने आपको बता दिया। एक दूसरा दृष्टान्त है—एक बनिया था। अपनी दुकान पर बैठा हुआ अपनी मूँछों को बट दे रहा था। इसका क्या मतलब होता है? वीर पुरुष जब किसी को चुनौती देते है, अपनी वीरता की बात करते है तब अपनी मूँछ को बट देते है। मूँछ को बट देते हुये कुछ सोच रहा होगा। उसी समय उसकी दुकान के सामने से एक ठाकुर निकला और उसकी नजर उस बनिये पर पडी। नजर पडते ही उसने टोक दिया—अरे! उसको देखकर वह और अपनी मूँछ को मरोडने लगा। मरोडने लगा तो एक प्रकार की चुनौती। और क्षत्रिय के सामने चुनौती देना! वह सहन कर नहीं सकता। उसने कहा—अरे, तू मूँछ मरोडता है? तू क्या समझता है अपने-आप को? बनिये ने कहा—मूँछ मेरी है, मैं मरोडूँगा इसको। आपको क्या तकलीफ हो रही है? तो निकाली तलवार और कहा—मूँछ मरोडता है मेरे सामने! मैं काट करके रख दूँगा। उसने कहा—काटने वाले कोई और होते हैं। काटने की ताकत है तेरे अन्दर तो तेरे घर में जो भैस बँधी है उसको काट तू—तब जानूँ। वह तुरन्त अपने घर मे गया, घर मे जो भैस बँधी हुई थी उसे काटा और लौटकर खून से लथपथ तलवार को लेकर सामने आ गया और बनिये को ललकारा। यह देखकर कि ठाकुर वास्तव में भैस को काट करके आया है। बनिया बोला—घणी खमा। मैं अपनी मूँछ को नीचा कर लेता हूँ। अब तो अच्छी तरह समझ में आ गया—बनिये का स्वभाव कैसा होता है और क्षत्रिय स्वभाव की विकृत अवस्था क्या है? एकदम से बहककर चला गया। पर कुछ उसके अन्दर

से प्रदर्शित हो रहा है । उसमे बुद्धिमत्ता का अभाव है। और बनिये का स्वभाव कैसा है? उसने अपनी बात भी कह दी और अवसर आया तो मूँछ को नीचा भी कर लिया।

एक नाई था। बाल काट रहा था बनिये के। एक ऐसा अवसर आया, जब पूरे बाल कट गये। खुली हुई टाट को देखकर, पूरे बाल हटा दिये तो नाई के मन में कुछ आ गई। उसने जोरदार ठोला मारा उसकी टाट पर। ऐसे दो-तीन ठोले मारे। बनिये ने सोचा—कभी-कभी मालिश करता है। आज ठोले क्यो मार रहा है? पर तुरन्त उसने कोई विरोध नहीं किया। जब पूरा काम उसका हो गया तो उसने दुगुने पैसे दिये। हमेशा एक रुपया देता था, उस दिन दो रुपये दिये उसको। डबल दे दिया। नाई ने सोचा—यह तो अच्छी कमाई हो गयी। ठोला मारने से कुछ मिल गया। उसके बाद में वह एक ठाकुर के यहाँ पर गया। क्षत्रिय राजपूत के यहाँ गया। वहाँ भी ऐसा अवसर होगा। वहाँ पर भी उसने ठाकुर का मुण्डन किया और मारा जोरदार ठोला। तो ठाकुर ने पास में रखी हुई तलवार लेकर नाई को मारा उल्टी तरफ से। आ गई बात समझ मे! तो ऐसी कुशलता उस वणिक के अन्दर थी कि नाई से उसका सम्बन्ध भी नहीं बिगडे और उसको दण्ड भी मिल जाय। एक रुपया ही तो लगा। खुद उससे भिडता, खुद उसको डॉटता, आखिर तो उस नाई के सामने हजामत के लिये सिर झुकाना ही पडेगा। छुरा उसके पास में, कभी जानबूझ कर लगा दे और फिर क्षमा माँगले! तो चालाकी से उसको ठाकुर से दण्ड दिलवा दिया।

जन्म से ही हर व्यक्ति में अपना एक सूक्ष्म स्वभाव होता है। इस रहस्य को समझ कर भारतीय परम्परा मे कला, शिल्प आदि ज्ञान की विविध शाखाओं को वंश-परम्परा द्वारा सुरक्षित रखा व विकसित किया। इसमें आयी विकृति को दूर करके वंशानुगत ज्ञान-परम्परा को बनाये रखने में बहुत लाभ है। इसको सुरक्षित रखे। अभ्युदय और निःश्रेयस दोनो की प्राप्ति के लिये यह चतुर्वर्ण-व्यवस्था अद्भुत है। अभ्युदय अर्थात् सर्वाङ्गीण विकास के लिये। एक सुथार का लडका जन्मजात कुशल होता है, बचपन से ही वह औजारो को हेण्डल करना शुरू कर देता है। घुटनों के बल चल रहा है और अभी से औजारों को पहचान रहा है। कैसे

ठोकना, कैसे औजारो को काम मे लेना—वह बचपन से ही देख रहा है—सीख रहा है। बचपन से ही ब्राह्मण का बालक अपने घर मे मन्त्रों को सुन-सुन करके उनको पकड रहा है। इसलिये कई जगह ऐसा परीक्षण होता है—जब बच्चा छोटा होता है तब उसके सामने एक चाकू रख देते है, एक कलम रख देते है, कुछ पैसा रख देते हैं और देखते हैं, बच्चा किस तरफ बढता है? अगर वह पैसे पकडता है तो समझ लो वह व्यापार में ठीक रहेगा। चाकू को पकडता है तो लडाई-झगडे में ठीक रहेगा। अगर वह कलम की ओर जाता है तो वह लेखन और अध्ययन में ठीक रहेगा। इस प्रकार से स्वभाव को समझकर उसको सुरक्षित रखना। जब यह सुरक्षित नहीं रहा और विकृत रूप अपने स्वभाव को, स्वकर्म को, अपने स्वधर्म को लेकर होने लगा तब चारो तरफ आपस में लडभिड करके, टूट करके और समाज के टुकडे-टुकडे होकर हमारे ही बंधु अब हमारे विरुद्ध आ करके खडे हो गये।

आप लोगो के लिये इस सारे विवरण की आवश्यकता नहीं है। पर जब मै समाज-विशेष में जाता हूँ—चाहे क्षत्रिय समाज हो, चाहे ब्राह्मण सभाज हो या वैश्य, शूद्र समाज हो, तब मैं उनको ये सब बातें बताता हूँ। इसको लेकर पूरे समाज में क्रान्ति को लाकर अपनाना पडेगा। बाहरी आक्रमणकारी लोगों के कारण, हमारी मूर्खता के कारण, हमारे स्वयं के धर्म के तत्त्व को न समझने के कारण आज हमारा भारत देश ऐसी विकृत अवस्था मे चला गया है। इसलिये कई दफे कह देता हूँ—जरूरत पडे तो शूद्र के साथ मे एक ही थाली में खाना खा लेना, बाद में जाकर अखाद्य-भक्षण से जनित मलिनता को हटाने के लिए कुछ प्रायश्चित्त भले ही कर लेना। उनको अपनाने की आवश्यकता है। हमारे ही बंधु हमारी ही मूर्खता के कारण हमारे धर्म को छोडकर अलग हो गये। कश्मीर के राजा से वहाँ के सभी मुसलमानो ने कहा—हम वापस हिन्दू बनने को तैयार है। काशी के पडितों को बुलाया, उन्होने मना कर दिया—हमारे यहाँ ऐसा कोई विधान नही है। रवीन्द्रनाथ टैगोर अत्यन्त ही दुःखी होकर कहते है—इस हिन्दू समाज से बाहर जाने के तो अनेक रास्ते है, अन्दर आने का एक भी रास्ता नही है। इसलिये सन्तो ने कहा—

**जात-पात पूछे ना कोय, हरि को भजे सो हरि का होय।**

ऐसा उन्होने कह दिया। तो खैर! यह बात थी वर्णधर्म के विषय मे।

वर्ण–धर्म को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम आश्रम–धर्म को नहीं समझते। आश्रम–धर्म एक व्यक्ति को लेकर। जीवन की सौ वर्ष की आयु मानें तो उसमे 25 वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम, 25 वर्ष गृहस्थाश्रम, 25 वर्ष वानप्रस्थ और 25 वर्ष सन्यास आश्रम के। कभी यह व्यवस्था रही होगी। आज तो यह व्यवस्था अव्यवस्था या विकृत अवस्था में चली गयी। जब आश्रम व्यवस्था मे दोष आ गया तो वर्ण–व्यवस्था के सुरक्षित रहने का प्रश्न ही नहीं है। क्योंकि आश्रम–व्यवस्था मे से गुजरता हुआ व्यक्ति शनैः–शनैः करके अपने चित्त को शुद्ध करता हुआ आगे जाता था, ईश्वर की तरफ बढता था। अब वह प्रक्रिया दोषपूर्ण हो गयी। ब्रह्मचर्य आश्रम में कितना बडा दोष आ गया! कितने बालक इसका ठीक से पालन करते हैं! ब्रह्म शब्द का अर्थ है—

**वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म—वेद, तत्त्व, तप।**

अतः ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ—वेदचर्या, तत्त्वचर्या और तपःचर्या। तत्त्वतः आज न वेदचर्या है, न तत्त्वचर्या है और न तपश्चर्या है। ब्रह्मचर्य आश्रम आज किस विकृत अवस्था में चला गया है! जो आधार है, वहीं पर ही दोष आ गया। आधार में ही दोष आ गया तो गृहस्थाश्रम कैसे ठीक होगा! अब गृहस्थाश्रम में ही कितने दोष आ गये—यह आप देख लो। गृहस्थाश्रम, जहॉ से बालक निकलते है, वहॉ पर ही दोष आ गया तो इसमें ब्रह्मचर्य आश्रम कैसे सुरक्षित रहेगा, वानप्रस्थ आश्रम और संन्यास आश्रम कैसे सुरक्षित रहेगा? नही रहेगा।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे इस वर्णाश्रम धर्म को कैसे समझें, कैसे सुरक्षित रखें, कैसे इसको बनाये रखें, इसका परिवर्तित रूप क्या है? वर्णाश्रम धर्म को अपनाये बिना यह जो हमारा वैदिक सनातन धर्म है, यह पंगु की तरह रहेगा, आगे बढ नहीं पायेगा, चल नहीं पायेगा। परन्तु यदि आपने पहली वाली बात को पकडकर रखा तो निश्चित रूप से टूटकर अपनी जगह से च्युत हो जायेगा। नष्ट तो नही होगा। कही और प्रकट हो जायेगा। इस प्रकार से वर्णाश्रम व्यवस्था को समझने के लिये, आपस में जोडने के लिये चार पुरुषार्थों की बात हमारे यहॉ की गई है। एक व्यक्ति आश्रम–धर्म का पालन

करता हुआ एक वर्ण-विशेष का भी होता है और उसके सामने चार पुरुषार्थ रखे गये हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—पुरुषार्थ। थोडी-सी कठिन बात आपके सामने रखूँ तो धर्म पुरुषार्थ के द्वारा सत् के ऊपर आया बन्धन ढीला पडता है। अर्थ पुरुषार्थ की पूर्ति के द्वारा उसके चित् का जो बंधन है वह ढीला पडता है। काम पुरुषार्थ के द्वारा आनन्द अवच्छेद ढीला पडता है। सत्-चित्-आनन्द की पूर्णता की अनुभूति को ही तो मोक्ष कहते हैं। इसी को आत्मा कहते हैं। इसी को परमात्मा कहते हैं। यह मैंने अतिसंक्षेप मे आपको बताया। पर मनन के द्वारा समझ में आयेगा, ऐसे समझ में नहीं आयेगा। यदि आपने मोक्षप्राप्ति को काल-विशेष या आश्रम-विशेष मे की जाने वाली साधना मान लिया तब भी आपने इसको सही ढंग से नहीं समझा। यदि आपने समझा धर्म तो ब्रह्मचर्य आश्रम मे, अर्थ और काम गृहस्थ मे ही होते हैं और वानप्रस्थ मे भी इसका कुछ उन्नत रूप समझ लो, दिव्य रूप समझ लो और मोक्ष पुरुषार्थ की साधना संन्यास आश्रम में होती है तो आपने बिल्कुल अर्थ का अनर्थ कर दिया। एक प्रकार से देखा जाय तो चारों पुरुषार्थो की साधना एक साथ चलती है। ब्रह्मचर्य आश्रम में भी चारों पुरुषार्थो को देखना।

धर्म पुरुषार्थ क्या है? वॉट इज दी लॉ ऑफ लाइफ? संसार किस नियम से चल रहा है? जीवन किस नियम से चल रहा है? जीवन को किस नियम के द्वारा चलाना चाहिये, जिसके द्वारा हम आगे बढे? ब्रह्मचर्य आश्रम अपरा विद्या को प्राप्त करने के लिए होता है। किन्तु सभी अपरा विद्याओं के आधार में परा विद्या को रखा जाता था। ब्रह्मचर्य आश्रम मे इन्द्रियों का संयम कैसा होना चाहिये, मन का संयम कैसा होना चाहिये, अपने समाज के लोगों से कैसा व्यवहार, पर्यावरण से कैसा व्यवहार, आगे गृहस्थाश्रम कैसे चलाना चाहिये—यह सब बताया जाता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में आप खूब ब्रह्मचर्य का उपदेश देते रहो, उनको सिखाते रहो और गृहस्थ में जाते ही, उनको मालूम ही नही—पत्नी से कैसे व्यवहार किया जाय? इस स्थिति में गृहस्थाश्रम कैसे चल पायेगा? अतः आगे के आश्रमों का सारा ज्ञान बडे कलात्मक ढंग से ब्रह्मचारी के सामने प्रस्तुत किया जाता था। इसलिये अकेला गुरु आश्रम नहीं चला सकता था। साथ में गुरु-पत्नी भी चाहिये, बच्चे भी चाहिये। वहॉ वह ब्रह्मचारी देखता

था—गुरु अपनी पत्नी से कैसे व्यवहार कर रहे हैं? कितनी निर्मलता से, कितने प्रेम से, कितनी निश्छलता से, अन्य जो दूसरे गृहस्थी आ रहे है उनसे वह कैसे व्यवहार कर रहे हैं। वह सब देखता था। वे गुरु अपने बालकों से, अपनी पुत्रियों से कैसे व्यवहार कर रहे हैं? उनमे कितनी असंगतता है, कितनी उनमे निर्मलता है? उनके सामने प्रचुर धन आता था, राजादि आदि थे, अर्थ उनको देते थे, उस समय गुरु कैसे उनके साथ व्यवहार करते है—वह देखता था। सारा गृहस्थ का प्रशिक्षण उसका ब्रह्मचर्य आश्रम में होता था। कभी आपने विचार किया गुरुकुल-परम्परा पर? अब आज कहते है सब-कुछ बच्चो को बता दो—बच्चे कैसे पैदा करते है। यह तो कुत्ते-बिल्ली को भी मालूम है। इसको सिखाने की क्या आवश्यकता है? परन्तु गुरुकुल में बडी सूक्ष्मता व दिव्यता से काम की शक्ति को बताते हुए समझने की व उसके पार जाने की कला भी सिखा दी जाती थी। यह ब्रह्मचर्य आश्रम हुआ।

धर्म पुरुषार्थ—यह पूरे जीवन-भर चलेगा। ब्रह्मचर्य आश्रम मे ब्रह्मचारी का धर्म क्या है? किस प्रकार से वह तप के द्वारा सारे जीवन को समझे, सारी इन्द्रियों पर संयम करना सीखे—यह धर्म की साधना तो सारे जीवनपर्यन्त चलती रहेगी। ब्रह्मचारी धर्म पुरुषार्थ कैसे अर्जन करता था? अपने वीर्य की रक्षा के द्वारा, इन्द्रियों को वश में रखकर, मन को वश में रखकर। कैसे? अपने गुरु के प्रति अपनी श्रद्धा को अभिव्यक्त करता था, उनसे ज्ञान प्राप्त करता था। सभी ब्रह्मचारी इस प्रकार धर्म का अर्जन करते थे।

पुरुष के द्वारा जो अर्थ्यमान होता है उसी को तो पुरुषार्थ कहते है। पुरुषार्थ का मतलब क्या? पुरुष के द्वारा अर्थ्यमान। मतलब, पुरुष जिसको चाहता है। धर्म पुरुषार्थ अर्थात् धर्म पुरुष के द्वारा अर्थ्यमान है। मनुष्य स्वयं चाहता है—वह अनुशासन को सीखे, जीवन के नियम को सीखे, उसको अपने जीवन में उतारे। इस प्रकार धर्म पुरुषार्थ के लिये वह कोशिश करता था ब्रह्मचर्य आश्रम मे। अर्थ पुरुषार्थ को वह कैसे अर्जन करता था? क्या वह उस समय पैसा वगैरह लाता था? वह कौन-से वित्त का अर्जन करता था? वह ज्ञान का अर्जन करता था, गायत्री मन्त्र का अभ्यास करता था। अष्टमूर्ति की उपासना करता था। दैवी सम्पत्ति का

अर्जन करता था। दीपावली के दिन किस-किस की पूजा करते हैं, लक्ष्मीजी, इन्द्रजी और कुवेर की। कुवेर मानुषी वित्त, पार्थिव वित्त का अधिष्ठाता देवता है। इन्द्र दैवी-सम्पत्ति का अधिष्ठाता देवता और लक्ष्मी आत्म-सम्पत्ति है। आत्मश्री है, मोक्षश्री है—उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी। तो यह कुवेर, इन्द्र और लक्ष्मी। यहाँ पर ब्रह्मचर्य आश्रम मे ब्रह्मचारी कौनसे वित्त का उपार्जन करता था? दैवी गुणों का सम्पादन करता था और देव की उपासना करता था। दैवी वित्त का वह अर्जन करता था। गायत्री मन्त्र उसको प्राप्त था। उसके द्वारा वह गति करता था, स्पन्दित होता था और अपने में सद्गुणों का, जिनका गीता में दैवी सम्पत्ति के रूप में उल्लेख किया है, उनका वह अर्जन करता था। शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान और 'अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः'—इस प्रकार अर्थ पुरुषार्थ का अर्जन हो गया।

तीसरा काम पुरुषार्थ है। इसका ब्रह्मचारी कैसे अर्जन करता था? काम पुरुषार्थ को ब्रह्मचारी कैसे सिद्ध करता था? काम का अर्थ सीधे प्रेम से, सुख से। क्यों भई, वह सुख प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है? क्या वह सुख नहीं चाहता? अरे, एक बालक भी सुख चाहता है, हरेक किशोर, युवा सुख को चाहता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में भी वह काम पुरुषार्थ का अर्जन करता था। काम पुरुषार्थ में एक सौन्दर्यबोध को परिष्कृत करता था। जिसको सौन्दर्यबोध ही नहीं, वह काम पुरुषार्थ का अर्जन कैसे करेगा? जिसमें सौन्दर्यबोध अविकसित है वह तो पशु से भी गया-बीता हुआ। पशु में भी एक सौन्दर्यबोध होता है। उनका अपना एक सौन्दर्यबोध होता है। तो सौन्दर्यबोध को परिष्कृत करने की प्रक्रिया उसको सिखायी जाती थी। दूसरा उसको सुख अनुभव करने के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों से परिचय कराया जाता था। सुख को कैसे प्राप्त करे, आनन्द को कैसे प्राप्त करे—इस कला को उसको सिखाया जाता था। इस पर मनन करे। गृहस्थ में काम पुरुषार्थ का रूप और है। ब्रह्मचर्य आश्रम मे काम पुरुषार्थ का रूप और है। नही तो उसका जीवन कैसे चलेगा? बिना काम पुरुषार्थ के जीवन में सुख नहीं, सौन्दर्य नही, प्रेम नही। प्रेम कैसे करना? अपने सहब्रह्मचारियो से प्रेम करना, गुरु के प्रति प्रेम, गुरुमाता के प्रति प्रेम। पशु, पक्षी, लताओ से प्रेम। अष्टमूर्ति की उपासना। इस प्रकार प्रेम को परिष्कृत करना, परिशुद्ध

करना, सौन्दर्यबोध को परिष्कृत करना। इस प्रकार से कलाओ का भी वहाँ प्रशिक्षण होता था। सूक्ष्म कलाएँ, जो ललित कलाएँ है वे भी उसको रुचि के अनुसार सिखायी जाती थी। संगीत के द्वारा सुख मिलता है, चित्रकला के द्वारा, काव्य–रचना के द्वारा सुख मिलता है। काव्य–पाठ से सुख मिलता है। इन सारी कलाओं से सुख प्राप्त करने की कला उसको सिखायी जाती थी। यह हो गया काम पुरुषार्थ।

मोक्ष पुरुषार्थ कैसे? मोक्ष पुरुषार्थ कैसे सिद्ध होता है ब्रह्मचर्य आश्रम में? अपने को विस्तृत करना, अपने को कमजोरियो से मुक्त करना, अपने को अवगुणों से मुक्त करना। यह मोक्ष पुरुषार्थ है। द्वैत से अपने–आप को मुक्त करना। मोक्ष पुरुषार्थ में परा विद्या की ओर उन्मुख होते हैं। 'द्वितीयात् वै भयं भवति' (छान्दोग्य उपनिषद् ——जहाँ द्वैत है वहाँ भय है।) हमारे अन्दर सारे–के–सारे——काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदि सब पडे हुए है। इनसे मुक्त होने का उसको एक प्रशिक्षण दिया जाता था। आत्म–तत्त्व क्या है, ईश्वर तत्त्व क्या है——इसको बताया जाता था। यह मोक्ष की साधना भी चलती थी——परा विद्या का परोक्ष ज्ञान। पात्र होगा तो ज्यादा पकड लेगा। पर एक होता है अपरोक्ष ज्ञान और एक होता है परोक्ष ज्ञान। उसको बताया जाता था कि आत्मा का स्वरूप यह है और इसको इस प्रकार से अनुभव किया जा सकता है।

इसी प्रकार से चारों–के–चारो पुरुषार्थ–प्राप्ति के लिए गृहस्थाश्रम मे भी प्रयास किया जाता है। आपने सीख लिया——धर्म क्या होता है? यज्ञ क्या होता है? दान क्या होता है? तप क्या होता है? भलाई क्या होती है? जब आप अर्थ का अर्जन कर रहे हो, उसका विनियोग करें। गृहस्थाश्रम में धर्म का व्यावहारिक रूप प्रारम्भ होता है। पूरे–के–पूरे चारों आश्रमों की, चारों वर्णो की, पूरी भारतीय संस्कृति की, पूरी सनातन धर्म की यह आधारभूत मूल इकाई है। चाणक्य कहते है——धन्यो गृहस्थाश्रमः—— गृहास्थाश्रम धन्य है। क्योंकि गृहस्थ बाकी तीनो आश्रमो का भरण–पोषण करता है। पाणिग्रहण संस्कार से गृहस्थाश्रम की साधना शुरु होती है। इसमें धर्म पुरुषार्थ का क्या रूप होता है? उस समय तो कुछ पढा–पढा ही था। गृहस्थ के बारे में कुछ सुना ही था। अब जीवन में एक जीवनसाथी आ गया। अब उसके जीवन में कुछ प्राणी और आयेंगे।

ब्रह्मचर्य जीवन का आश्रम या विद्यार्थी जीवन का आश्रम तो मानो किसी ऐसे जीवन का आश्रम है जहाँ मानो किसी पहाडी के ऊपर खडे हुए, जहॉ से दूर-दूर तक दिखाई देता है और ज्यों ही आप गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करते है तो मानो आप किसी जंगल में आ गये। एक जंगल में प्रविष्ट हो गये। चारों तरफ वृक्ष। अब दूर-दूर तक नहीं देख सकते। दोनों मे इतना अन्तर आ गया। गृहस्थाश्रम में क्या साधना साधनी है? अभी तो आप संक्षेप मे इतना ही समझ लीजिये कि इस समय भी चारों पुरुषार्थ की साधना चलती है पर उसका रूप कुछ और हो जाता है। वानप्रस्थ आश्रम में आ गये, उस समय भी चारों पुरुषार्थ की साधना चलती है, उसका रूप कुछ और हो जाता है। संन्यास आश्रम में भी चारो पुरुषार्थ की साधना चलती है, उसका रूप कुछ और हो जाता है। चारो आश्रमो में चारों पुरुषार्थ की साधना चलती है तब जाकर जीवन की पूर्णता को प्राप्त करते हैं।

रामकृष्ण परमहंस के जीवन मे यदि शारदा माता नही आती तो शायद उनके जीवन में कुछ कमी रह जाती। हमारी दृष्टि से कुछ कमी रह जाती। वे तो अपने-आप में अवतार ही थे। पूर्ण ही थे। हमारी दृष्टि से कमी रह जाती। इसलिये जब मॉ शारदा वहाँ पहुॅची तो उन्होने पूछा—तुम यहाँ किसलिये आयी हो? वहॉ मॉ शारदा कहती है—'तुमको गिराने के लिये नहीं आयी हूँ, तुमको उठाने के लिये आयी हूँ'। कितनी अद्भुत बात कही—तुमको गिराने के लिये नहीं, तुमको उठाने के लिये आयी हूँ।

शारदा मॉ न आती तो हो सकता है रामकृष्ण परमहंस अधिकतर समाधि में ही डूबे रहते। शारदा मॉ आयी। अनेक शिष्य आये। सबको आनन्द का, भक्ति का वितरण किया गया। रामकृष्ण की दिव्यता का और अधिक प्रदर्शन हुआ। मैं प्रदर्शन ही कहूँगा। कमी-पूर्ति की—ऐसा क्यो कहूॅ! प्रदर्शन हुआ कि किस प्रकार से पार्टिसिपेट करते है। कितने-सारे उनके पुत्र हो गये। सारे शिष्य उनके पुत्र ही तो थे। सबको अपनाया। सबको बताया। इस प्रकार से इस निवृत्ति के पथ मे भी, सन्यास आश्रम मे भी चारो पुरुषार्थो को समझा जा सकता है। इस प्रकार यदि हम इस वर्ण-आश्रम धर्म को समझते है तो हमारी समझ, इस वैदिक सनातन धर्म के बारे मे बढ जाती है।

# नवाँ प्रवचन

प्रातःकाल के सत्र मे देखा कि किस प्रकार से समाज को लेकर और व्यक्ति को लेकर वर्ण और आश्रम का प्रतिपादन वैदिक सनातन धर्म करता है। वैदिक सनातन धर्म वर्तमानजीवी धर्म है क्योंकि सारा यथार्थ है, वह वर्तमान में है। वर्तमान मे कोई व्यवस्था बनायी जाती है पर वह कभी अतीत की हो जाती है। अतीत की व्यवस्था वर्तमान के अनुसार यदि अपने-आप को नहीं बदले तो वह व्यवस्था बाँधने वाली सिद्ध होती है। इसलिये इन व्यवस्थाओं के तात्विक स्वरूप को हमने समझा। आश्रम-धर्म, वर्ण-धर्म और पुरुषार्थ चतुष्टय। इनका तात्त्विक रूप हमने समझा। इस तात्त्विक रूप की समझ ही हमारे अन्दर ऐसी समझ और शक्ति पैदा करती है कि हम हर युग मे इसको अपना सकते है। हर जगह हम इसको अपना सकते हैं। तो एक तन्त्र को समझा, एक मोडल को समझा, जिसके अनुसार हमारा अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्ध होता है। वैदिक सनातन धर्म किसी व्यवस्था-विशेष में बँधा हुआ नहीं है। वैदिक धर्म किसी मानव-निर्मित शास्त्र-विशेष में भी बँधा हुआ नहीं है। इसका कोई निश्चित केन्द्र नहीं है जहाँ से इसको पकड करके, घेर करके नष्ट किया जा सके। नष्ट अभी तक हुआ नहीं और आगे भी होगा नही। हमे कोई घेरा बनाकर बाँधने की कोशिश करेगा तो हो सकता है हम उससे च्युत हो जायँ। उस स्थान से सनातन धर्म का पालन बन्द हो जाय। सनातन धर्म का जो असली रूप है वह बहु-केन्द्र वाला है और सारी व्यवस्थाओं में किसी शास्त्र-विशेष, किसी व्यक्ति-विशेष से भी वह प्रतिबद्ध नहीं है। इसलिये हमारे यहाँ पर एक दर्शन की बात आयी। वह हमारा वैदिक सनातन धर्म का हृदय है, वैदिक सनातन धर्म की आत्मा है। उसको आत्मदर्शन या अद्वैत दर्शन कहते हैं। शास्त्र के साथ-साथ वैदिक सनातन धर्म लोकाचार को, लोकजीवन को, लोकशास्त्र को, लोकमान्यता को भी बहुत महत्त्व देता है। अभी शास्त्र और लोकजीवन—इस पर बहुत सूक्ष्म चिन्तन चलना चाहिये।

यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नाचरणीयम् नाचरणीयम्।

शुद्ध है। शास्त्र के अनुसार सब ठीक है। पर लोकविरुद्ध है तो नाचरणीयम्। ऐसी बात का आचरण नहीं करना चाहिये। वह जो सनातन बात बतायी, कुछ सनातन तथ्य बताये, कुछ सनातन धर्म के मूल्य बताये—इन सबके पालन के लिये हमको एक गुरु मिलता है, एक तरीका मिलता है। वह लोक–आचरण के द्वारा हमको परिभाषित करता है। पर लोक का अर्थ हुआ आम जन। लोक के तीन अर्थ होते हैं। लोक का अर्थ होता है प्रकाश। प्रकाश माने जो फैलता है, प्रसन्न करता है। लोक का अर्थ हमारे 14 भुवन है—'आब्रह्मभुवनाल्लोकाः' गीता में आया है। लोक का तीसरा अर्थ होता है आम जन, जो सबके द्वारा मान्य, सबके द्वारा स्वीकृत। लोकजीवन में शास्त्र किस प्रकार से झरता हुआ, रिसता हुआ, बहता हुआ, फिल्टर होता हुआ, पर्कोलेट होता हुआ, परीक्षित होता हुआ पहुँच जाता है। तो लोक–ज्ञान मे एक विद्वत्ता उपलब्ध नहीं होगी। पर जीवन की, धर्म की एक व्यावहारिक परिणति हमको वहाँ पर दिख जाएगी।

वेन राजा का नाम आपने सुना होगा। भागवत मे एक कथा आयी है। वेन राजा का जब अत्याचार बढ गया तो लोकशक्ति ने, ऋषियों ने मिलकर उसका वध कर दिया और फिर उसके शव का मंथन किया तो पहले उसमे से निषाद निकले और उसके पश्चात् मे पृथु राजा आया। यह निषाद लोकजीवन का प्रतीक है। इसलिये जब हम राम की बात करते हैं और गुह की बात नही करें तो बात बनती नहीं है। कृष्ण की बात करें और गोपियो की बात न करें तो कृष्ण के बारे में पूरा जान नही पाते। इसलिये इस पर आप लोग मनन करना। लोकशास्त्र में इन दोनों के सम्मिलित रूप का हम कुछ आभास पाते है। वैदिक सनातन धर्म का एक व्यावहारिक रूप क्या होना चाहिये?

आज अगर हमारे धर्माचार्य वर्ण एवं आश्रम की बात को पकडकर बैठ जायँ तो हमे लगेगा जैसे बहुत सीमित हो गये। हम माइनोरिटी में आ गये। जबकि हमने यदि इनकी सही आत्मा को पकड लिया और इन आश्रम, वर्ण और पुरुषार्थ चतुष्टय को पकड लिया, तो फिर हम चाहे अन्त्यजो के पास चले जाएँ, चाहे गिरिजनो के पास चले जाएँ, चाहे हम वनवासियो के पास चले जाएँ, हम उनके साथ एक आत्मीय सम्बन्ध

स्थापित कर सकते हैं। उनके अपनत्व को देख सकते हैं और उनको एक अपनत्व दिखा सकते हैं। इसलिये आप जो पूर्वाचल में काम करते हैं, वहाँ पर भी आप जाकर बता सकते हैं—वो देखो, आपके जीवन में एक सन्तो की शृंखला आयी। खूब-सारे सन्त पैदा हुए। वो किस जाति के हैं। अधिकतर वे ब्राह्मणेतर जातियों मे उत्पन्न हुए। वे विद्वानों के घर उत्पन्न नहीं हुए। वह चाहे रैदास हो, चाहे वह कबीर हो। इसी प्रकार से राजस्थान में कर्माबाई हो, फुलाबाई हो। दक्षिण भारत मे भी कई इस प्रकार के सन्त हुए। इस प्रकार जन-जीवन में वही अद्वैत, वही शास्त्र, वही परमेश्वर-तत्त्व प्रकट हुआ।

रैदासजी बहुत बडे सन्त। उनके जीवन की एक घटना बतादूँ। इससे साधना के स्वरूप का पता लगेगा। उन्ही की तो प्रसिद्ध उक्ति है—'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। उनके जीवन की बहुत सुन्दर बात बताता हूँ और उसके पश्चात् थोड़ा और खुलासा करता हुआ आगे बढ़ूँगा। रैदास जूते बनाने का काम करते थे। उस समय वहाँ के एक सेठ थे। वे हरिद्वार यात्रा के लिये जा रहे थे। देखना तीर्थाटन, तीर्थयात्रा कैसे देश की एकता को सिद्ध करती है। सेठजी जा रहे थे तो रैदास को कहा—तुम भी चलो, तीर्थयात्रा पर जा रहा हूँ। अभी मानसिंहजी से यही बात हो रही थी। उन्होंने कहा हमारे दादाजी तीर्थ जाते थे तो वहाँ पर पण्डे सब नोट करते थे। उनसे पता लगा कि उनके साथ माली, कुम्हार, नाई आदि कई लोग रहते थे। सबसे समर्थ व्यक्ति जो होते थे वे सबको लेकर चलते थे—भाई चलो, आपकी भी तीर्थयात्रा हो जाएगी। इसी दृष्टि से रैदासजी को कहा—आप भी तीर्थयात्रा के लिये चलिये। रैदास ने कहा—मेरे तो अभी काम है, मैं तो काम में लगा हुआ हूँ। मैं तो अभी जा नही सकता। सेठजी बोले—अरे देख रैदास, अच्छा मौका है, तेरे को तीर्थयात्रा करा लाता। 'नहीं, मैं तो नहीं जा सकता'। सेठजी ने कहा—भाई, मै तो गंगा माता के पास जा रहा हूँ, भेंट वगैरह देनी हो तो दे दो। रैदासजी कुटिया के अन्दर से एक नारियल लाए और कहा—इसको गंगा माता को दे देना। सेठजी को नारियल दे दिया कि गंगा माता को अर्पित कर देना। हम भी कही जा रहे होते हैं तो कहते हैं—मेरी तरफ से प्रसाद चढा देना या इतना तो कह ही देते हैं मेरी तरफ से भगवान् के चरणों मे नमन कह देना। तो नारियल

दे दिया। पर उन्होंने सेठ को कहा—आप यह ध्यान रखना कि आप जब गंगाजी में अर्पित करो तो गंगा मैया के हाथ में ही नारियल देना। ऐसे ही गंगा मे मत छोड देना। 'हाथ में ही देना।' 'कैसे पता लगेगा गंगाजी को?' कहना—रैदास ने नारियल आपके लिये भेट भेजा है और हाथ में ले तभी देना। तब सेठजी को लगा कि ये बडा भोला भक्त है। कोई बात नही फिर कई दिनों की यात्रा करते-करते सेठजी हरिद्वार पहुँच गये और जब स्नान करने का समय आया तब उन्होंने नारियल को निकाला और निकालकर फिर गगाजी मे प्रवेश किया, प्रवेश करके कहा—हे गंगा मैया यह रैदासजी ने नारियल भेजा है। तो मन मे तो यह था कि गगा मैया स्वयं प्रकट होकर नारियल नही स्वीकारेंगी। एक बार कहा, पानी बहे ही जा रहा है। तीन दफे कहा—कुछ नहीं हुआ। फिर आखिरी बार कहा—'गंगा मैया, रैदास भक्त ने यह नारियल भेजा है, लेना है तो हाथ में लो, नहीं तो छोड़ रहा हूँ।' इतने में ही एक नारी हाथ जल मे से निकला, नारियल को लिया और एकदम गायब हो गया। दिव्य हाथ, गौर वर्ण का, कगन पहने हुए और एकदम से खुशबू फैल गयी। सेठ ने सोचा कि सपना है क्या? नारियल को पकडा और अदृश्य हो गया। तो सेठजी को बड़ा अचम्भा हुआ। यह भ्रम तो नही हो सकता। यह सच मे अनुभव हुआ है फिर वे बाहर आये। आकर स्वयं का नारियल लिया, उसके ऊपर सोने की गिन्नी रखी और फिर गंगा में प्रविष्ट होकर कहा—मै अमुक सेठ यह नारियल दे रहा हूँ, ले लो। एक बार, दो बार, दस बार कहा। पानी बहता रहा। कोई हाथ बाहर नहीं आया, तो आखिर जल में अर्पित कर दिया। सेठजी अन्य कई स्थानों पर देव-दर्शन करके गाँव लौटे। गाँव लौटते ही सीधे पहुँचे रैदास के पास में। 'रैदास गजब हो गया।' रैदास—क्या गंगा मैया को नारियल भेंट कर दिया? 'हाँ, गजब हो गया। खुद गंगा मैया ने हाथ ऊपर करके लिया। मैं तो चकित हो गया देख लो भई। तुम तो बडे-भारी भक्त हो।' सब भगवान् की कृपा है—रैदासजी बोले। सेठजी ने कहा—कल आप मेरे यहाँ भोजन के लिये आना। प्रसाद पाने के लिये आना। अगले दिन रैदासजी पहुँचे उनके यहाँ पर। सेठजी ने सेठानी को कहा—देखो भगतजी आये हैं, इनके लिये भोजन बना दो। सेठानी ने कहा—आज तो रहने दो। मुझे गाँव मे अपनी सहेली के पास जाना है। सेठजी ने कहा—तुम थोडी देर बाद चली जाना। पहले इनके लिये भोजन

बना दो, कितना समय लगेगा। 'मै तो जा रही हूँ, इनको फिर कभी बुला लेंगे'—सेठानी बोली। अब पास खडे हुए रैदासजी सुन रहे है। सेठजी ने सेठानी से बहुत आग्रह किया पर सेठानी मना करके चली गयी। सेठजी को थोडी-सी खिन्नता का अनुभव हुआ। उन्होने कहा—रैदास, कोई बात नही, आपको फिर कभी बुला लेगे। आपको फिर कभी भोजन करवा देगे। और ऐसा कहकर सेठजी रैदासजी को बाहर छोडने के लिये साथ चले। फिर उनकी प्रशंसा मे कुछ शब्द कहे—आप तो गजब के भक्त हो। मैं भी आपके कारण धन्य हो गया। गगा मैया का पूरा दर्शन तो नहीं हुआ। पर उनके कर-कमल का तो दर्शन हो गया। पर एक बात तो आप बताओ, गंगा मैया ने आपके नारियल को ले लिया, मेरे नारियल को नही लिया। मैंने तो गिन्नी भी रखी थी। मेरे नारियल को क्यों नही लिया? आपका कहना गंगा मैया ने मान लिया, पर मेरा कहना क्यो नहीं माना? रैदासजी ने कहा—रहने दो, इस बात में क्या रखा है। सेठजी ने पुनः कहा—आपका कहना मान लिया। मेरा कहना क्यों नहीं माना? तो रैदासजी ने कहा—'आपका कहा तो आपकी सेठानी भी नहीं मानती है। गंगा मैया कैसे मानेगी?'

लोकजीवन में जब यह सन्त-तत्त्व, ऋषि-तत्त्व, यह भगवद्-भक्ति व ज्ञान प्रकट होता है तो शास्त्र प्रमाणित होता है, अन्यथा विद्वत्ता के आवरण में इसके छिपे रहने की सम्भावना होती है। इसलिए मै तो कहता हूँ—वैदिक सनातन धर्म पर प्रभु की ऐसी बडी कृपा है कि युग-युग में ऐसे महापुरुष प्रकट होते रहे हैं। कबीर, नानक, रैदास, मीरा, आण्डाल या लल्लेश्वरी—इस प्रकार अलग-अलग जगहों में ऐसे महापुरुष प्रकट हुए और ऐसे ही समझो कि हमारे रामकृष्ण परमहंस हुए। तो इनमें, लोकभाषा में, लोकशैली में, लोकजीवन, लोककाचार द्वारा शास्त्र में कही हुई बात प्रमाणित होती है, वह सिद्ध होती है। इससे हमारा शास्त्र, वैदिक सनातन धर्म पुष्ट होता है। इसलिये हम इनको उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते। इस लोक-संस्कृति का मूल क्या है—इसके बारे मे हम ठीक ढंग से कुछ नहीं कह सकते। मूल की जब बात करते हैं तो गीता का श्लोक याद आता है—

**महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा।**
**मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः।** गीता 10/6

ऋषियो की प्रज्ञा द्वारा वह शास्त्र और महान् अनुभूति और ज्ञान का प्रवाह शुरू हुआ। पर पर्कोलेट होकर किस प्रकार से वह रिस-रिस कर लोकजीवन मे पहुँच गया। इसके बारे में ठीक से कुछ कह नहीं सकते। सम्भवतः सृष्टि के मूल में ही यह लोक प्रकट हुआ हो। पर वहाँ पर भी हमको यही तत्त्व दिखाई देता है। इसलिये वर्ण और आश्रम की बात करते समय वैदिक सनातन धर्म को वहीं तक सीमित नहीं करना और न इस प्रकार के गर्व को लेकर बैठ जाना कि यह ब्राह्मण, यह क्षत्रिय सबसे ऊपर है। इसके आधार पर दम्भ—अहंकार की सृष्टि कहीं पर भी होती है तो समाज खण्डित होता है, विभाजित होता है। अभी मैं इस बात को कह रहा था। थोडा और हम इस बात का तात्त्विक चिन्तन करेगे कि किस प्रकार से इस वर्ण-धर्म और आश्रम-धर्म को जोड़ा हुआ है। आश्रम-धर्म के अन्तर्गत ही वर्णातीत होने की अवधारणा स्पष्ट रूप से पडी हुई है।

चार वर्ण बताये। उनमें संन्यासी का कौन-सा वर्ण होता है? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इनमें से कौन-सा वर्ण संन्यासी का होता है? कोई वर्ण नही होता संन्यासी का। अब यहीं पर रहस्य छिपा हुआ है। मैंने आपको पहले बताया था कि कुछ विद्वानों के अनुसार केवल ब्राह्मण ही संन्यास ले सकते है, इसको कुछ लोग पकड करके बैठ गये। केवल ब्राह्मण ही संन्यास ले सकता है, ब्राह्मणेतर संन्यास नहीं ले सकता। जो शंकराचार्य अभी चारों पीठ पर विराजमान हैं—उनकी ऐसी ही धारणा है। ब्राह्मण ही संन्यास का अधिकारी है, दूसरा संन्यास का अधिकारी नही है। अब बुरा तो लगेगा किसी को। जब धर्म-परिवर्तन करने की बात हुई तो एक शंकराचार्यजी ने कह दिया—जो हिन्दू दूसरे धर्म में चले गये उनको पुनः हिन्दू बना देंगे, पर उनको मन्दिरो में नहीं जाने देंगे। उनके लिये अलग से मन्दिर बनवा देगे। उनको अपने मन्दिर मे जाने नही देगे। यह सारी अधूरी, खण्डित दृष्टि है।

स्त्रियों को ओकार बोलने नही देगे। वेद के मन्त्र बोलने नही देगे। उनको ऐसा बोलने का अधिकार नहीं है। तो वहाँ कुछ-न-कुछ दृष्टि की कमी है और कम-से-कम इतना तो स्पष्ट है कि ऐसे दुराग्रही लोगो को ईश्वर की अनुभूति किसी हालत में नही है। जहाँ पर ईश्वर की अनुभूति है वहाँ पर इस प्रकार की क्षुद्र बात आ नही सकती।

सनातन धर्म वर्तमानजीवी धर्म है। वर्तमान की, वर्तमान देश-काल-परिस्थिति की उपेक्षा करके जो इस प्रकार से धर्म एव शास्त्र की वात करते हैं वहाँ पर कुछ-न-कुछ न्यूनता पड़ी हुई है। वैदिक सनातन धर्म की इस ओजस्विता को मैं एक अन्य प्रकार से बताने की चेष्टा करूँगा। चार आश्रमों की वात को दूसरे शब्दो मे वताऊँगा। ब्रह्मचर्य आश्रम न्यास का आश्रम है। ट्रस्ट के लिये न्यास शब्द का प्रयोग होता है। न्यास माने रखना। जब कोई मन्त्रजप करते हैं तो न्यास करते है। ॐ ॐ अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ न तर्जनीभ्या नमः। ॐ मं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ शि अनामिकाभ्यां नमः। ॐ वॉ कनिष्ठिकाभ्या नमः आदि-आदि—इस प्रकार न्यास करते हैं। न्यास माने रखना, अच्छी तरह से रखना। ब्रह्मचर्य आश्रम न्यास का आश्रम है। इस विश्व की संरचना मे मेरा स्थान कौन-सा है, इस सामाजिक संरचना मे मेरा स्थान कौन-सा है? मैं क्या हूँ? यह सारा ब्रह्मचर्य आश्रम मे होता है। यह न्यास का आश्रम है।

और जो गृहस्थाश्रम है वह किसका आश्रम है? वह विन्यास का आश्रम है। न्यास और विन्यास मे क्या अन्तर होता है? विन्यास का क्या अर्थ है? विन्यास—जैसे कोई नृत्य करने वाला होता है, उसका पद-विन्यास होता है। विधिपूर्वक, विविधतापूर्वक, विशिष्टतापूर्वक जो फैलाव होता है—उसको विन्यास कहते है, जैसे केश-विन्यास। बालो को अमुक प्रकार से सजाते हैं तो केश-विन्यास। बिखरे हुए बाल नहीं। अच्छी तरह से सजा दिया; तो विन्यास का मतलब—एक फैलाव। एक कलात्मक ढग से जो फैलाव होता है वह गृहस्थाश्रम में होता है। यह विन्यास है।

अब फैलावट कर दी। अब वापस क्या करना है? जीवन की संध्या आ रही है तो समेटना। स्वन्यास होता है वानप्रस्थ में। फैलावट कर दी तो अब सवको समेटना प्रारम्भ कर दिया। अगर फैलावट की प्रक्रिया मे त्रुटि होगी तो आपका यह स्वन्यास सम्भव ही नहीं हो पायेगा। आप उसी में उलझे रहेगे। इसलिये गृहस्थाश्रम प्रारम्भ किया जाता है। उसके मन्त्रों को आप देखेंगे तो आपको पता लग जायेगा—उसमें विन्यास व संन्यास के बीज पडे हुए हैं। जब एक बीज को बो दिया आपने तो उस बीज के अन्दर फैलावट के संस्कार भी है, सिमटने के संस्कार भी पडे हुए है। बीज अंकुरित हुआ, अपने रूप को छोडा और आगे द्विदल निकला। उसके

बाद में और ऊपर बढ़ा तो पत्ते निकले। तना आगे बढ़ता गया। डालियाँ निकली। पत्ते निकले। फूल निकले और फल निकले। तो फैलाव होते-होते वापस सिमटाव। एक बीज से विकास होकर जो फल मिला उसमें अनेक बीज मिले। यह जो विन्यास किया वह विन्यास अत्यन्त ही शास्त्रीय, वैज्ञानिक, रसात्मक, कलात्मक एक ऐसा फैलाव है जो आपको विखेरेगा नहीं। अगर सही ढंग से विन्यास किया तो वह आपको एक समृद्धि प्रदान करेगा। विस्तार तो विषय का प्रयोग है। विषयों के प्रयोग के लिये एक शक्ति चाहिये, एक अर्थ चाहिये, विषयों का ज्ञान होना चाहिये। तो यह एक विस्तार विन्यास की साधना है। सारे गृहस्थाश्रम की साधना विन्यास की साधना है। अभी किसी ने मुझ से पूछ लिया—इसमे मोक्ष की साधना कैसे? इसमे तो मोक्ष की साधना बिल्कुल स्पष्ट रूप से है—आत्मीयता का विस्तार। पत्नी किसलिये आती है? आत्मीयता के विस्तार के लिये। तुम्हारी आत्मीयता को वह प्रतिबिम्बित करती है। पुत्र-पुत्रियाँ आते है, फिर आपकी आत्मीयता विस्तृत हो जाती है। आत्मीयता का फैलाव होता है—आत्मीयता का अमित फैलाव ही तो मोक्ष है।

ब्रह्मचर्य आश्रम मे भी मोक्ष की साधना है। मोक्ष माने आत्मा। आत्मा नित्यमुक्त है। तो मोक्ष माने सत्-चित्-आनन्द की सतत अनुभूति। मोक्ष शब्द का तो अर्थ है—मुक्त होना किसी से। द्वैत से मुक्त होना, जगत्, जो दुःख रूप है, उससे मुक्त होना, जन्म-मरण से छूटना। उसके साथ यह भाव भी जुडा हुआ है—कुछ प्राप्त करके मुक्त होना। उपनिषद् का अर्थ है—विशरण माने नाश होना, गति माने प्राप्त होना, अवसादन माने ढीला होना। उपनिषद् उसको कहते हैं जिसके अन्दर ये तीनो बाते सम्पन्न होती हैं। 'उप' उपसर्ग है निकट, और नि माने नितराम्—निश्चितरूपेण। एकदम निकट हो करके, एकदम आत्मीय होकर और नितराम् माने पूरी तरह से, हमेशा के लिये नष्ट होना एक चीज का और एक चीज का प्राप्त होना और एक चीज का ढीला हो जाना। तो उपनिषद् का यह अर्थ हो गया। नाश किसका होता है? अविद्या का नाश होता है, ब्रह्म स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है। ढीला क्या पडता है? कर्म-बंधन ढीला पड जाता है। यही तो ब्रह्मविद्या है। गृहस्थ आश्रम मे भी आत्मीयता का विस्तार, ब्रह्मचर्य आश्रम मे भी आत्मीयता का विस्तार—कुछ छूटता

है और कुछ प्राप्त होता है। यह विन्यास की साधना है गृहस्थाश्रम में और उसके बाद में सन्यास की साधना क्या एकदम से अचानक करना शुरू कर सकते हैं? एकदम से नही कर सकते क्योकि इतने फैल गये है, इतने बिखर गये कि हाथ-पाँव फूल जायेगे। एकदम से होगा नही इसलिये गृहस्थाश्रम के आगे वानप्रस्थ आश्रम है, इसमे फैलावट को समेटते है, इसमे स्वन्यास होता है और स्वन्यास के बाद में संन्यास।

गीता के 13वें अध्याय में ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति के प्रसंग में श्लोक 8 से 11 तक ज्ञान साधना का वर्णन है। इन श्लोको में ब्रह्मचर्य आश्रम से शुरू होकर सन्यास आश्रम तक की जाने वाली साधना को देखा जा सकता है। अमानित्व, दम्भ का न होना, अहिसा, क्षमा, आर्जवता, आचार्य की उपासना, शौच, स्थिरता, इन्द्रियो व मन पर संयम—ये ब्रह्मचर्य आश्रम की साधनाएँ है। इनसे सम्पन्न होकर गृहस्थाश्रम मे विषयो के साथ प्रयोग किया जाता है। तब विषयों के प्रति वैराग्य को साधना होता है। साथ ही अहंकार का त्याग, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि आदि जीवन की दुःखरूपता पर मनन, सन्तान, पत्नी गृह आदि के प्रति ममता व आसक्ति को त्यागने का अभ्यास, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों में चित्त को सम रखना—इष्ट-अनिष्ट जीवन के प्रवाह में आयेगे। यह प्रारब्ध किस प्रकार से अनफोल्ड होता हुआ आता है। कैसा क्या-क्या अनफोल्ड करता हुआ आता है—कुछ कह नही सकते। तो इष्ट-अनिष्ट की प्राप्ति में समता का अभ्यास।

**मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।** गीता, 13/10

मेरे अन्दर अव्यभिचारिणी भक्ति होनी चाहिये। इसका मतलब प्रारम्भ में ही भक्ति शुरू हो गयी। वैधी भक्ति, जिसको हमने देवऋण विमोचन के अन्तर्गत प्रारम्भ किया था। वह वैधी भक्ति धीरे-धीरे रसमयी भक्ति हो गयी। अब अनन्य भक्ति के स्तर पर, गृहस्थाश्रम की पूर्णता पर जाकर पहुँच जाना चाहिये तब सन्यास की बात करनी चाहिये। नही तो संन्यास की बात नही। बहुत बडा खतरा है इसमे।

**मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।**
**विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि।** गीता, 13/10

एकान्त में जाने के पहले आप में कितनी पात्रता चाहिये— इसको बताया। यह सारी-की-सारी साधना बतायी हुई है। उसके पहले एकान्त में जाओगे तो या तो पतन होगा या ड्रग-एडिक्ट बन जायेंगे, गाँजा वगैरह पीने लग जायेंगे। और नहीं तो अनावश्यक क्रियाओं मे समय को नष्ट करना प्रारम्भ कर देंगे। जो एकान्त मे रह रहे हैं वहाँ—वहाँ एकान्त मे जाकर देखो। ऐसी भ्रान्ति हमारे लोगों के बीच मे है कि असली महात्मा है वह तो हिमालय मे गुफाओ के अन्दर बैठे हुए हैं, वे लोगो के बीच में आते नहीं—ऐसी उनकी मान्यता है। असली महात्मा तो दूर गुफाओं के अन्दर, जगलो के अन्दर रहते हैं। अच्छे महात्मा तो गृहस्थ में रहते हुए भी हो सकते हैं, आत्म-साक्षात्कार कर लेते हैं। हमारे शास्त्र भी यही कहते हैं—गृहस्थ में रहते हुए ही आपको आत्म-साक्षात्कार की साधना करनी चाहिये और गृहस्थ मे रहते हुए आत्म-साक्षात्कार कर सकते हैं।

ज्ञान की प्राप्ति और ज्ञान-निष्ठा की प्राप्ति—इन दोनों में अन्तर है। एक ज्ञान की प्राप्ति और एक ज्ञाननिष्ठ हो जाना। ज्ञाननिष्ठ होने के लिये आपको कर्म का परित्याग करना पडेगा। ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो आप सत्सग करो, निष्काम कर्मयोग की साधना करो, तो ज्ञान की प्राप्ति होती है।

तब एकान्त में जाकर तत्त्व के साथ में एकत्व की साधना सम्पन्न करनी होती है। एक बडा सूक्ष्म चिन्तन है। बाद में, जहाँ पर मैं-पना नष्ट होता जा रहा है, अहंकार नष्ट होता जा रहा है, वहाँ अपनी तरफ से कोई निर्णय नहीं लेता वह साधक। उसको तो एक ईश्वर का संकल्प चलाता जाता है—'प्रारब्धाय समर्पितम् इह वपुः'।

प्रारब्ध के हाथ अपने शरीर को समर्पित कर देता है। निमित्तमात्र बनने तक, उस तक पहुँचने तक उसका अहंकार है, वह भी लगभग समाप्त हो चुका होता है। पूरी तरह से अविद्या का नाश नहीं होता है, 'निमित्तमात्र' कुछ मै-पना बना रहता है। कर्मयोग का प्रारम्भ 'भृत्यवत् कर्म करोमि—मै सेवक की तरह कर रहा हूँ'—इससे होता है। इसमें मेरा एक मै-पना है। मै कर रहा हूँ। ठीक है, आपका काम कर रहा हूँ। ठीक है, आपकी प्रीति के लिये कर रहा हूँ। मैं कर रहा हूँ, मेरी शक्ति, मेरी कुशलता है—मैं कुछ हूँ। बाद में जब 'निमित्तमात्र' के स्तर पर उठ गये

तब तो मेरी बुद्धि भी उसी की बुद्धि, मेरे अन्दर प्रेरणा आ रही है वह भी उसी की है। जस्ट अकेला, निर्वसन होकर एक अहम् रह जाता है, उसका भी पूर्ण समर्पण होता है—'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरण व्रज' (18.66)—गीता के इस श्लोक के अनुसार।

इस प्रकार न्यास, विन्यास, स्वन्यास, बाद में सन्यास—यह सम्यक्रूपेण जो न्यास होता है ब्रह्म तत्त्व के साथ, एकत्व की अनुभूति के साथ। आश्रम व्यवस्था को इस प्रकार से, अभी मेरा सकेत यह था कि, तत्त्वतः समझेगे तो, वर्तमान में इनको किस प्रकार से अपनाएँ—यह समझ में आएगा। वर्तमान एक मॉग करता है, एक चुनौती, एक परिस्थिति को लाता है। एक व्यक्ति और समाज—सबके सामने वह परिस्थिति को रखता है। इस समय इन व्यवस्थाओं को किस प्रकार मोडीफाई करके तत्त्व को सुरक्षित रखते हुए, कैसे काम में लेवें—यह पकड में आएगा।

तो देखो! हमारे यहाँ आश्रम की बात कही, शिखा-सूत्र की बात कही और फिर उनके त्याग करने की बात कही। तो किसी ने कहा—त्याग ही करना है तो ग्रहण क्यो करें? जब छोड़ने ही हैं तब ग्रहण क्यों करें?

कुमारिल भट्ट का नाम सुना है आप सबने! कैसा तेजस्वी व्यक्तित्व था उस ब्राह्मण का। स्वयं शिखा-सूत्र को छोड़ दिया उन्होंने। क्यों छोड़ा? बौद्ध शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना था इसलिये छोडा।

एक बार काशी-नरेश की रानी विलाप कर रही थी—'कौन वेदो का उद्धार करेगा?' 'कौन वेदों का उद्धार करेगा?' उस समय कुमारिल भट्ट वहाँ से निकल रहे थे। वे बडे विद्वान एवं तेजस्वी युवक थे। वे चिन्तन कर रहे थे पूरे राष्ट्र का, संस्कृति का, वैदिक सनातन धर्म का और रानी के सन्तप्त उद्गार उनके कानों मे पडे तो उन्होंने कहा—मै भट्ट हूँ। मै वेदों का उद्धार करूँगा। कैसी संकट की घडी थी। रानी के पति बौद्ध धर्म को स्वीकार कर चुके थे, उस रानी के मन मे यह टीस थी, कसक थी। राज्याश्रय प्राप्त हो चुका था बौद्ध धर्म को। प्राप्त हो चुका नहीं, प्राप्त किया गया था राज्याश्रय—तान्त्रिक-मान्त्रिक प्रयोग करके। राजाओं को वश में किया गया था। बौद्ध धर्म इसी प्रकार फैला। भगवान् बुद्ध के समय

की बात अलग है। बाद मे वे फैले तो राज्याश्रय को लेकर फैले। कुमारिल भट्ट ने रानी से कहा—मुझे बौद्ध गुरु के पास जाकर बौद्ध शास्त्रो के अध्ययन करने की व्यवस्था करवा दें। बौद्ध किसी ब्राह्मण को शिक्षा क्यों देने लगे? अतः उन्होने शिखा-सूत्र का त्याग किया। यदि आपको यह उल्लेख नही मिले तो अपनी ओर से जोड देना। शिखा-सूत्र के साथ जाते तो वे उन्हें कैसे अपनाते? अतः शिखा-सूत्र का त्याग कर गये—मैं आपके जैसा हूँ। मुझे शास्त्र-ज्ञान देवें। बडी कुशाग्र बुद्धि, धारणाशक्ति अद्भुत थी। गायत्री के उपासक थे तो वह शक्ति अन्दर थी। बिना यज्ञोपवीत के गायत्री मन्त्र बोल नहीं सकते। पकडकर बैठ गये। विद्यालय मे गायत्री मन्त्र बोल दिया तो चारों तरफ हल्ला हो गया। आप गायत्री-परिवार में चले गये, आदर्श विद्या मन्दिर में चले गये, वहाँ तो गायत्री मन्त्र बोलते हैं—ऐसे बहुत-से पत्र आये—मेरे पते से। आर्य समाज वाले सभी को गायत्री मन्त्र देते है—कितना गलत है आदि।

तो कुमारिल भट्ट ने गायत्री मन्त्र को भी छोड दिया। पर तेज उनके अन्दर था। सारी विद्या को धारण कर लिया। एक दिन गुरुदेव सामने बैठे हुए थे। बौद्ध-गुरु वेद की निन्दा कर रहे थे। कितना सहन करें? सिर नीचा किये हुए थे। आँखो से टप-टप आँसू पडने शुरू हुए। किसी ने देख लिया—अरे! यह तो रो रहा है, यह तो कोई भेदिया दिखाई देता है। पकडो-पकडो। कुमारिल ने कहा—गुरुदेव! आपने जो आलोचना की है वह ठीक नहीं हैं। 'इसको पकडो। यह विधर्मी है और ले जाओ उसे, शिखर से नीचे गिरा दो।' उन्हें शिखर पर ले गये और वहाँ से धक्का देकर गिराने लगे तो कुमारिल भट्ट ने कहा—'यदि वेद सत्य है तो मेरा कुछ नहीं बिगडेगा'। उन्होने 'यदि' लगा दिया इसलिये कहते है—उनकी एक आँख फूट गयी। वेद सत्य है। वेद माने परमेश्वर की एक शक्ति, उनका विवर्त, उनका ज्ञान, उनकी एवेयरनेस, जिनको लेकर वह सृष्टि, स्थिति, लय करते है। वेद सत्य माने ईश्वर सत्य। ईश्वर सत्य है ही तो वेद भी सत्य है। तो फिर वे बच गये। चारो तरफ यह बात फैल गयी। जो छिपे हुए, डरे हुए थे ब्राह्मण, सारे विद्वान सामने आ गये। कुमारिल भट्ट बच गये। वेद सत्य है, वेद सत्य है और फिर शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया। उस समय शास्त्रार्थ होते थे। आज की परिस्थिति देखो तो रोंगटे खडे हो

जायेंगे। उस समय भी बहुत भयकर परिस्थिति थी। उस समय विद्वान लोग शास्त्रार्थ करते थे, कोई पराजित हो जाता था तो उसे झुकना पडता। आज तो प्रजातन्त्र है। किसी को कुछ कह नही सकते। वह चाहे जैसे भी अपनी प्रतिभा का प्रयोग किसी भी प्रकार के छलछद्म करके चाहे जैसी संस्था खडी कर सकता है। जगत् के बारे मे, ईश्वर के बारे में, जीवन के बारे में कुछ भी कह सकता है। हिप्नोटिज्म का प्रयोग, मेस्मेरिज्म का प्रयोग करके, पाखण्ड का प्रयोग करके कितने विश्वविद्यालय चल रहे है, संस्थाएँ चल रही है आज। जब इस प्रकार से शास्त्रार्थ का आयोजन किया तब उनके गुरु आये। उन्होने कहा—आपके पास क्या प्रमाण है? आप किसको सामने रखते है? बौद्धों ने अपने ग्रन्थों को सामने रखा। उन्होने कहा—मै वेदो को सामने रखता हूँ। मै वेद को प्रमाण मानता हूँ। वेद के परम प्रमाणत्व को लेकर चले। ईश्वर–तत्त्व को उन्होंने नकार दिया। कुमारिल भट्ट ने कहा—ठीक है, मै भी ईश्वर को नहीं मानता। ईश्वर को कोई कैसे प्रमाणित कर सकता है? शास्त्र ही तो कहेगा—ईश्वर है। उन्होंने कहा—ठीक है मै भी ईश्वर को नही मानता। मैं वेद को लेकर चल रहा हूँ। आप अपने ग्रन्थ को लेकर चलें। आपके ग्रन्थ कब से शुरू हुए? हमारे वेद है, इनकी एक अनादि परम्परा है। और फिर आपस में शास्त्रार्थ हुआ। उनका शास्त्र तो पूरा पढ रखा था और अपने शास्त्र में निष्णात थे ही और उनको पराजित कर दिया। शर्त थी—जो पराजित होगा वह अपने मत का परित्याग करके दूसरे के मत मे चला जाएगा नहीं तो तुषानल की अग्नि में अपने शरीर को स्वाहा कर देगा।

कुमारिल भट्ट ने जिस समय शिखा–सूत्र त्याग दिया, उस समय एक ऐसी परिस्थिति थी। आज तो हमारी बुद्धि को ऐसा फेर दिया कि हम स्वयं शिखा–सूत्र का त्याग कर चुके हैं। कहा जाता है—एक समय प्रतिदिन मनो यज्ञापवीत इकट्ठे करके जलाये जाते थे। आज ऐसा करने की जरूरत नहीं। कैसे भयंकर शत्रु ने आकर हमारी बुद्धि को एकदम से भ्रष्ट कर दिया और हमने शिखा–सूत्र को उठाकर फेंक दिया। इसलिये केन्द्र मे जाना, अपने सनातन धर्म के केन्द्र में जाना, क्योकि परिवर्तन बाहर होते है, केन्द्र मे परिवर्तन नहीं होते। जितना–जितना केन्द्र के निकट जायेंगे, उतनी–उतनी बडी एक ताकत, एक अन्तःप्रेरणा आयेगी। एक युक्ति आपके

अन्दर स्फुरित होगी कि आज की ऐसी विकट परिस्थिति का कैसे मुकाबला करे ? हम वैदिक सनातन धर्म की बात करे, वर्तमान परिस्थिति का चिन्तन न करे, उस खतरे को समझें नहीं, उसके पार जाने का प्रयास नहीं करेंगे तो क्या समाधान होगा ? यहाँ कोई एकेडेमिक डिसकशन थोड़े ही हो रहा है। इसलिये वर्तमान में हम किस प्रकार से इसका मुकाबला करें—इसका चिन्तन आपको करना पड़ेगा। सर्वांगीण चिन्तन कर आपको समझना है कि किस प्रकार से हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सनातन धर्म के तत्त्वों को अपने जीवन मे ला सकते हैं और पूरे समाज में, राष्ट्र में मानव के लिये भी हम एक ऐसी योजना प्रस्तुत कर सकते हैं। ऐसी जीवन-शैली, ऐसी जीवन-दृष्टि उसके सामने रख सकते हैं। हम शब्दों का आग्रह भी अपने में नहीं रखते। और खास करके जब जंगलों मे, जनजातियों में जाते हैं। मेरे सामने एक समस्या आ गई थी कि ये वनवासी मांस खाते हैं, ये हिन्दू हैं या नहीं? वे कहना नही चाहते थे कि वे हिन्दू हैं। मैंने कहा—हिन्दू है। मेरे को इसमें कोई आपत्ति नहीं। जो गंगा को माने, गो को माने, वेद को माने तभी वह हिन्दू है—ऐसा आग्रह हम कहीं पर भी रखते नहीं। जो श्रेष्ठतम है, वर्ण-आश्रम-यज्ञोपवीत आदि को मानते हैं। पर फिर भी कुछ ऐसा तत्त्व है मानवमात्र में जो सर्वहित के लिये, प्राणिमात्र के लिये कुछ कार्य करता है, कुछ तत्त्वों को लेकर चलता है, हम उसको अपनाने के लिये तैयार हैं। खास बात क्या है कि हम सबको अपनाने के लिये तैयार हैं। एक धारणा को, एक सत्य को लेकर चल रहे हैं।

अब वैदिक सनातन धर्म के कुछ तत्त्वों को लिया, कुछ तत्त्वों को छोड दिया और इस प्रकार से हमारे यहाँ से ही अनेक दूसरे मत उत्पन्न हो गये। बौद्ध धर्म को क्या कहेंगे? हम तो उनको हिन्दू ही कहते हैं। दलाईलामा से पूछो—वह भी अपने को हिन्दू कहते हैं। जैन मत वाले भी अपने को हिन्दू कहते हैं। पर इनके अन्दर कुछ हैं जो 'हिन्दू नहीं हैं'—ऐसा कहने लगे है। कुछ हमारे अन्दर के संगठन, मिशन कहने लगे—हम हिन्दू नही हैं। अब क्या परिस्थिति थी, क्या कारण था, हिन्दू मोन्क, हिन्दू मोन्क कहकर सारे अखबारों ने लिखा अमेरिका में एवं पुस्तके भरी हैं और वे कहते है—हम हिन्दू नहीं हैं। क्या कारण बना? यह कायरता क्यो आ गयी उनमे ?

वैदिक सनातन धर्म वर्तमानजीवी धर्म है। इसलिये वर्तमान का अवलोकन करके और इसको किस प्रकार अपने जीवन में उतारे और अपने आस-पास भी सक्रमित करे—इसके लिये यह सारा-का-सारा विचार किया। किसी भी सीमा मे इसको बॉधने की आवश्यकता नही है। अस्तु।

अब इसका जो एक सिद्धान्त चर्चा मे रह गया था—वैदिक सनातन धर्म का—कर्म का सिद्धान्त और पुनर्जन्म का सिद्धान्त। जब हम मोक्ष की अवधारणा पर विचार करना चाहते हैं तो मोक्ष का एक यह भी अर्थ है—जन्म-मरण से छुटकारा पा जाना। मोक्ष माने छूटना। किससे छुटकारा पा जाना? जन्म-मरण से छुटकारा पाना। जन्म-मरण होता है या नहीं होता? होता है। पुनर्जन्म होता है तो उसका प्रमाण क्या है? इसके पीछे शास्त्र प्रमाण हैं। इसके पीछे महापुरुष प्रमाण हैं। इसके पीछे युक्ति प्रमाण है। इसके पीछे प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन सारे प्रमाणो को लेकर हम पुनर्जन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं। ऐसा नहीं कह देना कि जो आदमी है वह मरकर आदमी बनेगा, स्त्रियॉ मरकर दुबारा जन्म लेगी तो औरते ही बनेगी। तो कई लोगों ने ऐसा सिद्धान्त पकड लिया। कई प्रकार के मत-मतान्तर चलते हैं। इन सब पर दृष्टि रखना। सब पर दृष्टि रखते हुए कैसे उन्हें अंकुश मे रखना, कैसे उन्हे दिशा देना—यह स्पष्ट हो जाना चाहिये।

खासकर नयी पीढी के सामने ये बाते आती है तो वह कहती है—हम यह सब मानते नहीं। आपके पास उन्हे कन्विन्स करने के लिये पूरे तर्क होने चाहिये। एक शिविर के एक विद्यार्थी ने कहा—मैं तो पुनर्जन्म मानता नहीं। मैं तो प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानता हूँ। शास्त्र वगैरह कुछ नहीं मानता। तब मैंने पूछा—क्या तुम प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हो? मैंने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? पिताजी का, माताजी का नाम क्या है? तो भूमिका बनाकर मैने पूछा—क्या प्रमाण है, तुम्हारे यही माता-पिता हैं, तुमने देखा है क्या? एकदम से उसको धक्का जैसा लगा। अचानक ऐसा भरी सभा मे पूछा था—इसमें क्या प्रमाण है कि ये तुम्हारे माता-पिता हैं? बुद्धि तेज थी। उसने कहा—डी. एन. ए. टेस्ट करवाने से पता लग जाएगा कि ये मेरे माता-पिता है। मैने कहा—टेस्ट करवाया

था क्या? 'टेस्ट तो करवाया नहीं।' एक माँ कहती है—यह तेरी नानी है, यह तुम्हारी दादी है—मानते हैं कि नहीं। इसको आप्त वचन कहते हैं। महापुरुष के वचन भी अपने-आप में एक प्रमाण है। इतने-इतने महान-महान पुरुष, ऋषि लोग कहते हैं कि पुनर्जन्म होता है—अतः इसे मान लेना चाहिये। फिर मैंने उस विद्यार्थी से कहा 'लॉ ऑफ कन्जर्वेशन ऑफ एनर्जी' जानते हैं कि नहीं? उनसे उनकी भाषा में बोलना पडता है। मैंने कहा—एक शरीर है, उसके अन्दर भी सोचने की शक्ति है। उसके अन्दर मेण्टल एनर्जी है या नहीं? 'मेण्टल एनर्जी है।' उसका क्या होता है? वह सुरक्षित रहनी चाहिये न? प्रिजर्व होती रहनी चाहिये न? जब शरीर छूट गया तो वह कहाँ जाती है? कहीं-न-कहीं तो रहती है? खैर, इस प्रकार से पुनर्जन्म होने के पीछे हम युक्ति को भी लेते है। इसके पीछे युक्ति क्या है? किस तर्क को लेकर पुनर्जन्म की बात सिद्ध होती है। शास्त्र मे, गीता में, पुराणों में बडे-बडे सुन्दर-सुन्दर दृष्टान्तों के द्वारा यह हमारे लोक-जीवन में बैठा हुआ है—कर्म व पुनर्जन्म की धारणा और हमारी नयी पीढी बिल्कुल इससे कट गयी। इसका परिणाम क्या हुआ? चार्वाक दर्शन, उससे भी विकृत दर्शन मानने वाली पीढी हो गयी। टॉल्स्टॉय ने कहा है—जब हम धर्म को अस्वीकार करते है तब हमारी सीमा वहीं तक नहीं, हम अधर्म की ओर चल पड़ते है।

तो इसके पीछे जो कारण बताया कि जो किया ही नहीं उसका फल मिल जाना और किये हुए का फल न मिलना। यह एक बहुत बड़ा दोष माना जाता है। जो किया नहीं, उसका फल मिल जाय। और जो किया हुआ कर्म, उसका फल न मिलना। पुनर्जन्म को न मानने से ये दो बडे भारी दोष लग जाते है। जन्म से ही कोई अन्धा होकर पैदा हुआ। क्यो भई, अंधा क्यो हो गया वह? उसके अन्दर कुछ रासायनिक एनोटोमिक घटना हो गयी। यह स्पष्टीकरण ठीक नही। इसको सब्जेक्टिवली देखना, आप उसका विश्लेषण करोगे कि भ्रूण में यह हो गया था, यह हो गया था, यह घटना हुई थी इसलिये अंधा हुआ। सब्जेक्टिवली सोचो, वह कितना वंचित रहेगा जीवनभर। एक ही घर के अन्दर एक अंधा होकर और एक स्वस्थ होकर जन्म ले रहा है। उसके पीछे उनके कर्म का फल है। जिसके कारण उनको वह स्थिति प्राप्त हुई। साथ ही, हमारे साधक भी यह प्रश्न

उठाते हैं—जो अच्छे लोग होते है, धर्मप्रेमी, सदाचारी, सीधे लोग होते है वे कष्ट में पडे हुए होते है और जो दुष्ट लोग हैं वे मौज मार रहे हैं। वे गाड़ियो में घूम रहे हैं, बँगले उनके पास हैं। वे तो आराम से रह रहे हैं। तो यह किस कारण से? इसके लिये सही ढग से कर्म के सिद्धान्त को समझ लेते है तो सबकी एक व्यवस्था और व्याख्या हो जाती है। तर्कशास्त्र में यह भी है कि जिस सिद्धान्त द्वारा सब–कुछ सही ढग से समझाया जा सके, वह स्वीकृत होती है। परन्तु उसको गलत ढंग से पकड लिया तो बहुत–भारी दोष आ जाता है। तो जो कर्म का सिद्धान्त है, उसके द्वारा हम पुनर्जन्म के सिद्धान्त को समझने की बात कर रहे थे। कुछ किया उसी का फल मिला और यहाँ जो कर रहे है उसका पूरा फल हमको दिखाई नहीं देता। यहीं– का–यहीं सब–कुछ फल मिल जाय—यह दिखाई नही देता। इसका मतलब—उसका फल कभी बाद में मिलेगा।

यदि जो कर्म जब करते हैं, वह अत्यन्त उग्र हो तब उसका फल इसी जन्म में मिल जाता है। परन्तु वह अत्युग्र हो, पर इसको हम डिफाइन नहीं कर सकते कि वह कितना उग्र है। कोई भी कर्म करते हैं तो तीन परिणाम सामने आते हैं। पहला परिणाम तो दृष्ट फल। सामने कोई कर्म करो, सामने एक फल दिखाई दे जायगा। उसको दृष्ट फल कहते हैं। इस दृष्ट फल को भी अच्छी तरह समझ लेवें। आपने कुछ कर्म किया तो सामने कुछ परिणाम दिखाई देगा। साथ ही उसका परिणाम शरीर–इन्द्रिय–अन्तःकरण–संघात पर भी पडेगा। आपके सामने चींटी का कोई एक दल आ रहा है और आपने उसको एक पत्थर लेकर मार डाला। यह एक कर्म किया, उसका क्या हुआ? सामने जो शरीर जा रहे थे वे तो नष्ट हुए ही, वह जगह भी थोडी गन्दी हो गयी—यह सामने स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जिस–जिस ने उसको देखा, उसका उसके ऊपर असर हुआ। अगर कोई प्राणी होता तो वह चीखता और उसके स्पन्दन फैल जाते।

जिस कक्ष के अन्दर जैसे कर्म होते हैं, उसके स्पन्दन वहाँ पर इकट्ठे हो जाते है। उस कक्ष में यदि हत्याएँ हो रही हैं या बुरा चिन्तन हो रहा है तो वैसे ही स्पन्दन वहाँ पर व्याप्त हो जाते है। प्रयोग करके देखा है। मैं कह रहा था—एक तो वह जो कर्म हो रहा है उसका एक प्रभाव चारो तरफ

फैलता है और सूक्ष्म वैज्ञानिक ढंग से कहेंगे तो पता नहीं मेरे शब्द कितनी दूर चले जाते है! बहुत ज्यादा सेन्सेटिव इन्स्ट्रूमेण्ट हों तो उनको एक मील दूर से भी पकड सकते हैं। ये सूक्ष्म होकर फैलते जाते हैं। और दूसरा अन्तःकरण के अन्दर प्रभाव पडा, उसको मैने अनुभव किया। इससे भी ज्यादा सूक्ष्म प्रभाव, जिसको हम अदृष्ट कहते हैं, वह उत्पन्न होता है।

अदृष्ट है वह कब फलीभूत होकर आयेगा, किस जन्म मे आयेगा, कितने लाखों वर्ष के बाद में आयेगा—इसके बारे में कुछ कह नही सकते। दृष्ट जो सामने इन्द्रियगोचर और दूसरा अन्तःकरण के अन्दर और तीसरा, उसका अदृष्ट प्रभाव होते है। इस प्रकार से तीन प्रभाव कर्म के उत्पन्न होते है।

बात चल रही है—कर्म का फल उत्पन्न होता है और हमको यहाँ पर दिखाई नहीं देता। हमने इतने कर्म किये और उनका फल कुछ नहीं। बहुत पाप किये, उनका फल तो दिखाई नहीं देता। वह बडे सुख से रह रहा है। आप कहते है—यह पाप पर पाप कर रहा है और किसी ने बहुत अच्छे कर्म किये उसका फल दिखाई नहीं देता। तब कहते है—इसका आगे फल उत्पन्न होगा।

इसी सदर्भ मे हम कहते है कि पुनर्जन्म होता है तो यह कर्मचक्र क्यो चलता है? हम कर्म क्यों करते है? अन्तःकरण में सस्कार पडे हुए रहते है, उनको वासनाएँ कहते है। वे वासनाएँ प्रबुद्ध होकर, उद्बुद्ध होकर एक इच्छा का रूप धारण करती है। इच्छा वह है जो व्यक्ति को कर्म मे लगाती है। और जब कर्म किया जाता है तो उसका फल उत्पन्न होता है और वह फल जन्मान्तर में ले जाता है। जन्मान्तर में जाने पर फिर उसके फल का भोग होता है। उस फल का भोग कराने के लिये वह वासना उद्बुद्ध होती है और फल-भोग के पश्चात् वह वासना और दृढ हो जाती है। तो वासना, उसके कर्म, उनसे कर्मफल, फिर जन्म, फिर फल, फिर वासना—यह एक चक्र चलता रहता है।

तो समझना पडेगा कि यह चक्र किस प्रकार चल रहा है? चक्र को यदि तोडना है तो समझना ही पडेगा। वासनाएँ क्या होती हैं? वासनाएँ फैलती हैं। फैलना उनका स्वभाव है। वासनाएँ अन्तःकरण मे रहती हैं।

24 घण्टे मे आपकी वासनाएँ किस प्रकार से स्पन्दित होती है। जाग्रत् मे यह अन्तःकरण इन्द्रियों व शरीर से जुडकर विषयो का अनुभव करता है। स्वप्न में मन वासनाओं को लेकर अपना ही लोक बनाता है और सुख-दुःख भोगता है। सुषुप्ति मे यह बीज-रूप हो जाता है। 24 घण्टे में हमारा अन्तःकरण इस प्रक्रिया मे जाता है। जाग्रत् में वह फैल जाता है, मतलब पाँचों इन्द्रियॉ काम करना शुरू कर देती हैं। स्वप्नावस्था मे वह सिमट जाता है। स्वप्नावस्था में इन्द्रियॉ होती हैं या नहीं होती? काम करती है या नहीं करती? जाग्रत् मे इन्द्रियॉ कैसे काम करती है? तो मन है ही इन्द्रियो के पीछे। इन्द्रियॉ विषय से सम्पर्क करती है। इन्द्रियॉ काम कर सकें, उसके लिये एक अधिष्ठाता देवता होता है। नेत्र इन्द्रिय काम कर सके इसलिये सूर्य अधिष्ठाता देवता है। स्वप्नावस्था मे सूर्य रहता नहीं इसलिये नेत्र इन्द्रिय काम नही कर सकती। स्वप्नावस्था में तद्-तद् इन्द्रियो के अधिष्ठाता देवता उपलब्ध नहीं होते इसलिये वे काम नही करती। केवल मन ही उस समय काम करता है। इन्द्रियॉ सिमट जाती है। केवल मन ही कार्य करता है। संस्कारों को लेकर वही देखता है, सूँघता है, चखता है। इन्द्रियॉ काम नही करतीं, केवल मन कार्य करता है। इन्द्रियॉ काम कर रही हो तो विषयों का बोध होना चाहिये। मन अपने संस्कारो के द्वारा ही देखता, सुनता, चखता है। मन के द्वारा विषयों की मानसिक सृष्टि होती है। ब्रेन फोकल प्वाइण्ट है या लोकस है, जहॉ से माइण्ड काम करता है। इन्द्रियाँ भी सूक्ष्म है, ये दिखाई देने वाले नेत्र आदि गोलक हैं जिनके माध्यम से इन्द्रियॉ काम करती है। मन मे इन्द्रियॉ उस अवस्था में काम नहीं करती जब वह स्वप्न देख रहा होता है।

इस प्रकार माइण्ड स्वप्न मे व सुषुप्ति मे काम करता है। उसी प्रकार से ज्योही कन्सेप्शन होता है त्योही माइण्ड या सूक्ष्म शरीर, कर्म के आधार पर स्पन्दित होता है। यहॉ माइण्ड अकेला काम नहीं करता। कॉस्मिक शक्ति के निर्देशन मे काम करता है। अकेला माइण्ड काम करता तो पता नही चूज करके कहॉ-कहॉ जाना शुरू कर दे। तथा कर्म को नियन्त्रित करने वाला ईश्वर है। उस कर्म के कारण, उस माता के कर्म, पिता के कर्म और इस जीव के कर्म के कारण कन्सेप्शन के समय वह वहॉ तुरन्त दो कणों को जोड देता है और वहॉ से अनुकूल द्रव्य को इकट्ठा

फैलता है और सूक्ष्म वैज्ञानिक ढंग से कहेंगे तो पता नहीं मेरे शब्द कितनी दूर चले जाते हैं! *बहुत ज्यादा सेन्सेटिव इन्स्ट्रूमेण्ट हो तो उनको एक मील* दूर से भी पकड सकते है। ये सूक्ष्म होकर फैलते जाते हैं। और दूसरा अन्तःकरण के अन्दर प्रभाव पडा, उसको मैने अनुभव किया। इससे भी ज्यादा सूक्ष्म प्रभाव, जिसको हम अदृष्ट कहते हैं, वह उत्पन्न होता है।

अदृष्ट है वह कब फलीभूत होकर आयेगा, किस जन्म में आयेगा, कितने लाखो वर्ष के बाद में आयेगा—इसके बारे में कुछ कह नही सकते। दृष्ट जो सामने इन्द्रियगोचर और दूसरा अन्तःकरण के अन्दर और तीसरा, उसका अदृष्ट प्रभाव होते है। इस प्रकार से तीन प्रभाव कर्म के उत्पन्न होते है।

बात चल रही है—कर्म का फल उत्पन्न होता है और हमको यहाँ पर दिखाई नही देता। हमने इतने कर्म किये और उनका फल कुछ नहीं। बहुत पाप किये, उनका फल तो दिखाई नही देता। वह बडे सुख से रह रहा है। आप कहते हैं—यह पाप पर पाप कर रहा है और किसी ने बहुत अच्छे कर्म किये उसका फल दिखाई नही देता। तब कहते है—इसका आगे फल उत्पन्न होगा।

इसी सदर्भ में हम कहते है कि पुनर्जन्म होता है तो यह कर्मचक्र क्यो चलता है? हम कर्म क्यो करते हैं? अन्तःकरण मे संस्कार पडे हुए रहते है, उनको वासनाएँ कहते है। वे वासनाएँ प्रबुद्ध होकर, उद्‌बुद्ध होकर एक इच्छा का रूप धारण करती है। इच्छा वह है जो व्यक्ति को कर्म में लगाती है। और जब कर्म किया जाता है तो उसका फल उत्पन्न होता है और वह फल जन्मान्तर मे ले जाता है। जन्मान्तर मे जाने पर फिर उसके फल का भोग होता है। उस फल का भोग कराने के लिये यह वासना उद्‌बुद्ध होती है और फल-भोग के पश्चात् वह वासना और दृढ हो जाती है। तो वासना, उसके कर्म, उनसे कर्मफल, फिर जन्म, फिर फल, फिर वासना—यह एक चक्र चलता रहता है।

तो समझना पड़ेगा कि यह चक्र किस प्रकार चल रहा है? चक्र को यदि तोडना है तो समझना ही पडेगा। वासनाएँ क्या होती हैं? वासनाएँ फैलती हैं। फैलना उनका स्वभाव है। वासनाएँ अन्तःकरण में रहती हैं।

24 घण्टे में आपकी वासनाऐं किस प्रकार से स्पन्दित होती है। जाग्रत् मे यह अन्तःकरण इन्द्रियो व शरीर से जुडकर विषयो का अनुभव करता है स्वप्न मे मन वासनाओं को लेकर अपना ही लोक बनाता है और सुख-दुःख भोगता है। सुषुप्ति मे यह बीज-रूप हो जाता है। 24 घण्टे मे हमारा अन्तःकरण इस प्रक्रिया मे जाता है। जाग्रत् मे वह फैल जाता है, मतलब पॉचो इन्द्रियॉ काम करना शुरू कर देती है। स्वप्नावस्था में वह सिमट जाता है। स्वप्नावस्था मे इन्द्रियाँ होती है या नहीं होती? काम करती है या नहीं करती? जाग्रत् में इन्द्रियॉ कैसे काम करती है? तो मन है ही इन्द्रियों के पीछे। इन्द्रियॉ विषय से सम्पर्क करती हैं। इन्द्रियॉ काम कर सके, उसके लिये एक अधिष्ठाता देवता होता है। नेत्र इन्द्रिय काम कर सके इसलिये सूर्य अधिष्ठाता देवता है। स्वप्नावस्था में सूर्य रहता नही इसलिये नेत्र इन्द्रिय काम नहीं कर सकती। स्वप्नावस्था मे तद्-तद इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता उपलब्ध नही होते इसलिये वे काम नही करतीं। केवल मन ही उस समय काम करता है। इन्द्रियॉ सिमट जाती है। केवल मन ही कार्य करता है। संस्कारो को लेकर वही देखता है, सूँघता है, चखता है। इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं, केवल मन कार्य करता है। इन्द्रियॉ काम कर रही हो तो विषयो का बोध होना चाहिये। मन अपने संस्कारो के द्वारा ही देखता, सुनता, चखता है। मन के द्वारा विषयो की मानसिक सृष्टि होती है। ब्रेन फोकल प्वाइण्ट है या लोकस है, जहॉ से माइण्ड काम करता है। इन्द्रियॉ भी सूक्ष्म हैं, ये दिखाई देने वाले नेत्र आदि गोलक हैं जिनके माध्यम से इन्द्रियॉ काम करती है। मन मे इन्द्रियॉ उस अवस्था में काम नहीं करती जब वह स्वप्न देख रहा होता है।

इस प्रकार माइण्ड स्वप्न में व सुषुप्ति मे काम करता है। उसी प्रकार से ज्योही कन्सेप्शन होता है त्योंही माइण्ड या सूक्ष्म शरीर, कर्म के आधार पर स्पन्दित होता है। यहॉ माइण्ड अकेला काम नही करता। कॉस्मिक शक्ति के निर्देशन मे काम करता है। अकेला माइण्ड काम करता तो पता नहीं चूज करके कहाँ-कहॉ जाना शुरू कर दे। तथा कर्म को नियन्त्रित करने वाला ईश्वर है। उस कर्म के कारण, उस माता के कर्म, पिता के कर्म और इस जीव के कर्म के कारण कन्सेप्शन के समय वह वहॉ तुरन्त दो कणो को जोड देता है और वहॉ से अनुकूल द्रव्य को इकट्ठा

करके एक आकृति को निकालता है। अब आप शुक्र-रज को ट्यूब के अन्दर डाल दोगे तो ट्यूब में शरीर बनना शुरू हो जाएगा। टेस्ट ट्यूब बेबी होते हैं न! वे वैज्ञानिक सोचते हैं—हमने बहुत बडा क्रियेशन कर लिया। क्या क्रियेशन कर लिया? वे समझते ही नहीं—माइण्ड क्या होता है, ईश्वर क्या होता है? उस समय वहाँ टेस्ट ट्यूब में सूक्ष्म शरीर आ गया, इन्द्रियाँ आ गयी, प्राण आ गये। वह जीव वहाँ से निकलना शुरू होता है, वह धीरे-धीरे अकुरित होना शुरू होता है। जैसे बीज फूला, उसमें से अँखुवा निकला, द्विदल निकले, बढता गया। वैसे ही सूक्ष्म शरीर के अन्दर से क्या होगा? उसने शरीर को उत्पन्न किया। अब सूक्ष्म शरीर धीरे-धीरे अंकुरित होना शुरू होता है, फूलना शुरू होता है, माइण्ड में से संस्कार प्रकट होने शुरू होते हैं। माइण्ड ऑसीलेट करता है, वाइबरेट करता है, पल्सेट होता है, करता है। इस प्रकार वह सब प्रकार के मोशन करता-करता फूलता जाता है और उसके कारण यह शरीर बढता जाता है। युवावस्था शरीर के अन्दर नहीं आती, युवावस्था माइण्ड मे प्रकट होती है और इसके कारण यह शरीर बढता है, फैलता है। माइण्ड के अन्दर जो कामनाओं के सस्कार है वे प्रकट होते हैं। युवावस्था में सारी कामनाएँ प्रकट हो जाती हैं और इसके बाद में कर्म के प्रभाव के कारण माइण्ड सिमटना शुरू होता है। जब माइण्ड सिमटना शुरू होता है तब शरीर मुरझाना शुरू हो जाता है और एक समय आता है जब सूक्ष्म शरीर, माइण्ड पूरा सिमट करके एकदम से रवाना हो जाता है। शरीर को छोड करके रवाना हो जाता है। मन में ये प्रक्रियाएँ चलती है।

बात चल रही थी वासनाओं की। ये वासनाएँ उद्बुद्ध होती हैं। एक आयु तक बढती हैं और फिर धीरे-धीरे छिपना शुरू हो जाती है। इसलिये सेवानिवृत्त लोगो के लिये बहुत बडी समस्या हो जाती है। क्यो समस्याएँ? वे जो सारी-की-सारी वासनाएँ है, वे छिपने की प्रक्रिया मे चल रही है, छिप रही है सारी वासनाएँ। छिपती हुई वासनाओं को हेण्डल करना बडा कठिन होता है। जो वासनाएँ छिप रही हैं उनको हेण्डल करना पडेगा। क्योंकि वासना प्रबुद्ध होकर इच्छा बन जाती है—इच्छा—कर्म। कर्म किया तो कर्मफल—फल मिला तो उसका भोग, भोगा तो वासना और दृढ और वासना दृढ तो वह वासना जन्म-जन्मान्तर में घुमाती रहती है।

इसलिये समझना पड़ेगा कि युवावस्था में ही वासनाओं को काट सकते है। यह युवावस्था का महत्त्व है। युवावस्था में ही उनको हेण्डल कर सकते हैं, बाद में छिपने लगती हैं। उस समय ज्यादा जबरदस्ती करोगे तो वह और अधिक छिप जाती है। ध्यान में ज्यादा जबरदस्ती करने से नीद आ जाती है। जब प्रवचन चल रहा होता है, किसी को बात समझ में नहीं आती है तो नींद आ जाती है। सत्संग तो युवाओं के लिये होता है। वृद्ध तो सत्सग लायक ही नहीं रहते क्योंकि जो सत् है वह चिरयुवा होता है। तो युवा ही युवा का सङ्ग करेगा। अतः युवा ही सत्सग कर सकता है—

युवैव धर्मशीलः स्यात्

हमारा सत्-धर्म है। सनातन धर्म चिरयुवा धर्म है। अभी प्रसंग चल रहा था वासनाओं का। हम वासनाओं को किस प्रकार नियन्त्रित करें। बुरी वासनाओं को बाहर निकालकर उनका निवारण कर दें। अच्छी वासनाओं को पोषण देकर उनको आगे बढ़ा दें।

पुनर्जन्म के सिद्धान्त के अन्दर यह कर्म-सिद्धान्त काम कर रहा है। कर्म करने की शक्ति मनुष्य के अन्दर प्रकट हुई है। इसमें क्या होता है? एक संचित कर्म होता है, एक प्रारब्ध कर्म होता है और एक क्रियमाण कर्म होता है। संचित कर्म—संचित कर्म कितना है? जब-जब मनुष्य का जन्म मिला तब-तब कर्म किये गये। और इसमें जिन कर्मो का फल हमने भोगा नहीं, वह सुरक्षित रहता है। वहाँ पापकर्म भी होते है, पुण्यकर्म भी होते हैं। तो संचित कर्म एक तरफ रख लिया। अब दूसरी तरफ उस संचित से कुछ कर्म लेकर हमको जन्म मिल जाता है। मान लेवें—किसी जीवात्मा को कुत्ते की योनि में जन्म मिल गया। कुत्ते की योनि भोग-योनि है। अब उसको किस प्रकार का भोग मिलना है? गली का कुत्ता होगा या किसी बँगले का कुत्ता होगा—यह उसके कर्मफल पर निर्भर करता है पर वह भोग-योनि है। उसमें भी अलग-अलग फल दिखाई देते हैं। अलग-अलग प्रकार से अलग-अलग पशु भी अपने खुद का भोग करके और अपनी योनि पूरी करके चले जाते है—यह प्रारब्ध है। पर मनुष्य की योनि में कर्म करने की शक्ति प्रकट होती है, इसलिये वह कर्म करता है। प्रारब्ध कब से काम करना शुरू करता है? संचित में से जब प्रारब्ध कर्म निकल गया इतना ही प्रारब्ध है। अब ऐसा नहीं समझना—संचित से निरन्तर

कर्मफल निकलता रहता है। कन्सेप्शन से लेकर अन्त्येष्टि तक वह प्रारब्ध निरन्तर काम करता रहता है। और जब होश सम्हालता है मनुष्य का बालक, तब उसमें क्या होता है? उसमें एक पुरुषार्थ जागता है। पुरुषार्थ माने उसकी बुद्धि काम करना शुरू करती है। अब वह अपने प्रारब्ध के साथ एण्टरेक्ट करना शुरू करता है। और फिर प्रारब्ध और पुरुषार्थ दोनो मिलकर कर्म सम्पन्न होता है। संक्षेप में कर्म का सिद्धान्त मैंने आपके समक्ष रखा।

प्रारब्ध कर्म को यदि मै एक फोर्स फील्ड कहूँ और पुरुषार्थ को भी फोर्स फील्ड कहूँ तो 'टू फोर्स फील्ड्स इण्टरेक्टिंग साइमलटेनियसली'—अर्थात् दोनों शक्तियाँ साथ-साथ कार्य करती है। *प्रारब्ध किस प्रकार से आ रहा है? प्रारब्ध का अर्थ होता है—एक* निश्चित मात्रा सुख की, एक निश्चित मात्रा दुःख की। प्रारब्ध माने अमुक मात्रा का सुख, अमुक मात्रा का दुःख। उस सुख-दुःख को अनुभव कराने के लिये प्रारब्ध ने आपको शरीर दे दिया। अब शरीर-इन्द्रियॉ-*अन्तःकरण-संघात आ गया। अब आपको भोग दिलवाना है। तो भोग* कैसे होता है? स्थूल भोग-इन्द्रियों का विषयों से संयोग हो, इन्द्रियों में विषयाकारा वृत्ति, सुख-दुःखाकारा वृत्ति आये, मन के सामने परोसी जाय और फिर मन उनका अनुभव करे। सुख-दुःख का अनुभव करना मन का धर्म है। *मन में वह प्रारब्ध वृत्ति उठायेगा ताकि विषय का सम्पर्क हो।* विषय का सम्पर्क इन्द्रियॉ अपने-आप जाकर कर नहीं सकती। मन में वह संस्कार उद्‌बुद्ध होगा प्रारब्ध के कारण। इन्द्रियॉ स्पन्दित होंगी प्रारब्ध के कारण। विषय सामने आयेगा। प्रारब्ध ने मन में संस्कार उठाया, फिर इन्द्रियॉ स्पन्दित हुई और विषय के साथ संयोग होते ही मन में जो विषयाकारा वृत्ति पैदा हुई, उससे अनुकूल विषय होगा तो सुख होगा, प्रतिकूल विषय होगा तो दुख, और प्रारब्ध का काम सम्पन्न।

यहॉ तुरन्त पुरुषार्थ आ जायगा। पुरुषार्थ क्या आयेगा? अन्तःकरण मे वृत्ति आते ही अन्दर से कोई जगेगा। *यह वृत्ति सही नही है। यह वृत्ति* गलत है। इसको नियन्त्रित या संयमित ढग से काम में लेना है या इसको पूरा काट देना चाहिये। जब विषय की वृत्ति उठती है तो साथ में अन्तःकरण में उसके राग-द्वेष का रस निकलता है और रसपूर्वक उस

भोग को किया जाता है। जब रसपूर्वक भोग को किया जाता है तब वासनाएँ और दृढ हो जाती हैं और रस को काट करके भोग किया जाता है तो सिर्फ भोग को करके वह उतना प्रारब्ध-भोग खत्म हो जाता है। उस प्रारब्ध ने वहीं आपको भोग दिया, फल दिया और खत्म। अन्यथा हम जो भोग कर रहे होते हैं, वह भोग करना भी अपने-आप मे एक कर्म बन जाता है। हम कैसे विशियस सर्कल के अन्दर फँसे हुए हैं? हमको तो प्रारब्ध-भोग मिलता है। उसको हम कैसे भोगते हैं? वह भोग करना भी राग-द्वेष-पूर्वक होता है। खराब आया तो कैसा खराब है? कितना हम दुखी हो जाते हैं। अच्छा आया तो हम फूल जाते है। इससे वासनाएँ और दृढ हो जाती हैं। और वह भोग भोगना अपने-आप मे एक कर्म बन जाता है। कर्म किया तो उसका फल भी होगा ही। इसी प्रकार से यह जो क्रियमाण कर्म है, निरन्तर इसके द्वारा कर्म किये जाते रहते हैं। उसके पीछे वासना काम करती रहती है।

मैंने आपको दृष्टान्त की बात बतायी थी। सौभरी महर्षि का दृष्टान्त है। उन्होंने हठपूर्वक यमुना में बैठकर समाधि का अभ्यास किया। अब शास्त्र के वचनों को समझ लें। उनके पीछे कोई रहस्य भी हो सकता है। 10 हजार वर्ष तक उन्होने समाधि लगायी। पर प्रारब्ध से लडकर, प्रारब्ध के विरुद्ध में जाकर ही मन को स्तब्धित कर दिया, मन को स्थिर कर दिया। वह निर्विकल्प समाधि नहीं थी। मन को विचारशून्य कर दिया, स्थिर कर दिया। इतने वर्ष हो गये, फिर भी प्रारब्ध ने पीछा नहीं छोडा। प्रारब्ध फल दिये बिना पीछा नहीं छोडता। कितना न्यायपूर्वक एक विधान है। आपका किया हुआ कर्म और उसके कारण जो फल उत्पन्न हुआ— कहीं भी चले जाओ, किसी भी प्रक्रिया को अपना लो, वह फल तो भोगने के बाद ही क्षीण होगा। तो सौभरि महर्षि ने समाधि लगायी। पर प्रारब्ध ने उनके अन्तःकरण को जगाया, स्पन्दित किया। अन्तःकरण स्पन्दित हुआ, शरीर स्पन्दित हुआ, इन्द्रियाँ जाग्रत् हुई। पास में एक मछली जा रही थी, पूरे परिवार के साथ जा रही थी। साथ में बच्चे कल्लोल करते हुए इधर-उधर जा रहे थे। उनके मन मे आया—यह कैसा अद्‌भुत सुख है। ऐसे सुख का तो मैंने अनुभव किया ही नहीं। गृहस्थ के सुख का तो मैने अनुभव किया ही नही। इसमें

कितना आनन्द है! कैसे हिलमिल करते हुए, बच्चे किलबिल करते हुए और आपस में एक-दूसरे का स्पर्श करते हुए जाते हैं—इसका तो मैंने अनुभव किया ही नही। तो वह संस्कार जागा। वह पड़ा हुआ था, जोर लगाया, प्राणायाम किया तो वह बीज बनकर छिप गया। काल को भी रोककर बैठ गया। बड़ा एक अद्‌भुत फिनोमिना होता है। किस प्रकार से माइण्ड को डीप अव्यक्त मे ले जाते हैं तब शरीर की सारी क्रिया लगभग बन्द जैसी हो जाती है। जब उनमे संस्कार उद्‌बुद्ध हुआ, प्रारब्ध के कारण, तो उनके मन मे आया कि मेरे को गृहस्थ का अनुभव करना चाहिये। तो वहाँ से निकलकर सीधे गये अयोध्या नरेश के दरबार मे। उनके पास पहुँच गये। मान्धाता ने उनका आदर-सत्कार किया, आसन दिया और बैठाया और कहा—आपकी क्या सेवा करे? 'मुझे तुम्हारी राजकुमारी से विवाह करना है।' राजा तो बिल्कुल चौंक गया। यह सूखा हुआ वृद्ध शरीर और यह कहता है राजकुमारी से विवाह करूँगा! वह इतनी सुन्दर तरुणी, उसकी तरुणावस्था और यह वृद्ध! अब तपस्वी को मना कर दें तो तपस्वी के शाप का भी भय रहता है। और हाँ कह दें तो कन्या के साथ घोर अन्याय। उन्होने बुद्धिमत्तापूर्वक उत्तर दिया, 'आप अन्तःपुर में पधारिये। जो राजकुमारी आपका वरण कर लेगी, उससे आपका विवाह कर दिया जाएगा।' यह बिल्कुल सही बात है। कन्याएँ पसन्द कर लेंगी तो आपका विवाह हो जायेगा। बड़ी खुशी की बात है। हमारा तो सौभाग्य है। राजा ने सोचा—इस बूढ़े खूसट से कौन राजकुमारी विवाह करेगी? सौभरी भी राजा की इस चालाकी को समझ गये। सौभरी ने योगबल के द्वारा अपने शरीर को अत्यन्त ही सुन्दर युवा शरीर में बना लिया। सारे आभूषणो एवं वस्त्रों से सुसज्जित होकर अन्तःपुर में गये तो राजा मान्धाता की 51 कन्याएँ उन पर रीझ गयी। सभी ने कहा—हम तो इन्ही से विवाह करेंगी। इतना उनका भव्य-दिव्य रूप था। 51 के साथ उनका विवाह सम्पन्न हो गया [illegible] द्वारा, तपोबल के द्वारा 51 महल बनाये और 51 शरीर [illegible] 51 महलों को सारी भोग सामग्री से सुसज्जित [illegible] दीर्घकाल तक वैवाहिक जीवन [illegible] उन्होंने उ[illegible] शरीर, मुख्य अन्तःकरण तो [illegible] ए, व[illegible] से सारे-के-सारे शरीरो [illegible]

की यात है। तपःशक्ति के द्वारा उन्होने उस भोग को किया। वाद में कई वर्षो के वाद जव वासना-वेग कम हुआ तो होश आया—'मैं क्या कर रहा था और मैं किस निम्न अवस्था में पहुँच गया।' तो सब-कुछ छोड़कर गये और पुनः साधना में लग गये। यहाँ समझने की बात यह है कि जो वासनाएँ हैं, उनसे कैसे उससे छुटकारा पाएँ? क्या इनको दबा दें? दबा तो सकते नहीं। तो इनका क्या करें? इनसे कैसे छुटकारा पायें?

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति।। गीता, 2/64

इन्द्रियों का प्रयोग करना पड़ेगा। शास्त्र के अनुसार राग-द्वेष को हटाते हुए, इन्द्रियों को शास्त्रीय-सात्त्विक विषयो मे शास्त्र निर्धारित कर्मक्षेत्र में लगाओ। पर राग-द्वेष छोडकर। 'रागद्वैषवियुक्तैस्तु'। राग-द्वेष इन्द्रियों में भी रहता है, अन्तःकरण में भी रहता है। अतः साधना कहाँ से प्रारम्भ करनी चाहिये—यह समझलें। आप इन्द्रियो को, मन को रोकना चाहते हैं। चारों तरफ भडकीले विषय पडे हुए हैं। ऐसी स्थिति मे इन्द्रियाँ कैसे वश में रहेंगी? आप जो-कुछ भी खा रहे हैं, पी रहे हैं, चख रहे हैं, देख रहे हैं और चारों तरफ का वातावरण ऐसा विषाक्त है जो कि आपकी इन्द्रियों को उत्तेजित करता है, इन्द्रियाँ कैसे वश में आयेगी? इन्द्रियाँ वश में आ नहीं सकतीं। इसलिये विषयों का भी विचार करना होगा। आपको यह रहस्य पुस्तकों में सीधा नहीं मिल सकता। परन्तु यह हमारी संस्कृति है। वर्ण और आश्रम-व्यवस्था और उनके अनुसार विषय का चयन होना चाहिये। विषय में इन्द्रियों का आहार—इसका तात्पर्य सारी इन्द्रियों के व्यवहार को देखना, सूँघना, चखना आता है। ऐसा नहीं कि मैं भोजन तो सात्त्विक कर रहा हूँ और सूँघ रहा हूँ बहुत उत्तेजना देने वाली चीज को। इत्र वगैरह लगा रहा हूँ। पढ रहा हूँ उत्तेजित करने वाली पुस्तकों को, मन में क्षोभ उत्पन्न करने वाली पुस्तकों को। सारी इन्द्रियों से जो-कुछ हो रहा है सब-कुछ सात्त्विक होना चाहिये। वासनाओं से छूटने के लिये इन्द्रियाँ, फिर अन्तःकरण, अन्तःकरण में भी मन, मन से ऊपर बुद्धि है। बुद्धि को ठीक करना है। बुद्धि के परे आत्मतत्त्व है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्।। गीता, 3/43

भगवान् गीता में कहते है—हे अर्जुन! तुम बुद्धि से भी श्रेष्ठ जो आत्मतत्त्व है उसमें स्थित होकर, इन्द्रिय-अन्तःकरण-शरीर-संघात को वश मे करो और इस कामरूपी दुर्जय शत्रु को मार डालो। वासना के द्वारा इच्छा, इच्छा के द्वारा कर्म, कर्म के पश्चात् उसका फल, फल के अनुसार यह जन्म-मरण—यही प्रक्रिया चल रही है, अनादिकाल से। इसको तोडने की प्रक्रिया करने के लिये हमारे सामने वैदिक सनातन धर्म एक मार्ग रखता है। उस मार्ग को धर्म के आचरण का मार्ग कहते हैं। इस प्रकार व्यक्ति को अपनी पात्रता को समझते हुए कि मैं किस स्थान पर हूँ, मैं किस प्रकार के अन्तःकरण से युक्त हूँ—इसको समझ करके फिर इस वासना से छूटने का प्रयास करना चाहिये।

कर्म का सिद्धान्त, जिसके लिये मैने आपको त्रिविध कर्म बताये यथा—सचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमाण कर्म। तो जब क्रियमाण कर्म करते हैं तो उसका फल उत्पन्न होता है। सचित कर्म को हम कैसे टैकल करें? ये तो हमारे हाथ में हैं नहीं। पर उनका अस्तित्व है। उनके अस्तित्व को हम स्वीकार करते हैं कि अमाप ढेरी सचित कर्मो की पडी हुई है। प्रारब्ध ने फल देना प्रारम्भ कर दिया तो प्रारब्ध के स्वरूप को समझ लिया। प्रारब्ध के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेना। कर्म के सिद्धान्त को नहीं समझने के कारण क्या हुआ? हम कर्म के नाम पर, कर्म के सिद्धान्त के नाम पर एक निष्ठुरता में, एक अत्याचार मे चले गये। जो ये दुःखी-कोढी लोग हैं, ये सब अपने-अपने कर्मो का फल भोग रहे है। इसमें गलत क्या है? सही बात है। जो कोई भी अनुभव करता है, अपने कर्मफल का ही अनुभव करता है—

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परोददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमि वृथाभिमानः
स्वकर्म सूत्रे ग्रथितो हि लोकः।।

कोई किसी को सुख-दुख नहीं दे सकता। 'अहं करोमि

वृथाभिमान': । मै किसी को सुख-दुख दे रहा हूँ—यह वृथा अभिमान है। स्वकर्मसूत्रे ग्रथितो हि लोकः । यह सारा लोक स्वकर्म मे ग्रथित है। परन्तु ज्योही आपने यह सोचा कि यह दुःखी व्यक्ति अपने कर्म का फल भोग रहा है, आपमें यह उपेक्षावृत्ति आते ही आपके द्वारा एक मानसिक कर्म हो गया। आपने किसी के बारे मे ऐसा सोचा और उपेक्षा की कि अरे! यह तो अपने कर्म का फल भोग रहा है और आपके उपेक्षा करते ही आपने एक मानसिक कर्म और वह भी मानसिक पाप कर दिया। हमारे शास्त्र मे पाँच ऋणो की बात आती है। इसलिये शास्त्र कहता है हरेक के प्रति हमारा एक दायित्व है, और विशेषकर जब वह तिरस्कृत है। वह दुःख मे है। किसी भी प्रकार के सामाजिक अत्याचार के लिये छूट नही है—हमारे यहाँ।

अब सामाजिक अत्याचार को समझें। एक सामाजिक व्यवस्था की विकृति के कारण कोई उपेक्षित या अस्पृश्य हो गये। यह क्या है? सामाजिक पाप के कारण, समष्टि-पाप के कारण। व्यष्टि-व्यष्टि द्वारा जो पाप किया गया, कुकर्म किया गया, गलत ढंग का आचरण हुआ— उसके कारण यह हुआ। इसलिये आप उत्तरदायी है। अपने दायित्व को सम्हालो। इसलिये जो हमारा ऋणबोध है, जो कर्तव्यबोध है, उसको समझे बिना कर्म के सिद्धान्त को सही ढंग से समझ सकते नही। यह जो हमारे ऊपर आरोप लगाया जाता है कि ये इस प्रकार से भाग्यवादी है या पलायनवादी है या सामाजिक अत्याचार को प्रोत्साहन देते हैं, इसका उत्तर हमे देना है—इसका निराकरण हमको करना पडेगा। और अधिक संवेदनशील होकर मानव-सेवा, माधव-सेवा, नर-सेवा, नारायण-सेवा करनी होगी। पर इसको नारा मात्र बनाना नहीं। सेवा किसकी की जाती है? बेचारा, दीन-दुःखी है उसकी सेवा करना है—यह लक्ष्य हमारा है। दीन-दुःखी की सेवा नहीं करना, नारायण की सेवा करना। माता-पिता की सेवा करते हैं तो माता-पिता को दीन-दुःखी समझकर सेवा करते हैं कि बेचारे बूढ़े हो गये है, इनकी सेवा करें। सेवा जिसकी की जाती है वह विराट् है। वह बडा है उसकी हम सेवा करें। नर-सेवा नारायण-सेवा है, मानव-सेवा माधव-सेवा है। इस प्रकार से इसके पीछे एक भाव होना चाहिये। जीव-सेवा शिव-सेवा। इसके पीछे भाव क्या है? हमको एक अवसर मिल रहा है कि हम उसके अन्दर नारायण को देख करके नारायण समझ करके और उसके

प्रति आदर एव कृतज्ञता के साथ मे उसकी सेवा करे, तब जाकर आपका कर्म कुछ सेवा का रूप लेगा। नहीं तो यह दया होगी।

दीन-दुःखियो पर दया करो—इसके लिये भी हमारे यहॉ विधान है। पर जब हम एक ऊपर के, यज्ञ के स्तर की बात करते हैं तब वहॉ पर आपको एक विराट् को देखना पडेगा और सिर्फ कर्म को ऐसे ढर्रे में डालकर ऐसे छोड नही सकते।

दूसरा, कर्म के सिद्धान्त को गलत समझने के कारण हमारे यहॉ पर भाग्यवाद फैल गया। भाग्यवाद आ गया। भाग्य में जो होगा, वही होगा। तो यह भी प्रारब्ध को सही ढंग से नहीं समझने के कारण और कर्म के सिद्धान्त को सही ढग से नही समझने के कारण। जो भाग्य में लिखा है, वही होगा। मेरे भाग्य में यही लिखा हुआ है—यह हमारे अन्दर ऐसे घुस गया कि हमारी जो महान कर्मठ संस्कृति थी वह भाग्यवादी संस्कृति बन गयी—होगा वही जो राम रचि राखा। क्यों भई, यह सही बात है? 'ईश्वर की इच्छा के बिना एक पत्ता भी नही हिलता', 'होगा वही जो राम रचि राखा'—ये सारे अध्यात्म के विकृत रूप हैं और कर्म-सिद्धान्त को नही समझने के कारण है। इस प्रकार से हमारी सस्कृति मे एक विकार आ गया। जब हम कर्म-सिद्धान्त को पूरा का पूरा समझ लेते हैं और साधना करते है तो एक स्तर पर साधक को यह कहना पडता है—होगा वही जो राम रचि राखा। यह कौन-सा साधक है? जिसके अन्दर से कामनाओं का मल लगभग समाप्त हो गया है। इसमे अब अहंकार के समर्पण की तैयारी है। ऐसे उत्कृष्ट साधक के लिये, जो सन्त जैसा हो चुका है, वह इस बात को कहता है तो ठीक है, उस पर यह लागू होता है। आम व्यक्तियों के ऊपर यह बात लागू नहीं होती। उनके ऊपर तो ऋण पडा हुआ है। इसलिये ऋण-विमोचन की बात उनके सामने करनी चाहिये।

**'होगा वही जो राम रचि राखा'**
**'जाहि विधि राखे राम ताहि विधि रहिये'**

राम राखे गुलाम तो गुलाम बने रहिये, राम राखे निर्बल तो निर्बल बने रहिये, राम राखे निर्धन तो निर्धन बने रहिये—क्या हमे ऐसी धारणा रखनी चाहिये? हम इसका अर्थ ही पूरा नहीं समझते और इतनी-सी बात पकड़कर बैठ जाते हैं। यह कौन कह रहा है इसको समझते ही

नहीं—ऐसा समझकर कर्म के सिद्धान्त को यदि हम अपनाते हैं, तो जीवन में एक बहुत ही उत्कृष्ट, सन्तुलित, स्वस्थ कर्मठता आती है।

मुझे किसी ने कहा कि चीन में व्यक्ति 16-16 घण्टे काम करते है इसलिये उनके उत्पाद इतने सस्ते होकर आ रहे हैं। उनका कैसे मुकाबला करे? तो क्या हम लोग भी 16-16, 18-18 घण्टा काम करना शुरू कर दे? उनसे प्रतियोगिता करनी है तो हमें करना ही पडेगा। ऐसा करेंगे तो हमारी संस्कृति का तात्पर्य, हमारे जीवन का आदर्श, हमारे जीवन का तात्पर्य, हमारे जीवन का लक्ष्य कैसे सिद्ध होगा? कहते है—काम करते रहो। क्यों काम करते रहें? ताकि पैसा मिले। पैसा लेकर क्या करोगे? भोग करेंगे। तो अर्थ का उपार्जन भोग के लिये—यह दर्शन तो हमारा है नहीं। हमारा दर्शन जो है वह जीवन में पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के लिये है।

**इह चेद वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहा वेदीन् महती विनष्टिः।।**

—केन. उपनिषद् 2.5

इसी जन्म में ब्रह्म को जान लिया वही सत्य है, यहाँ नहीं जाना तो महान विनाश है। हमारे यहाँ पर स्वर्ग की बात भी आयी। पर कह दिया—वहाँ से भी आपको वापस आना पडेगा। थोडा समय है, आप यहीं पर प्राप्त कर लेना। जीवन की यह एक सही समझ है। इसलिये प्रारब्ध कर्म क्या है, क्रियमाण कर्म क्या है, संचित कर्म क्या है? कर्तापन क्या है, भोक्तापन क्या है? वासना किस प्रकार से इच्छा, इच्छा से कर्म, कर्म से कर्म-फल—यह चक्कर किस प्रकार चल रहा है, इसको कैसे तोडना? यह एक रहस्य है। इस रहस्य को ही कर्मयोग कहते है। निष्काम कर्मयोग क्या है? इस चक्रव्यूह को तोडकर आगे बढना—इसको निष्काम कर्मयोग कहते हैं। तो अब हमको एक परिस्थिति प्राप्त है। निष्काम कर्मयोग की साधना का पात्र कौन है? जो कामनाओं की पूर्ति से पककर ऊपर उठ चुका है, कामनाओं की प्राप्ति करने के लिये जो प्रयास नही कर रहा है। अर्जुन ऐसा ही साधक था। भगवान् कहते हैं—

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**
**मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।।** गीता, 2/47

यह कर्मयोग का बडा प्रसिद्ध श्लोक है। इस पर एक विहंगम दृष्टि

डाल लीजियेगा और हम लोग साधना के अधिकारी है—ऐसा निश्चय करके कर्मयोग की साधना करना। इससे चित्त की शुद्धि, ज्ञान की प्राप्ति का अधिकार प्राप्त होता है। गीता कहती है—

**न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।** गीता, 3/5

एक क्षण के लिये भी हम बिना कर्म किये रह नहीं सकते। कर्तापन हमारे अन्दर है, भोक्तापन हमारे अन्दर है—यह पहले ही संक्षेप मे बता चुका था। कर्म करेगे तो उसका फल और फल हमको नही चाहिये तो फल का अर्पण कर दो। फल की आसक्ति को छोडना, कर्म की आसक्ति को छोडना, कर्तापन का विसर्जन करना—तब जाकर कर्मयोग सिद्ध होता है।

पर सबसे पहली बात यह है कि हमारा कर्म स्वकर्म होना चाहिये। अगर वह स्वकर्म नहीं होगा, स्वधर्म नहीं होगा तो फल की आसक्ति छूटेगी नही, कर्म की आसक्ति छूटेगी नहीं और कर्तापन है वह छूटेगा नहीं। सॉस लेने के लिये क्या आपको जोर लगाना पडता है? हॉ ठीक है। प्राणायाम के समय की बात अलग है। सामान्य रूप से सॉस लेते हैं, सहजतया से श्वास आ रहा है, जा रहा है। सहजता से हम अनुभव कर रहे है। एक सहज अभिव्यक्ति है इसी को स्वकर्म कहते है, इसी को स्वभाव कहते हैं। इसी को स्वधर्म कहते है। सहजता से हो रहा है। इसके लिये आपको विशेष रूप से जोर लगाकर, अहंकार को जाग्रत् करके इसके एक सम्प्रयोग की आवश्यकता नहीं है। इसलिये क्या होगा? अहंकार को काटना, अहकार का समर्पण करना सरल हो जायगा। दूसरे स्वकर्म, स्वधर्म अपनाने से क्या होगा कि वह सहजता से आपको कर्म में उतार देगा अन्यथा वासनान्वित होकर आप उस कर्म को करेंगे। वासना आ गयी तो वासना से कर्म करोगे तो फिर वह वासना दृढ हो जाएगी। तो कर्मफल के अर्पण में, कर्मफल की आसक्ति को छोडने में, कर्तापन को त्यागने मे यह एक पहली शर्त हो जाती है कि वह कर्म आपका स्वकर्म होना चाहिये? आपका स्वधर्म होना चाहिये। आपके स्वभाव के अनुसार होना चाहिये। इस प्रकार से कर्मयोग के कुछ बिन्दु आपके समक्ष में रखे। पहले योगकर्म होता है, फिर यज्ञकर्म होता है उसके पश्चात ब्रह्मकर्म होता है। इस प्रकार कर्मयोग के विषय मे चर्चा की। आज इसको यहीं विराम देते हैं।

# दसवाँ प्रवचन

वैदिक सनातन धर्म कालजयी धर्म, अमृत मूलवाला धर्म है, अमृत की ओर ले जाने वाला धर्म है। आनन्दकन्द की तरह अंकुरित होता हुआ, अमरफल को धारण कर अमरफल को वितरित करने वाला वैदिक सनातन धर्म है। विगत कई सत्सगों में हमने इस पर विचार किया कि किस प्रकार इस पुण्य भारत भूमि में यह धर्म प्रकट हुआ और सारे विश्व मे यह फैला। हम काल की उस अवधारणा को लेकर चल रहे हैं जिसका कोई ओर-छोर नहीं है। यह कोई कल्पना नहीं है। यह एक यथार्थ है। और इसलिये हमारे वैदिक सनातन धर्म का अपने-आप में इतना विराट् व्यक्तित्व है, इसमें विविध प्रकार की अनुभूतियाँ भरी पड़ी है। अपने एक आत्मतत्त्व को लेकर यह निरन्तर मानो स्वयं ही कुछ प्रयोग किये जा रहा है। उस प्रवाह के अन्तर्गत हमारा भी एक अस्तित्व आया है। हम जिस कालखण्ड में आये हैं उसका अपने-आप में एक महत्त्व है। हम ऐसा सोचते हैं कि यदि हम आज से सौ वर्ष पूर्व हुए होते तो शायद हम भी स्वतन्त्रता आन्दोलन में अपने प्राणों की आहुति देते। निश्चित रूप से रहे होंगे। नहीं तो, आप लोगों मे देशसेवा के संस्कार जाग्रत् नही होते। हमारे अन्दर भी एक प्रवाह है—एक अमर प्रवाह है। इसको आत्मकुल कहते हैं। कल-कल करके जो प्रवाहित होता जाता है उसको कुल कहते है। दो कूलो के बीच मे प्रवाहित होता है इसलिये इसे कुल कहते हैं। तो हमारा भी एक आत्मकुल है। यह भी आनन्दमूलक है। यह आनन्दमूलक आनन्द की तरफ जाता हुआ, आनन्द-समुद्र की तरफ उछलता हुआ जा रहा है पर हमारा आत्मकुल मानो अपनी अभिव्यक्ति के लिये ही तीन कुलो से सुशोभित है। एक पितृकुल है, एक ऋषिकुल है और एक देवकुल है। ये तीन कुल भी हमारे साथ में ही प्रवाहित हैं। इन तीन कुलो को लेकर यह आत्मकुल मानो अपनी अक्षय ऊर्जा को प्रकट कर रहा है।

जैसे हमारे अन्दर तीन कुल है वैसे ही हमारी भारतीय सस्कृति में

भी ये तीनों कुल हैं। एक देवकुल है, एक ऋषिकुल है, एक पितृकुल है। इसकी स्वय की एक आत्मा है। जैसा हमारा एक आत्मतत्त्व है वैसे हमारी संस्कृति का एक आत्मतत्त्व है। इस संस्कृति में यह देवकुल अपनी पूर्णता के साथ प्रकट हुआ है। विश्व की अन्य संस्कृतियो मे भी देव की एक अवधारणा है। पर जैसी हमारी संस्कृति में देव की अवधारणा है वैसी अन्यत्र नहीं। वहने को तो कोई भी नदी वहती है। हो सकता है, वह सागरगामिनी भी हो। कई नदियाँ किसी झील में जाकर परिसमाप्त हो जाती हैं, कोई जाकर किसी दूसरी नदी में मिल जाती है, कोई मरुस्थल में जाकर अपने अस्तित्व को खो देती है, पर गंगा तो गंगा ही है। ब्रह्मपुत्र ब्रह्मपुत्र है। जिस प्रकार से ये महान नदियाँ हैं इसी प्रकार से यह महान संस्कृति है। इसमें देवकुल अपनी अगाध गहराई के साथ में और वैविध्य के साथ मे हमको दिखाई देता है। जैसा यह देवकुल, वैसा ही ऋषिकुल, वैसा ही पितृकुल। जब हम भारतीय संस्कृति की बात करते हैं या वैदिक सनातन धर्म की बात करते हैं, तो हम स्वयं के विकास के सन्दर्भ मे बात करते हैं। हम भी इसके घटक हैं। जब तक हम संस्कृति के तीनों कुलों से अपने को नहीं जोडेंगे तब तक हमारे व्यक्तित्व का विकास भी पूर्ण नही होगा और इन तीनों से जुडने के लिये यज्ञ, दान, तप की साधना को अपनाना होगा। आश्रम-व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था एवं चारों पुरुषार्थों को स्वीकार करना होगा।

हम चिन्तन कर रहे थे वैदिक सनातन धर्म का—यह प्रवाहित होता हुआ, बहता हुआ चला आ रहा है और इसके अन्तर्गत हमने ईश्वर-तत्त्व पर, ब्रह्म-तत्त्व पर, जगत्-तत्त्व पर, माया-तत्त्व एवं आत्मतत्त्व पर विचार किया। हमने ऋणों को लेकर विचार किया, ऋण-विमोचन की प्रक्रिया को लेकर विचार किया। उस सन्दर्भ में हम बढते-बढते आ रहे थे और आखिर मे हमने देखा कि किस प्रकार से यह अद्भुत अनमोल अवसर हमको प्राप्त हुआ है—उस पूर्णता को यहीं पर प्राप्त कर लेने का है। भारतीय संस्कृति की चेतना विराट् की चेतना है, उसके साथ मे एकमेक होकर हम उस पूर्णता को अभिव्यक्त करे। ऐसा अन्यत्र विश्व के किसी पन्थ में नही है कि जीते-जी ब्रह्मरूप होकर उस आनन्द को वितरित किया जाता है, सबके साथ में आनन्द को बाँट करके अनुभव किया जाता

है। यह आदर्श प्रत्येक भारतीय के समक्ष रखा जाता है। अब जिसमें जैसी पात्रता है, उसको अपनाकर वह आगे बढता जाता है। इस प्रकार से हम इस प्रसग को लेकर आगे बढ रहे थे—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। —गीता, 3/5

एक क्षण भी हम बिना कर्म किये रह नहीं सकते—यह हमारे पास में एक शक्ति है। यह हमको रोकती भी है और हमको जोडने का साधन भी बनती है। हमारे अन्दर एक भावना है, हमारे अन्दर एक चिन्तन है, हमारे अन्दर एक कर्म की शक्ति है। ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति और एक क्रियाशक्ति—इन तीनों को लेकर हम अपने जीवन की साधना को आगे बढाएँ, खासतौर से आपके सन्दर्भ मे, जिनके समक्ष एक उज्ज्वल लक्ष्य है। जिनके अन्तःकरण में एक दैवी-सम्पत्ति है। उनके लिये एक बहुत बडा दायित्व हो जाता है। यह भारतीय संस्कृति अपने छोटे—नन्हे-मुन्ने बालकों से ऐसी अपेक्षा नहीं करती जैसी अपेक्षा वह आप से करती है। परमेश्वर भी साधारण प्राणियो से या ग्राम्य अवधारणा वाले व्यक्तियों से ऐसी अपेक्षा नहीं करता जैसी वह परमेश्वर हमसे अपेक्षा करता है। क्या परमेश्वर को भी हमारे कर्म की आवश्यकता है? मैने ब्रह्म की बात भी कह दी और ईश्वर की बात भी कह दी। दोनों में अन्तर है। वही ब्रह्म नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वरूप है। जब वह मायाधिपति होकर सृष्टि, स्थितिलय की लीला करता है उस समय उसको हम ईश्वर कहते हैं, महेश्वर कहते हैं। उस समय उसका हमारे साथ में एक व्यवहार है। उसको भी हमारे कर्म की आवश्यकता है। वह प्रतीक्षा करता रहता है, देखता है कि कहाँ पर कैसे कर्म किये जा रहे हैं, तदनुसार मैं उनको अपनाऊँ। विशेषकर जहाँ निष्काम कर्म किया जाता है, उसकी वह प्रतीक्षा करता रहता है। तुरन्त उस कर्म को लेकर, सारी सृष्टि में एक सौन्दर्य को, एक सुख को, एक सौष्ठव को, एक लय को वह अपादित कर देता है। इसलिये हमें गर्व है कि निष्काम कर्म के पथ पर हम आगे बढ रहे है। मैने पहले ही बताया—हमारी सारी सस्कृति मोक्ष की अवधारणा को लेकर चल रही है। हमारी सारी संस्कृति निष्काम कर्म की अवधारणा को लेकर चल रही है। हमारी सारी संस्कृति एक पौरुष की अवधारणा को लेकर चल रही है। इसके नन्हे-से-नन्हे कदम में, नन्हे-

से–नन्हे सोपान में हमको सब–कुछ दृष्टिगोचर हो जायगा। गर्भाधान सस्कार से मोक्ष की साधना, गर्भाधान से ही हमारी निष्काम कर्मयोग की साधना शुरू हो जाती है।

इस प्रकार से देखे—हम एक शास्त्रीय जीवन की शैली को लेकर चल रहे है। उसमें सारे–के–सारे तत्त्व हमको दृष्टिगोचर हो रहे है। हम बडो के प्रति आदर करते हैं। हम एक ऋणबोध की बात करते हैं। कोई भी हो, एक तिनका भी हो, उसके प्रति एक आदर की भावना रखते है। एक नन्ही–सी दूब, जो धरती से बाहर निकली, उसको भी हम आदर से उठाते है और भगवान् गणपति को अर्पित करते है। एक नन्हा–सा बालक है, उसके प्रति भी यह भावना होती है—वह अनन्त पथ से चलता हुआ आया, हमारे ऑगन में किलक रहा है। ऑगन के अन्दर महक रहा है। कृतज्ञता–ज्ञापन की हमारे जीवन की यह एक संस्कृति है, इसमें छिपा हुआ पडा है निष्काम कर्मयोग की साधना का एक बीज, एक रहस्य पडा हुआ है। मैं जब नन्हे–नन्हे बालको के मध्य मे जाता हूँ तो उनके सामने कठिन भाषा नहीं बोलता। चूंकि आप लोग बहुत ज्यादा पढे हुए है इसलिये थोडे–थोडे कठिन शब्द बोल देता हूँ क्योंकि आपको बहुत मजबूत बनना है, दृढ बनना है हर दृष्टि से। एक तपस्वी बनना है, एक योगी बनना है, एक ज्ञानी बनना है, एक भक्त बनना है क्योकि आपने बहुत बडा दायित्व अपने ऊपर ले लिया है।

**'दुर्ग पथः तत् कवयो वदन्ति'** —कठ उपनिषद्, 1 3 14

कठ उपनिषद् में यह बताया कि यह दुर्गम पथ है। जैसे छुरे की धार पर चलना है, वैसा है। इसलिये इसमे एक सन्तुलन चाहिये। इसमें एक मजबूती चाहिये। इसलिये कठिन–कठिन बात कह दी। उसको स्वीकार कर लेना।

छोटे–छोटे बच्चों के बीच मे जाता हूँ तो पूछता हूँ—परीक्षा में कितने नम्बर आये ? वह कहता है—इतने प्रतिशत नम्बर आये। मैं पूछता हूँ—वर्षभर पढाई करते रहे ? वह कहता—नहीं, परीक्षा नजदीक आ गयी तब पढाई की। क्या टी. वी. देखते हो ? क्रिकेट खेलते हो ? पूछते–पूछते परीक्षा के दिनों तक मैं पहुँच जाता हूँ। फिर पूछता हूँ कि परीक्षा मे तुमको

किस-किस ने मदद की? तब वह स्वय कहता है, बताना शुरू करता है—मेरी माँ ने मदद की, मेरे भैया, बहन, साथी, गुरुदेव ने मदद की। ऐसे बताते-बताते फिर वह खुद ही बोलता है—मेरे पेन ने भी मदद की। मेरे स्कूटर ने भी मदद की। सबकी मदद लेकर ही कोई कार्य सम्पन्न होता है।

कर्मयोग की साधना कहाँ से प्रारम्भ होती है? 'भृत्यवत् कर्म करोमि'—हे प्रभु! आप स्वामी, मैं सेवक। आपकी आज्ञानुसार, आपकी प्रीति के लिए स्वकर्म करता हूँ। तो कर्मयोग की साधना शुरू हो गयी।

इसको और खुलासा करते हैं। पाँच जने मिलकर किसी भी कर्म को सम्पन्न करते हैं—

**अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।**
**विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम्।।** गीता, 18/14

हम कहाँ दैववाद में जाकर फँस गये। हम दैव को स्वीकार करते है, हम प्रारब्ध को स्वीकार करते है। प्रारब्ध को जो हेण्डल कर रहा है उसको भी स्वीकार करते हैं, केवल प्रारब्ध मात्र को नहीं। 'ये मेरे कर्म हैं।' तुम्हारे कर्म हैं तो क्या किसी विराट् चेतना के द्वारा तुम्हारे पास में आ रहे हैं? हम उस कर्म को भी स्वीकार करते हैं। ठीक है, हमारे द्वारा किया हुआ है। पर आ रहा है किसी विराट् चेतना के द्वारा, किसी दिव्य चेतना के द्वारा, किसी करुणामयी, वात्सलमयी चेतना के द्वारा, किसी अभिभावक-भाव से भरी हुई चेतना के द्वारा वह प्रारब्ध हम तक आ रहा है। माँ तो बच्चे की गन्दगी हटाने के लिये रगडती है, बच्चे के हित के लिये रगडती है। यह जो दुःख हमारे अन्दर आ रहे हैं, उस विराट् मातृमयी चेतना के द्वारा आ रहे हैं, हम उससे आगे बढते है। मेरा किया हुआ कर्म आ रहा है। कोई काम करते हैं तो उसके पीछे 'अधिष्ठान' यह शरीर। शरीर को समझो। यह भी हमारे कर्म को सम्पन्न करने में एक अंग है। अधिष्ठान तथा कर्ता और उसमें एक कर्तापन का भाव आया हुआ है। और यह भाव क्या है? यह सचमुच मे है या कल्पना है? पर है यह जरूर। पर यह वास्तव में क्या है? फिर यह जो अलग-अलग करण हैं, ये अलग-अलग पंचतन्मात्राओ से निकलकर आयी हुई रश्मियाँ जैसी हैं।

उस समष्टि सूर्य में से या हिरण्यगर्भ में पचतन्मात्रा आयी। पंचतन्मात्रो के साथ अपने को एकाकार करने वाली चेतना को हिरण्यगर्भ कहते है। रश्मियो की तरह उसमे से निकलकर आये हुए हमारे ये करण हैं। सबको धन्यवाद—हाथ-पैर, आँख-कान को, सबने मिलकर इस काम को किया है। 'विविधाश्च पृथक्चेष्टा।' अलग-अलग पंचप्राण नहीं, दस प्राण—प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय, देवदत्त। ये सब मिल कर इस कार्य को सम्पन्न कर रहे हैं। पाँचवाँ देव है। देव के दो अर्थ हैं। एक अर्थ तो मैंने देवऋण के सन्दर्भ मे बताया था—प्रत्येक इन्द्रिय का एक अधिष्ठाता देवता। वह चाहे कर्मेन्द्रियाँ हो, चाहे ज्ञानेन्द्रियॉ हो और चाहे अन्तःकरण। अन्तःकरण माने मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और अव्यक्त। सबका एक अधिष्ठाता देवता, एक समष्टि, एक कॉस्मिक कॉन्सियश फोर्स है। वह उसका देव है। उस देव के बिना कोई काम कर ही नहीं सकते। वह चाहे शारीरिक कर्म हो, चाहे ऐन्द्रिक कर्म हो, चाहे मानसिक कर्म हो, उसके लिये देव चाहिये। देव का एक अर्थ तो यह हो गया। देव का एक और अर्थ है—उसे प्रारब्ध कहते हैं। यह जो प्रारब्ध है, यह निरन्तर कार्य करता रहता है, आता रहता है, परिस्थितियों को लाता है, व्यक्तियों को लाता है, चित्त में एक प्रकार की वृत्तियों को उठाता है। देव का एक बहुत बडा रोल है। इस पर अधिक से अधिक चिन्तन करना।

गलत चिन्तन किया तो राष्ट्र की धारा में अवरोध आ गया। सही चिन्तन करो तो अपने अन्दर उद्दाम कर्मठता पैदा होगी, ऐसा अद्‌भुत पौरुष प्रकट होगा जो आसुरी नही होगा। वह दैवी होगा और हमारे को निर्मल करने वाला, आनन्दमय करने वाला होगा।

*अयम् मे हस्तो भगवः भगवतोऽपि भगवत्तरः*

वेद कहता है—यह मेरा हाथ ही भगवान् है, भगवान् से भी बढकर है। हम भी तो कह सकते है—मैंने माँ का दूध पीया है। मैंने गुरु की लगोटी धोयी है। तो गुरु को स्मरण करते है—अपनी शक्ति के पीछे। अपनी शक्ति के पीछे मॉ को स्मरण करते है। इसलिये वैदिक ऋषि कहता है—

**अयं मे हस्तो भगवः भगवतोऽपि भगवत्तरः**

मैरे ये हाथ भगवान् हैं, ये भगवान् से भी बढकर हैं—ऐसा कह दिया। इसमें कोई अहकार नही है। इसमे स्मरण है कि वह जो परमेश्वर है वह मेरी आत्मा है।

तो देव के दो अर्थ हो गये। दूसरा अर्थ प्रारब्ध है और वह निरन्तर काम कर रहा है। वह एक अद्‌भुत प्रक्रिया से कार्य कर रहा है। अतः प्रारब्ध को अच्छी तरह से नहीं समझेगे तो जीवन में रसता नहीं आयेगी। आपमें कलात्मकता नहीं आयेगी। मन मे एक अवसाद आने की सम्भावना बनी रहेगी। इसे सही ढंग से समझ ले। यह एक मल्टी डाइमेन्शनल फोर्स फील्ड है। बहुआयामी है और बडा कलात्मक है। छिपता-छिपता, खुलता-खुलता यह अपने-आप को प्रकट करता जाता है। कभी छिप-छिप करके आता है तो कभी खुल-खुलकर के आता है। मैं एक दृष्टान्त से इसे बता दूँ।

एक व्यक्ति जा रहा था और उसका एक कार से एक्सीडेण्ट हो गया। जिस कार से एक्सीडेण्ट हुआ था, लोगों ने उसे घेर लिया उसी समय। उस घायल व्यक्ति ने कहा—नहीं भई, इसको छोड दें। इसकी कोई गलती नहीं है। मैं ही कुछ खोया-खोया चल रहा था इसलिए एक्सीडेण्ट हो गया। वह अस्पताल गया, हाथ-पैर में पट्टी बँधायी, प्लास्टर करवाया। दूसरे दिन उसका एक फैक्ट्री में मैनेजर की पोस्ट के लिए इण्टरव्यू था। वह इण्टरव्यू के लिये गया तो सामने वही कार वाला व्यक्ति बैठा हुआ था। वह उस फैक्ट्री का मालिक था। उसे चुन लिया। वहाँ अन्य कई पी-एच. डी., एल-एल. बी.—वेल क्वालिफाइड, सिफारिश वाले भी थे, किसी को नहीं चुना। बहुत बडा उद्योग था, उसमें मैनेजर के लिये चयन कर लिया।

तो प्रारब्ध क्या कर रहा है? हम तो कुछ विपरीत होते ही सिर पकड़ के बैठ जाते—यह क्या हो गया? यह क्या हो गया? अरे! समझो, इसके पीछे ईश्वर का हाथ काम कर रहा है। वह तो युगों-युगों को अपने सामने प्रत्यक्ष देखता है। हमारी तो छोटी-सी लघु दृष्टि है, दो वर्ष, पाँच-दस-बीस-पचास अधिक-से-अधिक सौ वर्ष। उससे ज्यादा कहाँ देख सकते हैं। वह तो युगों-युगों को हाथ में रखकर देखता है, वह हमको हेण्डल कर रहे हैं। हमको शुद्ध कर रहे हैं, हमको ऊपर उठा रहे है, हमको

परिपक्व बना रहे हैं। इसलिये प्रारब्ध को समझो। बाहर की उपलब्धियों में प्रारब्ध का रोल (Role) ज्यादा प्रभावी होता है। आन्तरिक उपलब्धियों में पुरुषार्थ की भूमिका ज्यादा प्रभावी होती है। मैंने बताया किस प्रकार से बाहर की उपलब्धियों में प्रारब्ध की भूमिका अधिक है और आप उससे झगड रहे है। *प्रारब्ध एक नियम से काम कर रहा है। आप उसके विरुद्ध* होकर झगडा कर रहे हैं। कर सकते हैं। ऐसी स्वतन्त्रता हमको दे दी है प्रभु ने। हमको एक अरबपति बनना है तो करो कोशिश अरबपति बनने की। पर साथ में नियमन कर दिया—शास्त्रीय ढंग से। धर्म के अनुसार, नियम के अनुसार, संविधान के अनुसार, अपने सामाजिक रीति-नियमों के अनुसार, पर्यावरण को क्षति पहुँचाये बिना आप प्रयास करो। प्रयास करने के लिये मना नहीं है। पर अरबपति बनना ही सब-कुछ नहीं है। अगर बहुत अनुकूल प्रारब्ध हुआ तो आपको कोई गोद ले लेगा। एक अरबपति के कोई लडका नहीं था। वह ढूँढ रहा था—कोई अनुकूल लडका मिले। अनुकूल लडका मिला तो उसी को गोद ले लिया। कितना अनुकूल प्रारब्ध आ गया और वह बन गया अरबपति। बाहर की उपलब्धियों में प्रारब्ध का रोल अधिक होता है। आन्तरिक उपलब्धियों में प्रारब्ध की भूमिका कम होती है। जब हम कर्म करते हैं तो हमें उस प्रारब्ध *शक्ति को भी श्रद्धापूर्वक, आदरपूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिये।*

इस प्रकार भगवद्गीता कहती है कि पाँच जने मिलकर कर्म कर रहे है—अधिष्ठान, कर्ता, करण, चेष्टा और दैव। ऐसा होने पर भी जो कहता है कि मैं कर्ता, मैं कर्ता—उससे ज्यादा, झूठा, मिथ्या, अभिमानी वाचन करने वाला कौन हो सकता है? 'अहम् कर्ता'—ऐसा जो समझता है वह बडा मिथ्या अभिमान करता है। हमारी यह साधना है। जब हम केन्द्र के कार्यकर्ता रूप से आगे बढ रहे है तो सर्वप्रथम स्वीकार कर लेना कि हम किसकी सेवा कर रहे है, क्या साधना कर रहे हैं, किस लक्ष्य को लेकर हम आगे बढ रहे हैं। पर हम है क्या? हमारी ताकत क्या है? हमारी ताकत क्या है, हमारी शुद्धि क्या है—उस सबको समझकर आप आगे चलें। मैने थोडा-सा संकेत दिया था—किस प्रकार, कितनी अधिक गहराई को लेकर, कितने अद्‌भुत यन्त्र को लेकर, शरीर को लेकर, इन्द्रियो, मन को लेकर और साथ में अपने प्रारब्ध को लेकर हम चल रहे

है। हमारे मन मे तो न जाने कितनी वासनाएँ है, न जाने कितने सस्कार है। क्यों, घबरा गये? मैने सौभरी ऋषि के प्रयोग की बात कही थी। हो सकता है कि उसने धर्म के अनुसार साधना में प्रवृत्ति नही की थी। अपने अहंकार को लेकर, अपनी जिद को लेकर उन्होंने एक प्रयोग किया कि उन्होंने मन को स्थिर कर दिया। मन को स्थिर किया तो क्या शास्त्र की आज्ञानुसार किया? गुरु की आज्ञानुसार किया या मनमुखी होकर के किया।

हमारे यहाँ साधको में, आस्तिक लोगों में ये शब्द बहुत प्रचलित है—एक तो मनमुखी होता है और एक गुरुमुखी होता है। मनमुखी वह होता है जो अपने मन के अनुसार ही काम करता रहता है। जैसे मन में आ जाय, वैसे ही करता रहता है। तो मनमुखी होकर साधना करने लग गया। मन को स्थिर कर दिया। पर केवल मन को स्थिर करने से क्या होता है? मन को समझा ही नही—मन क्या होता है और मन के अन्दर क्या-क्या संस्कार हैं—समझा नही। मन कितना ताकतवर है—इस बात को समझा नहीं। मैने बचपन मे एक पुस्तक पढी थी। मुझे थोड़ा शौक था। मैने पुस्तकालय से एक पुस्तक निकाली जिसमे कुछ विधि लिखी हुई थी कि किस प्रकार ट्रान्स में जा सकते हैं। माँ को तो मालूम है—बच्चे को सुलाना हो तो क्या करती है, लोरी गाती हुई उसकी पीठ पर धीरे-धीरे थप-थप करती है तो एकदम नीद आ जाती है। उस पुस्तक मे लिखा हुआ था— कोई व्यक्ति अपने गले से 'ॐ ॐ या ओ-ओ' ऐसी आवाज निकाले और इस समय कोई धीरे-धीरे उसकी पीठ मे थपकी दे तो ॐ ॐ करने वाला ट्रान्स मे चला जायगा। एकदम से उसकी ऑख ऊपर की तरफ चढ जायगी। ये प्रकियाएँ होती है। प्राणायाम की भी कई प्रक्रियाएँ हैं। ऐसी कई क्रियाएँ है जिनके द्वारा मन को एक लीन अवस्था मे ले जाया जा सकता है। ऐसी अद्भुत सरचना है मन की। मन का एक अश तो शरीर को सीधा रखेगा, बाकी सारा अश लुप्त हो जायगा गहरी नीद मे। इसी प्रकार एक घोडा-समाधि होती है।

रघु राजा के दरबार में एक नट आया जो अपनी नाना प्रकार की विद्याओं का प्रदर्शन करता था। उसने आकर कहा कि मै समाधि लगाकर दिखा सकता हूँ। उस समय के राजा बडे विद्वान होते थे। उनके पास

ज्ञानी, गुणी, योगी लोग आते रहते थे। ऐसा तो उन्हें कोई नहीं मिला जो कहे कि समाधि लगाकर दिखा सकता हूँ। उन्होंने कहा—दिखाओ। उस नट ने कहा—आप मेरे को क्या देंगे? 'तो भई, तुम माँग लो, वही दे दूँगा।' 'आपका जो सफेद घोडा है वह मुझे दे देना।' वह राजा का अत्यन्त प्रिय एवं बहुत प्रसिद्ध घोडा था। धवल हिम रंग का घोडा था। वह बहुत ही द्रुत गति से चलता था। राजा ने एक क्षण रुककर कहा—'ठीक है। समाधि लगाकर दिखाओ पर समाधि अच्छी तरह से लगाना।' तो उसने सबके सामने, सभासदों के बीच बैठकर प्राण की कोई क्रिया की और समाधि लगायी तो चला गया लय मे। एक घण्टा, दो घण्टा, चार घण्टा, रात बीत गयी तो रघु राजा ने कहा—इसको उठाकर तहखाने के अन्दर सुरक्षित रख दो। समाधि ऐसी लगायी।

कई वर्ष बाद की बात है—वशिष्ठजी राम को उपदेश दे रहे थे। क्योंकि रामजी को वैराग्य हो गया था। क्या पडा है संसार में? सब-कुछ नश्वर है। दुःख ही दुःख है। राजपाट से मुझे क्या लेना-देना। वशिष्ठजी ने आकर उनको ज्ञान दिया। उस प्रसंग में सब-कुछ बताया। मन क्या? वासनाएँ क्या? वैराग्य क्या? कर्तव्य क्या? आनन्द क्या? सौन्दर्य क्या? सब-कुछ उनको बताया। प्रारब्ध क्या है? रामचन्द्रजी को उपदेश के बाद बताया—तुम्हारा प्रारब्ध बडा तीव्र है। तुम जंगल मे जाकर साधना नही कर सकते। मैं देख रहा हूँ तुम्हारे प्रारब्ध को, इसलिये जाकर राज्य करो। वह परम विश्रान्ति का काल बाद मे आयेगा। अपने-आप आयेगा। तुम बडे तीव्र प्रारब्ध को लिये बैठे हो, इसलिये राजकाज करो, इससे भागने की कोशिश मत करो। उपदेश देने की प्रक्रिया में बता रहे थे—समाधि क्या होती है? वशिष्ठजी ने कहा—राम! एक घोडा समाधि भी होती है। 'घोडा समाधि? भगवन् वह क्या होती है?' तो चलो तहखाने के अन्दर। वशिष्ठजी रामजी को ले जाते है तहखाने मे। वहाँ आसन लगाकर एकदम स्थिर एक व्यक्ति बैठा हुआ था। वशिष्ठजी ने कहा—राम यह देख यह क्या है? वशिष्ठजी स्वयं महान योगी थे। उसके अन्दर प्रविष्ट हो करके उसकी जीव-कलिका को स्पन्दित किया। धीरे-धीरे उसके अन्दर एक कम्पन प्रारम्भ हुआ, मन चेतित हुआ, मन के बाद प्राण चेतित हुआ, इन्द्रियाँ चेतित हुई और ऑख खुली तो सामने देखा—

रघुराजा खडे हैं। बोला—लाओ मेरा घोडा। राम रघु जैसे ही दिखते थे—वैसे ही सुन्दर, वैसा ही वर्ण, वैसी ही आकृति। नट ने सोचा—यही रघुराजा है। कहा—लाओ मेरा घोडा। वशिष्ठजी ने राम से कहा यही घोडा समाधि है। अर्थात् घोडा मेरे को प्राप्त करना—यह संस्कार पडा हुआ था—यद्यपि मन लय मे चला गया था। माइण्ड तो अनादिकाल से चला आ रहा है। सूक्ष्म शरीर अनादिकाल से चला आ रहा है। सूक्ष्म शरीर का कारण—कारण-शरीर अविद्या रूप है। अविद्या भी भावात्मक शक्ति है। नथिंगनेस को अविद्या नही कहते। विद्या के अभाव को अविद्या नही कहते। अँधेरा, प्रकाश का अभाव नहीं है। अँधेरा अपने-आप मे एक शक्ति है, भावात्मक शक्ति है। नथिंगनेस कुछ होता ही नही। तो इस प्रकार से वह एक लीन अवस्था मे चला गया।

प्रबोधन के लिये तीन प्रकार का त्रिशूल चाहिये। इस त्रिशूल को याद रख लेना। संस्कृतिकरण के प्रसंग मे मैंने आपको बताया था—दोषापनयन, हीनांगपूर्ति और अतिशय आदान या गुणाधान। उसी का जीवन-मुक्ति के प्रसंग में विद्यारण्यक स्वामीजी जीवन-मुक्ति-विवेक नामक पुस्तक में भी उल्लेख करते हैं। योगवाशिष्ठ में भी आया है। प्रत्येक वेदान्त के श्रेष्ठ ग्रन्थ में आयेगा। इस कला को आप सीखिये। हम मोक्ष के कॉन्सेप्ट को हर जगह लगा सकते हैं। उसी प्रकार संस्कृतिकरण के कॉन्सेप्ट को हर जगह लगा सकते है। परा विद्या की अवधारणा को हर अपरा विद्या में लगा सकते हैं। अपरा विद्या मे आपको गहराई से जाना होगा। आपको परा विद्या का प्रकाश, उसका आशीर्वाद, उसकी प्रेरणा लेनी पडेगी। तभी आप अपरा विद्या की गहराई में जा पाओगे। क्योंकि सारी विद्याएँ परस्पर जुडी हुई है। आजकल वैज्ञानिक इस बात को कि सभी ज्ञान के क्षेत्र इण्टर कनेक्टेड, इण्टर रिलेटेड, इण्टर डिपेण्डेण्ट हैं—ऐसा कह कर बताते है और कहते है कि किसी भी ऑब्जर्वेशन मे ऑब्जर्वर की चेतना को भी जोडना पडेगा। हमे इस अवधारणा का पता था कि सबके आधार में एक अद्वैत चैतन्य है। उसकी अनुभूति के लिये तत्त्व-चिन्तन, मनोनिग्रह और वासनाक्षय—ये तीनों साधनाएँ करनी होंगी। इसे हर विद्या के सीखने में, हर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में काम में ले सकते हैं। जीवन-मुक्ति के प्रसंग में तत्त्व-चिन्तन का क्या अर्थ है?

आत्मतत्त्व क्या है, ब्रह्मतत्त्व क्या है? जगत्-तत्त्व क्या है? तीनों के ऐक्य से क्या तात्पर्य है? इसको स्पष्टतः, सप्रमाण समझना। इसमें यदि किसी ने त्रुटि कर दी तो बस, भगवान् दूर ही रहेगे। न कोई मुक्ति है, न भगवान् की प्राप्ति है। तत्त्व-चिन्तन सबसे महत्त्वपूर्ण है। आपकी ईश्वर की अवधारणा क्या है? ईश्वर की इस अवधारणा को लेकर जो बैठ जाता है कि उसकी इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। भगवान् है तो भूकम्प क्यो आया? मै कहता हूँ—भगवान् ही भूकम्प लाता है। हमारे यहाँ दोनों बात कही, ईश्वर ही जगत् रूप है और ईश्वर जगत् का संचालन भी कर रहा है। साधना के स्तर पर आकर इन दोनों बातों को बताना पडेगा। ईश्वर बडा निर्मम है, बडा कठोर है। आप कहे—वह तो बडा प्रेम करने वाला, वात्सल्यपूर्ण है, बडा करुणामय है। नही! ईश्वर बडा कठोर भी है। वह निर्मम भी है। वह बडा न्यायकर्ता है। आप जैसा कर्म करेगे वैसा फल आपको देगा। इस प्रकार से यह जो अवधारणा है—वह स्पष्ट होनी चाहिये। तत्त्व-चिन्तन के लिये हमको आधार मिलता है—शास्त्र। शास्त्र के द्वारा पता लगता है कि तत्त्व क्या है। गुरुमुख से हमको पता लगता है कि तत्त्व क्या है।

शान्तिनाथ नाम के एक बडे योगी थे। वे संस्कृत और अंग्रेजी के विद्वान थे। कुछ वर्ष पूर्व माउण्ट आबू मे रहते थे। गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण का भाव था नहीं, गुरु की सन्निधि का लाभ उठाया नहीं, अलग हो गये और साधना करते-करते इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सब-कुछ शून्य है। जब अद्वैत सत्य है तब न कोई गुरु है, न कोई शिष्य है। और वो शून्य की अवस्था में चले गये। तो इसको समझना। तत्त्व-चिन्तन सबसे प्रमुख, सबसे प्रधान है। वह बिल्कुल स्पष्ट है और उसका गुरुमुख से श्रवण करना चाहिये। शंकराचार्यजी गीता भाष्य में लिखते है कि कोई चाहे जितना उच्च कोटि का शास्त्रज्ञ हो जाय, फिर भी ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये उसे गुरुमुख से श्रवण करना चाहिये। बडा-भारी विद्वान होने से काम नही चलेगा। तत्त्व-चिन्तन के अन्तर्गत शास्त्र और गुरु—इनको लेकर युक्ति के द्वारा श्रवण-मनन करना।

जब तत्त्व-चिन्तन करा दिया—तत्त्वमसि। तू ही वह ब्रह्म है। तू ही वह ब्रह्म है। अब कितनी दफे हमने सुन लिया। कितनी दफे आपने सुन

लिया पर ज्ञान तो हुआ नहीं? क्यो नहीं हुआ? क्योकि मन मे चंचलता है। मैं अभी बोल रहा हूँ, किसी को झपकी आ रही है, किसी को कुछ और काम करना है उसकी याद आ रही है। पूरी तौर पर एकाग्र होकर सुनते नहीं हैं। सुनते-सुनते भी हम अन्दर-ही-अन्दर कुछ बोलते भी जाते हैं। आप निरन्तर अपने मन को देखो। वह निरन्तर कुछ-न-कुछ बोलते जाता है, बडबडाता रहता है और जब ज्यादा बडबड़ाते है तो कहते हैं—पागल हो गया। कई दफे बच्चा बडबडाता है तो माँ कहती है—क्या कह रहा है? किससे तू बात कर रहा है? अन्दर जो चल रहा है वह अनकण्ट्रोल्ड होकर बाहर निकलना शुरू हो जाता है। जब वह बिल्कुल ही नहीं रुकता, कहने पर भी नहीं रुकता तो कहते हैं—यह पागल है। एकाग्र होकर सुन क्यो नही पाते? क्योंकि मन चचल है।

**चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।**
**तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।** गीता, 6/34

कौन व्यक्ति यह बोल रहा है? एक नर-व्याघ्र जिसके अन्दर इतना अद्भुत संयम सिद्ध था कि जब एक व्रत ले लिया तो ले लिया। मर जाऊँगा पर इस व्रत को छोड़ूँगा नहीं। चले गये जंगल में, तापस वेश में। और भगवान् शिव की अराधना करने का उस समय अवसर मिला था। उसी काल में स्वर्ग में जाने का आमन्त्रण मिला था और वह वहाँ पर चले गये। वहाँ पर इन्द्र की मदद की। असुरो का उन्होंने नाश किया। इन्द्र ने स्वागत में नृत्य संध्या का आयोजन किया और उस समय उर्वशी ने देख लिया—कितना सुन्दर है, कितना दिव्य है यह अर्जुन! और वह आसक्त हो गयी। तो इन्द्र ने भी देख लिया। रात को उर्वशी को भेज दिया अर्जुन के पास—जाकर उसकी सेवा करो। उर्वशी गयी और कहा—मैं आपकी सेवा के लिये आयी हूँ। अर्जुन बोला—'ठीक है, आपको नमस्कार है, माता।' 'माता नहीं, मैं तो आपकी सेवा करने के लिये आयी हूँ।' फिर भी उसने कहा—आप तो मेरी माँ के समान हो। वह बोली—नहीं, मैं तो काम-भिक्षा के लिये आयी हूँ। उसने कहा—मेरे पूर्वज थे पुरुरवा, उनकी आप पत्नी थी, तो आप मेरे लिये माता के समान है। उसने कहा—यह तो स्वर्ग है। यहाँ पर माता-पुत्र आदि सम्बन्ध नहीं होते। अर्जुन ने फिर कहा—मैंने अभी ब्रह्मचर्य-पालन व्रत लिया हुआ है। इस पर रुष्ट होकर

शाप दे दिया—'जा, तू नपुंसक हो जा।' 'तो कोई बात नहीं, यह भी मेरे लिये आशीर्वाद ही है।' इन्द्र को पता लगा तब उसने कहा कि 'जब तू चाहेगा तब एक वर्ष के लिये नपुंसक हो जायेगा।' तो वही अर्जुन कह रहा है— 'चञ्चल हि मनः कृष्ण'। लोग कहते हैं कि साधना मे मन नहीं लगता। क्यो नहीं लगता? पहले समझें—मन क्यों नहीं लगता? मन क्या है? इसको समझें। और मन क्यो नहीं लग रहा है—इसको खुद समझो। बताओ, क्या परिस्थिति है? तब वह मन की बात करता है—'प्रमाथि बलवद्दृढम'। यह प्रमथनशील है। मन के प्रति सही अवधारणा होनी चाहिये। शरीर और इन्द्रियों को घुमाने की इसमें एक ताकत है। मन प्रमथनशील है। खुद भी रोटेट करता है, ऑसीलेट करता है, वाइबरेट करता है। मन में सभी प्रकार के मोशन्स हैं। यह बडा बलवान है और इसकी जडें गहरी-गहरी हैं।

कितनी महीन-महीन निकली हुई हैं इसकी जडें। वह गहरी-गहरी गयी हुई, जाकर अव्यक्त के अन्दर तक पहुँची हुई हैं। मन रूपी बीज क्या है? जब अंकुरित होकर आता है तो गहरे-गहरे कारण-शरीर और अव्यक्त के अन्दर जाकर, अपनी जडों को डालकर अंकुरित होता हुआ है। वहाँ से पोषण को प्राप्त करता है—'तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्—उसको रोकना मै वायु को रोकने के समान अतिकठिन मानता हूँ।'

भगवान् ने क्या उत्तर दिया—'असंशय महाबाहो'—तूने जो कहा वह बिल्कुल ठीक है, इसमें कोई संशय नहीं है। महाबाहो! जिसकी भुजाएँ लम्बी-लम्बी हैं। वह शत्रुओं का अपनी भुजाओ के द्वारा मर्दन कर सकता है। बाहर के शत्रुओं का भी, अन्दर के शत्रुओ का भी।

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। गीता, 6/35

हे कुन्तीपुत्र! तू कुन्ती का पुत्र है। माँ को स्मरण किया। माँ को स्मरण करते ही अर्जुन के अन्दर एक अलग भाव आ गया। मनोनिग्रह को सही ढंग से पकडना। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मनोनिग्रह किया जाता है। अगर केवल अभ्यास-ही-अभ्यास करते रहे, तो काम नहीं बनेगा। कुछ प्रक्रियाओं को अपनाकर मन को स्थिर करने का अभ्यास किया पर भूल गये

कि मन को स्थिर क्यो कर रहे हैं? हम किसी विषय को एकाग्रता से ग्रहण कर नहीं पा रहे हैं मात्र इसलिये मन को थोडा स्थिर करना। आपको कहें कि इस कमरे के अन्दर 'वो' है, उसको वश में करना है। तो आप कहोगे—लाओ, चाबी दो, खोलता हूँ उसको—और कहा—मैं वश में कर लेता हूँ। या पूछोगे—'वो' कौन है? या बिना सोचे-समझे चल पडे उसको वश में करने। अब उसके अन्दर कोई आदमी है छुरा लेकर या रिवोल्वर लेकर या उसके अन्दर कोई साँप है? क्या है उसके अन्दर जिसको वश में करना है? इसलिये मन को वश मे करना है तो समझो तो सही—मन क्या है? इसलिये मन को वश में करने के पूर्व समझ लेना— मन क्या है? फिर उसके बाद मे केवल अभ्यास करने लगे, जैसे घाणी का बैल करता है। वैसे नहीं। क्योंकि उसके अन्दर कोई नयापन नही है। अभ्यास शब्द का अर्थ भी गलत लगा लिया। बार-बार दोहराने को आपने अभ्यास समझा होगा। बार-बार केवल दोहराने को अभ्यास नही कहते। सृजनात्मक ढग से दोहराने को अभ्यास कहते हैं। हमारे यहाँ मठों के अन्दर प्रतिदिन शाम को शिवमहिम्नः स्तोत्र का पाठ करते हैं। जहाँ विद्यालय चलते हैं, कई-सारे विद्यार्थी इकट्ठे हो जाते हैं, तो बडी तीव्र गति से पाठ कर जाते हैं—उसमें कोई भाव नहीं, माइण्ड एक दफे रिकोर्ड करने के बाद, पक्का होने के बाद माइण्ड उस स्विच को ऑन कर देता है ताकि स्तोत्र-पाठ चलता रहे और खुद कहीं भटकने चल पड़ता है। उसके पास भी कई सिस्टम्स हैं। उसके मन ने उस स्तोत्र की टेप को लगाया, टेप को अन्दर ही चढाया और स्विच को ऑन किया और खुद कहीं चल पड़ता है—सोचने के लिये, भ्रमण करने के लिये, गप्पें लगाने के लिये। कोई शिवमहिम्नः स्तोत्र का पाठ करे, अपने इष्ट देवता की स्तुति करे और पुलकित न हो, रोमांचित न हो, गद्गद् न हो, भाव से भरे नहीं— ऐसा समझो, वह यंत्रवत् कर रहा है। तो अभ्यास का अर्थ हो गया— सृजनात्मक ढंग से साधना को करना। एक मौलिकता, एक नव-नव रूप को लेकर उस अभ्यास को करना। भोजन मे हम परिवर्तन करते है। रोज वही बैगन की सब्जी नही। थोडा-सा उसमें परिवर्तन कर देते हैं। दुबारा भी बनायेगे तो वैसा-का-वैसा नहीं बनेगा। उसमें कुछ नही मिलायें तो भी उसमे कुछ वैशिष्ट्य आ जाता है। इसको कहते हैं पाक-कला। तो ऐसे अभ्यास को कलामय बनाना। चाहे भजन गा

तुम्हारे ऊपर ऋण पड़ा हुआ है और तुम चल पड़े—घर-बार छोड़ कर। आपको अपने को टटोलकर देखना है। आप जिस संस्था से जुड़े हुए हैं उस संस्था के प्रति आपका बहुत बड़ा दाय पूरा हो जायेगा यदि आप स्वच्छ रहेंगे, निर्मल रहेंगे, उत्साह से भरे हुए रहेंगे, उज्ज्वल रहेंगे। और यदि आप अवसाद मे डूब गये, तो संस्था का क्या काम होगा? कितने ही काम कर लो, पर संस्था को कितनी बड़ी क्षति पहुँच गयी। इस संस्था को समझो, स्वयं को समझो, स्वयं के कार्यक्षेत्र को समझो। अगर सही दृष्टिकोण रखेंगे तो आप अपने अन्दर से पाँचो ऋणों से उऋण होने की साधना को वर्तमान कार्यक्षेत्र मे कर सकते हैं। सिस्टम मे कोई कमी है तो आप इस दर्शन द्वारा दूर कर सकते हैं। संस्था अपने-आप मे एक जीवन्त व्यक्तित्व है। यह किसी व्यक्ति के द्वारा परिसीमित नहीं। जिसने इसे प्रारम्भ किया उस व्यक्ति के अन्दर कोई प्रेरणा, कोई चेतना काम कर रही थी। कितने-सारे आयाम काम कर रहे थे। यह संस्था भी एक जीवन्त तत्त्व है। इसके अन्दर हमको पाँच ऋणों से उऋण होने की साधना को डालना है, उसको करना है। सिर्फ एक बात को पकड कर रह जाओगे तो आपके विकास मे बाधा आएगी, तब आपके कार्य में एक न्यूनता रहेगी, साथ मे आपकी संस्था मे भी एक न्यूनता आयेगी। ऐसे तो बहुत-सी सस्थाएँ हैं जो आपसे बहुत ज्यादा काम करती हैं, पर जो अत्यन्त फेनेटिक है, एण्टीनेशनल हैं, एण्टीकल्चर हैं—वे खूब फल-फूल रही हैं। आप देखोगे तो चकित हो जाओगे कि उनके द्वारा कितना काम हो रहा है। कितना पैसा आ रहा है। उनमें कितना अनुशासन है। एक साथ उठते-बैठते-खाते हैं। ऐसी कितनी ही संस्थाएँ चल रही हैं पर वे देश को कहाँ ले जा रही हैं? हम तो ऐसी संस्था नहीं चाहते। हमारी संस्था भी ऐसी बनती है तो वह भारतीय संस्था नहीं है। वह देश का क्या कल्याण करेगी—इस बात को समझना। पाँचों ऋणों के विमोचन की साधना को जोडना है। यहाँ के कार्य मे हम हरेक को थोडे ही कहते हैं कि तुम जीवनव्रती बन जाओ। उसके पीछे उसका पुण्य काम कर रहा है। किसी के उकसावे मे या भावावेश में आकर काम कर रहा है तो वह बाद में पछतायेगा। कितने व्यक्ति छोडकर चले गये, कितनो को वापस भेज दिया कि तुम चले जाओ। तुम इस कार्य के लिये पात्र नहीं हो। ज्ञानेश्वरजी के

पिता को भी तो वापस भेज दिया था। कोई त्रुटि करके आये थे। इन सब बातो को समझे।

अभी प्रसग चल रहा था तत्त्वज्ञान, मनोनिग्रह और वासनाक्षय का। मनोनिग्रह की आवश्यकता हमने समझ ली। मनोनिग्रह की आवश्यकता के पीछे और भी कारण हैं। पहले वासनाक्षय के विषय मे बता दूँ। मन में शुभ–अशुभ दोनों प्रकार की वासनाएँ हैं। वासना का अर्थ होता है—डीप इम्प्रेशन इन दॅ माइण्ड।

वास का अर्थ खुशबू भी होता है। एक बर्तन के अन्दर हींग रखी और कई दिन के बाद मे निकाल ली। अब आप देखोगे तो लगातार कई दिनो तक हींग की खुशबू आती रहेगी लगातार। गन्ध आती रहेगी, वास आती रहेगी। वास का मतलब गन्ध आती रहेगी। वासनाएँ आपके अन्दर रचपच गयी हैं। मन कलर्ड हो गया है इनके द्वारा। इसको कहते है मन में Deep वासनाएँ पडी हुई हैं। वासनाओ का क्या करोगे?

आपने यदि तत्त्व–चिन्तन की साधना को तो दरकिनार कर दिया और यह निश्चय करके कि मेरे को तो साधना करनी है, भगवान् को प्राप्त करना है। मन को स्थिर करने बैठ गये मनमुखी होकर, मनमाने ढंग से। तीव्र दृढ संकल्प लेकर मन को लगाने लगे समाधि में। आजकल ध्यान के कितने ही बडे–बडे विद्यालय चल रहे हैं। पर वहाँ महान धोखा है। महान अन्धकार मे डालने की प्रक्रिया चल रही है। प्रजातन्त्र है, कोई किसी को कुछ कह नहीं सकता। बडे–बडे लोग जाते है, सामने ही करके दिखा देते हैं—'देखो तुमको ध्यान लग गया। तुम्हें मैने व्यसन से छुडा दिया।' पर अपने चंगुल में फँसा लिया। हमेशा के लिये उसको बाँध करके रख दिया। यह कोई विकास नहीं। मेरे पास एक ध्यान–योगी आ गया जो एक संस्था के ध्यान शिविर एटेण्ड करता था। मैने पूछा—ध्यान किसको कहते है? भगवान् किसको कहते है? जगत् किसको कहते हैं? आत्मा किसको कहते है? मुक्ति किसको कहते हैं? वह बोला, 'मुझे कुछ मालूम नही। बस, मैं ध्यान करता हूँ। मेरा मन ध्यान में अपने–आप लग जाता है, मेरी कुण्डलिनी अपने–आप जग जाती है और मै ध्यान में चला जाता हूँ।' तो किसका ध्यान?—आप किसका ध्यान करना चाहते है? किसको पाना चाहते है? पहले स्पष्ट होना चाहिये।

हमारे अन्दर वासनाएँ पडी हुई हैं? वासनाएँ हैं—पहले के अनुभव, जन्म-जन्मान्तर के जो सस्कार है, अनुभव हैं, वे इस योनि मे प्रकट हो रहे हैं। हमारे अन्दर तो मछली के भी संस्कार हैं, छिपकली के भी संस्कार है—वे हमारे अव्यक्त मन में है। ये सारे अनुभव व संस्कार अव्यक्त में पडे हुए है। हमारा अनकॉन्शियस माइण्ड, अचेतन मन भी क्या है? अव्यक्त है। कॉस्मिक अव्यक्त के साथ मे अचेतन मन डिसकनेक्टेड नहीं है, उसके साथ जुडा हुआ है। एक अद्भुत शक्ति, जिसको अविद्या की शक्ति कहते है, उसके द्वारा वह आवृत है—एनक्लोज्ड है, वहाँ जन्म-जन्मान्तर के सस्कार सचित होकर पडे हुए हैं। अब वासना क्या है? कितनी-सारी है? उनको समझ लिया। अब वासनाओं का क्या करेंगे? यदि मनोनिग्रह करेंगे तो वासनाएँ फिर दब जाएँगी। मलेरिया हो गया। दवाई ली तो मलेरिया के कीटाणु कहाँ जायेंगे? वे जाकर लीवर में छिप जायेंगे। अब क्या करोगे? दवाई का असर कम हुआ तो वापस निकलकर आ जाएँगे। तो ये जो वासनाएँ है, ये मन का निग्रह करने पर छिप जाती है। वासनाएँ छिप गयी तो अब क्या करोगे? मन भी एक प्रोसेस मे है। वह गर्भाधान से ही विकसित होना शुरू हो जाता है। युवावस्था के पश्चात् मन सिमटता है तो वासनाओं के छिपने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। अब आपने भी अपनी ढलती अवस्था में मनोनिग्रह किया तो वासनाएँ और भी अधिक तेजी से तथा और अधिक गहराई में जाकर छिप जायेगी। इस कारण से मन में हल्कापन नही आयेगा। अन्तःकरण मे आत्मतत्त्व प्रकट नहीं होगा। वह आत्मसाक्षात्कार कर नहीं सकता।

इसलिये बुरी वासनाओं को हटाने के लिये क्या करना चाहिये? जंगल में जाना चाहिये, एकान्त में जाना चाहिये या व्यवहार मे जाना चाहिये। वासनाएँ तो अपने-आप को ठीक करवाने के लिये अपेक्षा करती है कि आप व्यवहार करो। मनोनिग्रह की साधना यह अपेक्षा करती है कि आप एकान्त मे जाओ। दोनों का अन्तर समझ में आ गया? वासनाओ को यदि हेण्डल करना है, ठीक करना है या बढाना भी है तो आपको व्यवहार करना पडेगा। व्यवहार मे आना पडेगा। व्यवहार का मतलब मानव समाज में आकर आपको कार्य करना पड़ेगा। तब व्यवहार करते समय वासनाएँ प्रकट होंगी। वे प्रकट होंगी उस समय उनको आप दिशा

दे सकते हैं। मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा—इन भावनाओं द्वारा आप राग-द्वेष को हटा सकते है। स्त्री को देखा तो भावना थी—यह तो जगदम्बा का रूप है। पर ऐसे लगातार देखते नही रहना। इसमें कुशलता चाहिये। बचपन से ही यह संस्कार मिलता है। हमारी सस्कृति की महनीयता को तो देखो। खुद की बहिन जब युवावस्था को प्राप्त होती है तो मन में कोई विकार नही आता। यह संस्कृति हमारी धमनियो के अन्दर, जीन्स के अन्दर बह रही है। इसलिये बहन की युवावस्था को देखकर कोई विकार नहीं। अन्यों के प्रति मन मे विकार आता है, उसको सही ढंग से हेण्डल करना। व्यवहार के समय मातृदृष्टि को रखना, अपने व्रत का ध्यान रखना। उसमे ईश्वर के रूप को देखना, ईश्वर के सौन्दर्य को देखना। ईश्वर को हमने समझ क्या रखा है? कोई होगा, हाथ-पैर वाला वह भी है। पर ईश्वर तो कण-कण के रूप मे, एक सौन्दर्य के रूप में आ रहा है। सौन्दर्य तत्त्व—यह ईश्वर का तत्त्व सर्जनात्मक तत्त्व। यह ईश्वर का तत्त्व प्रेम का तत्त्व। यह ईश्वर का तत्त्व सृष्टि के कण-कण के अन्दर परिलक्षित हो रहा है।

पंचदशी, जो वेदान्त का एक ग्रन्थ है, उसमें एक श्लोक है। उसका अर्थ है—नाम, रूप, अस्ति, भाति, प्रिय—ये पाँच तत्त्व है सारी सृष्टि में। अस्ति माने 'है'। भाति माने 'प्रकाशित' है। प्रिय माने 'प्रेमास्पद' अर्थात् सत्-चित्-आनन्द। अस्ति माने सत्, भाति माने चित्त-प्रिय माने आनन्द। इस प्रकार सत्, चित्, आनन्द, नाम और रूप। तो यह नाम रूप है, यह जगत् है। अस्ति, भाति, प्रिय—सत् चित् आनन्द—यह ब्रह्म रूप है। सारी सृष्टि क्या है? ब्रह्म रूपी समुद्र मे उठ रही नाम-रूप की लहरें हैं। इस प्रकार सृष्टि के अन्दर जहाँ भी सौन्दर्य दिखाई दे रहा है, उस सौन्दर्य को वरेण्य भाव से देखो, आदर भाव से देखो। तो यह वासनाक्षय की साधना है। वासनाक्षय के लिये मुख्य बात है प्रतिपक्ष भावना का अभ्यास और साथ मे अपने इष्ट की भावना का अभ्यास। सारे बालक गोपाल रूप हैं। ईश्वर ही जगत् रूप होकर अपने सौन्दर्य को, अपनी दिव्यता को प्रकट कर रहा है।

*गीता में कहा है—*

**रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः।** गीता, 7 8

मै जल मे रस हूँ, सूर्य-चॉद मे प्रभा हूँ। सारी विभूतियो का वर्णन इसीलिये है।

**दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।**
**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।** गीता, 7 14

भगवान् की दैवी माया है और उसके मै पार जाऊँगा। लाख कोशिश कर लो, तुम पार नहीं जा सकते। उसके पार जाने की विधि उसी माया में पडी हुई है? इसलिये गीता व विवेक चूडामणि में बताया—माया की दो शक्तियॉ है। एक तो आवरण-शक्ति और एक विक्षेप-शक्ति। आवरण-शक्ति तमोगुण की है, विक्षेप की शक्ति रजोगुण की है। वहॉ पर यह नहीं लिखा कि सतोगुण की कौन-सी शक्ति है? माया-शक्ति के दो रूप आवरण और विक्षेप का तो उल्लेख कर दिया पर सत्त्वगुण की शक्ति का उल्लेख सीधे-सीधे नही किया कि यह सत्त्वगुण की शक्ति है। पर वर्णन तो आया कि सत्त्वगुण बढेगा तो मन मे वैराग्य, भक्ति, क्षमा, आर्जवता आदि दिव्य गुण प्रकट होंगे।

माया मे ही उसके पार जाने की शक्ति है। पर भगवान् कहते हैं कि—

**मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।**

जो मेरे शरणापन्न होते है, वे ही माया के पार जा सकते है। यदि कोई सोचे कि कोई बाँसुरी बजाने वाला है, उसकी प्रपत्ति करनी है मेरे को तो। इससे साधना का लिंक टूट जायगा। भगवान् कौन है जिनकी प्रपत्ति करनी है? भगवान् स्वय कहते हैं—'रसोऽहमप्सुकौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययो :' —यह जो जल है इसमें रस रूप से बैठा हुआ हूँ। तो आप रस हैं तो आप तो माया नही है न! नही, वह जल तो माया है, रस मै हूँ। तो रस मे आप गये तो भगवान् कहेगे—रस मै नही। इसके अन्दर इसका जो कारण है अग्नि तत्त्व, वह मै हूँ। और गहराई में गये तो और गहराई मे डूबते जायेगे, डूबते जायेंगे। आपको साथ लेते हुए भगवान् अपने साथ एक कर देंगे।

तो यह प्रक्रिया वासनाक्षय की। इसके लिए व्यवहार आवश्यक है। जब व्यवहार करते है तो इन्द्रियों का विषयों से सयोग होता है और विषय से संयोग होते ही वह वासना क्या हो जाती है? अगर माइण्ड ट्रेण्ड नही

है, मन को विषय का सम्पर्क करना आता नही, यदि इन्द्रियाँ कुशल नही है, मन के वश मे नही हैं, बुद्धि के वश मे नही है तो विषय-सम्पर्क आते ही वासना दृढ हो जाती है। मन की लगाम पकडी होनी चाहिये। बुद्धि ठीक होनी चाहिये। तब विषय-सम्पर्क होगा तो वासना दृढ नहीं होगी। विषय-सम्पर्क अपरिहार्य है। यह प्रारब्ध के कारण होगा और वैसे भी आपमे कर्तापन, भोक्तापन पडा हुआ है इसलिये भी होगा। दोनो को नोट कर लेना। आपके अन्दर कर्तृत्व-भोक्तृत्व पडा हुआ है इसलिये भी आपका विषय के साथ सम्पर्क होगा। अब प्रारब्ध भी काम कर रहा है इसलिये भी आपका विषय के साथ सम्पर्क होगा। इसलिये वासनाओ के बढने का खतरा है। इसलिये हमारे गुरुदेव हमे कहते थे—नथिंग पोल्यूट्स द माइण्ड मोर देन ह्यूमन कॉण्टेक्ट। अब यह सन्यासी शिष्यो को अमुक अवस्था मे कह दिया—जन-सम्पर्क से ज्यादा मन को कलुषित करने वाला और कोई नही है। दूसरो से उतना कलुषित नहीं होता जितना मनुष्य से होता है। व्यवहार मे जा रहे हैं तो वैराग्य खड्ग को साथ मे लेकर चलना। असंग शस्त्र है, उसको साथ मे लेकर चलना है। शक्ति को साथ मे लेकर चलना। नहीं तो धीरे-धीरे यह जोश मन्द पडता जायगा। यह असंगता मलिन होती चली जायगी। यह सावधानी रखना वासनाक्षय के बारे मे। वासनाक्षय की साधना के लिये मन पक्का चाहिये, मन मे ताकत चाहिये। मन में ताकत आती है मनोनिग्रह के द्वारा। वासनाक्षय की सफलता के लिये आपका तत्त्व-चिन्तन सही होना चाहिये। विषयों के प्रति देखने की दृष्टि सही होनी चाहिये। इस प्रकार वासनाक्षय की सफलता के लिये मनोनिग्रह और तत्त्व-चिन्तन की भी साधना चाहिये। तत्त्व-चिन्तन के लिये मनोनिग्रह और वासनाक्षय आवश्यक है। मनोनिग्रह के लिये तत्त्व-चिन्तन और वासनाक्षय आवश्यक है। इसलिये तीनों की साधना चाहिये। एक की साधना करते है तो बाकी दोनो की साधना भी आवश्यक है। तीनों को एक साथ करते हैं। हॉ, कौन-सा कब प्रमुख है—इसको मैंने आपको बता दिया। हमारा तत्त्व-चिन्तन स्पष्ट है, ध्येय स्पष्ट है इसलिये उससे घबराने की कोई बात ही नहीं है। अपने मन मे पवित्रता को लेकर, सम्बल को लेकर, सही दृष्टि को लेकर अपने इस प्राप्त कर्तव्य को पूर्णता रूपी लक्ष्य की साधना समझ करके करते जाना।

एक योगी 1400 वर्ष के थे। बडे-भारी सिद्ध थे और उस समय उनके हजारों शिष्य थे। बहुत-सारी सिद्धियाँ उनके पास में थीं। मन को जब-कभी हम कण्ट्रोल करते है तो शक्ति प्रकट होती है। तप के द्वारा शक्ति प्रकट होती है। ज्ञान से शक्तियॉ प्रकट नहीं होती। पंचदशीकार ने साफ कहा—ज्ञान के द्वारा शाप देने की शक्ति, वर देने की शक्ति नहीं आती। पर ज्ञानप्राप्ति की साधना के दौरान ही जब इन्द्रियों और मन का निग्रह होता है, उससे ताकत पैदा हो जाती है। तो वह बडे-भारी सिद्ध पुरुष थे। किन्तु उन्हे भान था कि मै अभी पूर्ण नहीं हुआ, मुझे अभी तक ब्रह्मरूपता का अनुभव नहीं हुआ। उस समय ज्ञानेश्वरजी का अवतार हो चुका था। उनके भाई थे निवृत्तिनाथजी और सोपानदेव तथा बहिन थी मुक्ताबाई। तो चॉगदेवजी के मन में आया—इनके दर्शन करना चाहिये। इनसे मिलना चाहिये। तो उन्होने सोचा—मैं उनको समाचार दे दूँ कि मैं आप से मिलना चाहता हूँ। पर पत्र लिखने बैठे तो सोचा—क्या लिखूँ। वे तो छोटे-से बच्चे और मै 1400 वर्ष का इतना भारी सिद्ध। एकदम से कुछ समझ में नही आया। पर आखिर कुछ भेजना तो है ही। तो वह कोरा कागज ही बन्द करके भेज दिया। तो उनका एक सेवक वह कागज लेकर गया ज्ञानेश्वरजी के पास। ज्ञानेश्वरजी ने मुक्ताबाई को पत्र देते हुए कहा—'देखो, क्या लिखा है'। मुक्ताबाई ने कहा—अरे यह तो कोरा कागज है—इस पर तो कुछ नही लिखा। तब ज्ञानेश्वरजी ने कहा—यह कोरा है तब ही तो इसमें कुछ लिखा जा सकता है। तो देखो, कहॉ से पकड लिया। उन्होने सेवक से कहा—उनको भेज दो। तो फिर चॉगदेवजी आये सिंह की सवारी करके, सॉप की लगाम लेकर, शिष्यों से घिरे हुए। ये बालक दीवाल पर बैठे हुए थे, प्रातःकाल की धूप सेक रहे थे। देखा, यह आ रहा है तो चले आगवानी करने। दीवाल को कहा तो दीवाल चल पडी। इसे कहानी मत समझ लेना। ये अद्‌भुत सिद्धियॉ होती थीं। आपस में सम्पर्क हुआ। चॉगदेवजी ने कहा—मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ। ज्ञानेश्वरजी ने मना कर दिया—मै तो तुमको शिष्य नही बनाऊँगा। यह मुक्ताबाई है, इसके शिष्य बन जाओ। देखो—क्यों कहा, कैसे कहा? 'मुक्ताबाई के शिष्य बन जाओ'। तो उन्होंने शिष्यत्व को स्वीकार कर लिया। उस समय मुक्ताबाई 13-14 वर्ष की बालिका रही होगी। दीक्षा की प्रक्रिया सम्पन्न हो गयी। मुक्ताबाई ने चॉगदेव को कुछ समय तक वहीं गॉव मे रहने को कहा।

उस समय की एक घटना है। गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बड़ा अन्तरंग होता है। मुक्ताबाई ने उनको शिष्य के रूप मे स्वीकार कर लिया। शिष्य अपने-आप को समर्पित करता है और गुरु उसको स्वीकार करके उसके आगे का पथ प्रशस्त करता है। एक छोटी-सी घटना बताने में मेरा तात्पर्य है। एक बार मुक्ताबाई स्नान कर रही थी। गुरु वह है जो शिष्य के सामने ऐसा व्यवहार करे कि शिष्य अपने-आप को उद्‌घाटित कर दे। छिपाकर रखेगा तो उसका उपचार होगा नहीं, वह आगे बढ़ेगा नहीं। मुक्ताबाई एक बार स्नान कर रही थी, गाँव के बाहर किसी तालाब मे और उस समय चाँगदेवजी उधर से निकल रहे थे। मुक्ताबाई उस समय निर्वसन होकर स्नान कर रही थी। निर्वसन-स्नान अपने शास्त्र मे निषिद्ध बताया है। उधर चाँगदेवजी आ रहे थे। मुक्ताबाई के सामने से निकल रहे थे, ज्योही उन्होंने मुक्ताबाई को देखा तो एकदम से सकपका कर मुँह फेर लिया। मुक्ताबाई सामने आकर खडी हो गई और डाँटकर बोली—ओ बूढे खूसट! यही कहा—अरे बूढे खूसट! तू गायों को नगी देखता है तो तेरे मन में विकार नहीं आता, इस शरीर को देखकर विकार कैसे आ गया? अब पूरी बात समझ में आ रही है? गायों को देखता है, उस समय तो कोई विकार नहीं आता। इस शरीर को देखकर विकार क्यो आ गया? यहाँ पर गुरु का एक अद्‌भुत कार्य है। गुरु को एक ऐसा शिष्य मिला जो सिद्ध गुरु के रूप मे प्रतिष्ठित था और 1400 वर्ष की आयु का था। पता नहीं कितनी साधना, कितना प्राणायाम करके मन को कठोर आवरणो से ढक रखा था उसने। उन आवरणों के नीचे बहुत गहरे मे कामिनी विषयक वासना पडी हुई थी, अब वह सरलता से निकल ही नहीं सकती थी। उसको निकालने के लिये गुरु रूप जगदम्बा ने यह योजना बनाई। खुद सामने निर्वसन होकर खड़ी हो गयी, तो अन्दर का संस्कार खट से उछलकर बाहर आ गया। बाहर निकाल कर उसको काट डाला। गुरु की संकल्प-शक्ति, नेत्र व वाणी—सबके द्वारा उस संस्कार को काट डाला। आयी बात समझ में! वह साधारण लडकी थोडे ही बोल रही थी। वह तो जगदम्बा बोल रही थी। तो गुरु के उस शरीर में वह जगदम्बा बोल रही थी। उस बोलने मे ऐसी ताकत थी कि वह जो संस्कार था वह खट से बाहर निकल गया। वह वृद्ध शिष्य खुद कहने में संकोच करते कि मेरे अन्दर काम-वासना है। गुरु तो स्वीकार कर लिया परन्तु आखिर दिखाई

तो दे रही है लडकी ही। वह छोटी-सी लडकी दिखाई दे रही थी और वह कितना प्रतिष्ठित गुरु—वैसे उसके सामने कहे कि मेरे अन्दर काम-वासना पडी हुई है! तो गुरुरूपिणी मुक्ताबाई ने उसे बाहर निकाल लिया। निकालकर काट दिया। तो यहाँ मैं जिस बात को कहना चाहता था वह यह थी कि इस प्रकार से बहुत गहराई मे जाकर वासनाएँ छिप जाती हैं।

इसलिये कहा 'युवैव धर्मशील स्यात्'। बुड्ढा होने पर वह छिपने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जायगी। इसलिये ज्यादातर रिटायर्ड लोगो के लिये साधना करना बहुत कठिन है। और खासतौर से जिनके बच्चे वगैरह सब सेटल्ड हैं, उनका सब-कुछ ठीक-ठाक है। वे शान्त जैसे रहते हैं प्रारब्ध के कारण। अब जिनके बच्चो की शादी नहीं हो रही है या कोई लडकी विधवा हो गयी है या कोई दुःख हो तो उसके कारण अशान्त हो सकते हैं। परन्तु सब-कुछ सेटल्ड है तो बडें शान्त दिखाई देते हैं इसलिये उनकी साधना चलती नही। इसलिये वे क्या होते हैं? नकली ब्रह्मज्ञानी बन जाते है। वेदान्त पढना शुरू कर दिया। कुछ चिन्ता नही है, खाने-पीने की सब सुविधा है। तो वेदान्त पढा। वेदान्त बहुत सरल है। वेदान्त में कोई कठिनाई नहीं है। थोडी भी बुद्धि ठीक हो तो ज्ञान को पकड लिया। इससे क्या होता है? अन्दर तो वासनाएँ छिपी हुई पडी रहती है। इसलिये ढलती हुई अवस्था मे वासना छिप गयी और प्रारब्ध के कारण उनको विक्षिप्त करने वाली कोई ऐसी चीज नही है और फिर वेदान्त को पढ लिया। तो उनको गलतफहमी हो जाती है कि मै ब्रह्मज्ञानी हूँ और फिर उसका व्याख्यान भी देना शुरू कर दे तो और ज्यादा कठिनाई हो जाती है। श्रोता कहते है—आप क्या गजब का बोले महाराज! आप तो बढिया बोले। ऐसे मे क्या होता है—और फँसते जाते है। उस समय रामकृष्ण परमहंस को याद करो। अन्दर से पहचानो। सूक्ष्म रूप से पता लग जाता है। जब तक यह भावना है कि मै पुरुष हूँ, मै स्त्री हूँ—इसका मतलब वासना पडी हुई है। यह भावना पडी है—मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ। इसलिये नरेन्द्र के सामने जब नर्तकी आ रही थी तो उसने बताया था—तू संन्यासी बन गया और अपने-आप को पुरुष समझता है, मेरे को स्त्री समझता है! अप्रत्यक्ष रूप से वह विश्लेषण चल रहा था—अपने-आप को पुरुष समझ रहा हूँ, फिर अपने-आप को संन्यासी भी समझ रहा

हूँ। साधक यदि देहात्म भाव को त्याग दे या त्यागने का अभ्यास करे तो वह अभ्यास करेगा कि न मै पुरुष हूँ, न मै स्त्री हूँ।

इस प्रकार साधक तत्त्व-चिन्तन, मनोनिग्रह और वासनाक्षय की साधना के द्वारा प्रबोधित होता है, वह खिल उठता है—जीवन्मुक्त हो जाता है। धर्म-साधना का यह शीर्षस्थ स्तर है। यहाँ धर्माचरण बिना आयास के सम्पन्न होता है। जीवन्मुक्त का देह-इन्द्रिय-अन्तःकरण-संघात विश्व-लय के साथ पूर्णतः लयान्वित हो जाता है। उसके सभी कर्म ब्रह्मकर्म हो जाते हैं। यह ब्रह्मकर्म समाधि अवस्था है।

इस प्रकार आप लोग इस पथ पर चल रहे है तो पूरी सावधानी के साथ चले, जगदम्बा आपके साथ मे है और आप आगे बढते जाएँ। चुनौतियाँ तो बहुत हैं पर एक साथ तीन शक्तियाँ होनी चाहिये जिनका कल उल्लेख किया था।

सती-दाह के पश्चात् शिव सती के वियोग में इधर-उधर घूमते रहे थे। फिर सोचा—समाधि लगाकर रहूँ। तो हिमालय के पास मे जाकर कहा—मुझे समाधि लगानी है, मेरे को कोई जगह बताओ। हिमालय ने कहा—सौभाग्य है। जाकर जगह बता दी। यहाँ फल-फूल है, यहाँ पर गुफा है, यहाँ पर रहकर आप समाधि का अभ्यास कीजिये। उस समय पार्वती का जन्म हो चुका था। पार्वती का अवतार किसलिये हुआ था? क्योकि तारकासुर नाम का एक राक्षस था। उसने यह वरदान प्राप्त कर लिया कि शिवजी का पुत्र ही मेरा वध कर सकेगा। उसको तो पता था कि शिवजी की पत्नी है नही। सती ने अपने को योगाग्नि में होम कर दिया है, इसलिये इस वरदान को ले लिया। तव देवताओ ने प्रार्थना की। देवी गीता के अन्दर आया है—देवताओ ने प्रार्थना की, बडा भारी अनुष्ठान किया, यज्ञ किया हिमालय में जाकर। हिमालय भी उसमे शामिल हो गया। भगवती ने भुवनेश्वरी के रूप में प्रकट होकर कहा—मै हिमालय की पुत्री- रूप से जन्म लूँगी। हिमालय ने कहा—यह तो खतरे की बात है। आप कौन हैं, इस तत्त्व को बता दो। क्योंकि आप पुत्री बनकर आएँगी। मैं कभी डाँटूँगा, कभी बदमाशी करने पर एक थप्पड लगा दूँगा, मेरा भी कहीं दक्ष की तरह नाश न हो जाए! इसलिए आप अपने तत्त्व का ज्ञान दें। आप बताएँ—आप कौन है? तो उन्होने उपदेश दिया अपने तत्त्व का। तव भगवती का अवतरण हुआ। वे युवावस्था

यह कालिदासजी का बडा प्रसिद्ध श्लोक है। दाहिना नेत्र तो समाधि की अनुभूति मे बन्द था। समाधि का मतलब निर्विकल्प समाधि मे एकदम से लीन था। अद्वैत तत्त्व मे लीन था। वाम नेत्र खुला तो देखा—सामने पार्वती है। यह जगदम्बा है। जगत्-जननी है। मेरी आत्मशक्ति है। यह पत्नी को देखने की दृष्टि है। सही दृष्टि नही होती तो लोग पत्नी को शरीर समझते हैं। भगवान् शिव स्वय देख रहे थे—कितनी सुन्दर है, कितनी अद्भुत है आत्मशक्ति! आत्मीयता से देख रहे थे। पर साथ ही यह सोचा कि किसने यह विक्षेप कर दिया। तो भाल-नेत्र से एक लपट निकली और ज्यों ही लपट निकली कि सारे देवता हाहाकार करने लगे। कामदेव भी धनुष को छोडकर भागने की कोशिश करने लगा। रति भी हाहाकार करने लगी। पर वह लपट निकली और तत्क्षण ही मदन को दग्ध कर दिया। एक नेत्र आत्मा की अखण्डता मे—अद्वैत-दर्शन में लगा हुआ। दूसरा वाम नेत्र सौन्दर्य-पान मे रत, अद्वैत-प्रेम से भरा हुआ, तीसरा भाल-नेत्र बिना विलम्ब के दर्पित कन्दर्प को दण्ड देने में तत्पर। ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति—ये ही तो तीन नेत्र है। इस प्रकार से तीनों शक्तियों का प्रयोग करना चाहिये। इसके पीछे भारतीय सस्कृति का एक रहस्य छिपा हुआ है। पूरी संस्कृति का और साधना का इसमे रहस्य छिपा हुआ है। अन्दर वह विश्रान्ति रहनी चाहिये। शान्ति व आनन्द का अनुभव होना चाहिये, भाव को शुद्ध करते हुए प्रवृद्ध करना चाहिये तथा धर्म पर प्रहार करने वालों को दण्ड देने की सामर्थ्य भी होनी चाहिये—इस प्रकार तीनों शक्तियो को प्रवृद्ध करते हुए, तीनो का प्रयोग करते हुए, आगे बढते चले जाना।

जगदम्बा कन्याकुमारी की अनुकम्पा से आज हमारा सत्संग पूर्ण हुआ। आप लोग सत्संग में प्राप्त विषय पर विमर्श करें। आप लोगों पर स्वामी विवेकानन्द का आशीर्वाद है। उनकी विवेक ज्योति आपमे दीप्त है। उनकी प्रेरणा व प्रकाश लेकर आप देश-सेवा करते हुए पूर्णता के पथ पर आगे बढते चले—यही शुभकामना है।

को प्राप्त हुई। हिमालय उनको लेकर शिव के पास पहुँच गये और कहा—यह आपकी सेवा मे रहेगी। शिव ने कहा—तपस्वियो के पास स्त्रियों का क्या काम ? इसे दूर रखो, दूर रखो। युवतियों का यहाँ क्या काम है ? तब पार्वती साथ मे थी। तब वह थोडा आगे आ गयी। उनका सुन्दर वार्तालाप होता है। शिव-शक्ति का वार्तालाप होता है। पार्वती ने कहा—आप उठेगे, बैठेगे, चलेगे, इन्द्रियो को रोकेंगे इसके लिये शक्ति चाहिये या नही ? खायेगे, पीयेगे, सोचेगे, चलेंगे सबके लिये शक्ति चाहिये। शक्ति के बिना तो आप रह ही नही सकते। इसलिये आप शक्ति से परहेज क्यो करते है ? तब शिवजी हँसने लगे और कहा—तेरी ऐसी अवधारणा है तो ठीक है, रहो। पार्वती सेवा मे निरत रहती थी। फल-फूल ला दिया, सफाई कर दी। इधर सब देव सोच रहे थे—कब शिवजी के मन मे पार्वती से विवाह करने की इच्छा हो! देवता लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर उनसे रहा नही गया। अब तो कुछ करना चाहिये। तो इन्द्रदेव जाकर कामदेव से मिले और बोले आप को मेरा एक काम करना है। शिवजी के मन में विवाह की इच्छा उत्पन्न कर दो वह बोला—अरे शिवजी! उनसे तो दूर रहना ही ठीक है। तब इन्द्र ने थोडा प्रोत्साहन दिया—अरे, तेरे आगे कोई ऋषि टिकते नहीं, कोई देवता टिकते नही। तुम्हारा मुकाबला कौन कर सकता है! चलो न तुम। हम तुम्हारे साथ मे है। तब कामदेव को भी जोश आ गया। उसने रति को साथ लिया। अपने मित्र वसन्त को साथ मे लिया और वहाँ पहुँच गए। वहाँ पर देखा—भगवती जगत्-जननी शिव के सामने खडी हुई है। पेड की आड में होकर पंचपुष्प का बाण लेकर अनुसन्धान कर रहा था और ज्यो ही मौका देखा, उसने तीर को चलाया। तीर चलते ही भगवान् शिव की समाधि में विक्षेप हुआ।

शिव का वाम नेत्र खुला। पार्वती को देखा। दाहिना नेत्र समाधि मे लीन था। तब तीसरे नेत्र से ज्वाला निकली और उसने कामदेव को भस्म कर दिया। इसी दृश्य का महाकवि कालिदास वर्णन करते है—

> एकं योग-समाधिना मुकुलितं चक्षुः द्वितीयं पुनः
> पार्वत्या जघनस्थल-स्तन-तटे शृंगारभारालसम्।
> अन्यत् दूर-निरस्त-चाप-मदन-क्रोधानलाद् दीपितं
> शम्भोः भिन्न-रसं समाधि-समये नेत्र-त्रयं पातु नः।।

यह कालिदासजी का बडा प्रसिद्ध श्लोक है। दाहिना नेत्र तो समाधि की अनुभूति मे बन्द था। समाधि का मतलब निर्विकल्प समाधि मे एकदम से लीन था। अद्वैत तत्त्व मे लीन था। वाम नेत्र खुला तो देखा—सामने पार्वती है। यह जगदम्बा है। जगत्-जननी है। मेरी आत्मशक्ति है। यह पत्नी को देखने की दृष्टि है। सही दृष्टि नही होती तो लोग पत्नी को शरीर समझते हैं। भगवान् शिव स्वयं देख रहे थे—कितनी सुन्दर है, कितनी अद्भुत है आत्मशक्ति! आत्मीयता से देख रहे थे। पर साथ ही यह सोचा कि किसने यह विक्षेप कर दिया। तो भाल-नेत्र से एक लपट निकली और ज्यों ही लपट निकली कि सारे देवता हाहाकार करने लगे। कामदेव भी धनुष को छोडकर भागने की कोशिश करने लगा। रति भी हाहाकार करने लगी। पर वह लपट निकली और तत्क्षण ही मदन को दग्ध कर दिया। एक नेत्र आत्मा की अखण्डता मे—अद्वैत-दर्शन में लगा हुआ। दूसरा वाम नेत्र सौन्दर्य-पान मे रत, अद्वैत-प्रेम से भरा हुआ, तीसरा भाल-नेत्र बिना विलम्ब के दर्पित कन्दर्प को दण्ड देने में तत्पर। ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति—ये ही तो तीन नेत्र हैं। इस प्रकार से तीनों शक्तियों का प्रयोग करना चाहिये। इसके पीछे भारतीय संस्कृति का एक रहस्य छिपा हुआ है। पूरी सस्कृति का और साधना का इसमें रहस्य छिपा हुआ है। अन्दर वह विश्रान्ति रहनी चाहिये। शान्ति व आनन्द का अनुभव होना चाहिये, *भाव को शुद्ध करते हुए प्रवृद्ध करना चाहिये तथा* धर्म पर प्रहार करने वालो को दण्ड देने की सामर्थ्य भी होनी चाहिये—इस प्रकार तीनों शक्तियों को प्रवृद्ध करते हुए, तीनों का प्रयोग करते हुए, आगे बढते चले जाना।

जगदम्बा कन्याकुमारी की अनुकम्पा से आज हमारा सत्संग पूर्ण हुआ। आप लोग सत्संग मे प्राप्त विषय पर विमर्श करे। आप लोगो पर स्वामी विवेकानन्द का आशीर्वाद है। उनकी विवेक ज्योति आपमे दीप्त है। उनकी प्रेरणा व प्रकाश लेकर आप देश-सेवा करते हुए पूर्णता के पथ पर आगे बढते चले—यही शुभकामना है।

# उपसंहार

आज का युग विज्ञान और टेक्नोलॉजी का युग है। विगत सौ वर्षो मे जगत् और जीवन का अन्वेषण करते हुए विज्ञान ने अपने ज्ञान-क्षितिजो को बहुत विस्तृत कर लिया है। वस्तु-वस्तु के गुण-धर्म को खोजते हुए विज्ञान ने भिन्न वस्तुओ को जोडने वाले सूत्रो का भी पता लगा लिया है। विज्ञान के अनुसार गुरुत्वाकर्षण की शक्ति, विद्युत-चुम्बकीय शक्ति व परमाणु शक्ति ही आधारभूत शक्तियाँ हैं। वनस्पतियों और प्राणियों मे एक ही जीवन-तत्त्व विद्यमान होना चाहिये—इस सम्भावना को लेकर विज्ञान अब—बायोस्फीयर एक लिविंग आर्गेनिज्म है—इसकी तथा कॉस्मिक लाइफ, कॉस्मिक माइण्ड व कॉस्मिक इण्टेलिजेन्स की बात करने लगा है। इन एनर्जीज को भी जोडकर रखने वाली कोई शक्ति, कोई फोर्सफील्ड होना चाहिये—ऐसी धारणा लेकर विज्ञान भारतीय परम्परा मे मान्य कर्म-शक्ति की ओर इंगित करने लगा है। न्यूरो सर्जन रिचर्ड बर्गलैण्ड ने तो न्यूरोन्स को संचालित करने वाले, जन्मान्तर मे भी प्रभावी एक फोर्स का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह भारतीय-दर्शन मे मान्य कर्म-शक्ति ही होनी चाहिये। फ्रिजोफ केप्रा आदि न्यूक्लियर फिजिसिस्ट भी यूनिफाइड फोर्स के रूप मे कर्म-शक्ति को मान्यता देने की ओर अग्रसर हो रहे है। विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ भी परस्पर जुडती हुई, पूरे पर्यावरण मे व्याप्त होकर उसका संचालन करने वाली एक चेतना-शक्ति का उल्लेख करने लगी हैं। भारतीय शास्त्रो के अनुसार यह सत्कर्म या धर्म की शक्ति ही है।

विचार-स्वातन्त्र्य के इस युग में मानव-कल्याण के लिये अनेक विचारधाराओं को पनपने का अवसर मिला। इनमे साम्यवाद, पूँजीवाद, अन्त्योदय, सर्वोदय आदि मुख्य है। किन्तु चराचर जगत् को संतुलित, स्वस्थ व सुन्दर बनाकर मनुष्य मात्र

को पूर्णता की ओर ले जा सकने वाला एकमात्र प्रक्रम सनातन धर्म द्वारा प्रतिपादित जीवन-विज्ञान, जीवन-कला व जीवन-दर्शन है।

वेदान्त के अनुसार अद्वितीय आनन्द ही सृष्टि का उपादान कारण है और वही निमित्त कारण है। वह आनन्द ही चैतन्य है, और चैन्तय ही सत् है। इस अद्वितीय सत्-चित्-आनन्द मे जगत् कल्पित है और नाम-रूप ही जगत् है। विज्ञान भी अणु-परमाणु, इलेक्ट्रोन-प्रोटोन, न्यूट्रोन व सब-पार्टिकल्स के अस्तित्व से भी सूक्ष्म तत्त्व का अध्ययन करता हुआ आश्चर्यचकित है कि यह तो कोई नृत्य-गान करता हुआ जीवन्त तत्त्व प्रतीत होता है। जहाँ नियम-तन्त्र होता है वहाँ एक नियामक होगा ही, और वह नियामक चैतन्य-तत्त्व ही हो सकता है। किन्तु जहाँ एक स्वच्छन्दता है, नृत्य और गान है, जो किसी नियम-तन्त्र मे बद्ध नहीं है वहाँ आनन्द-तत्त्व ही होना चाहिये। और यह आनन्द-तत्त्व एक अपरिवर्तनशील अच्युत-तत्त्व ही हो सकता है। वेदान्त के अनुसार चराचर जगत् जिस नियम-तन्त्र द्वारा संधारित है, उसे ऋत या धर्म कहते हैं और धर्म का प्रभु या आधार तो अच्युत ही है—धर्मस्य प्रभुः अच्युतः (विष्णुसहस्रनाम)। सस्कृत का ऋतम् शब्द ही आग्ल भाषा में रिद्म (Rhythm) शब्द-रूप से गृहीत है। अखिल ब्रह्माण्ड एक रिद्म में स्पन्दित हो रहा है। यह रिद्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चिन्तन, भाव, स्मृति, अहं-स्फुरण रूप से चराचर जगत् में, जड-जीव सबको लेकर है। यह अखिल ब्रह्माण्ड नटराज शिव का नर्तन है—गान है। और शिव का वाहन आनन्द-स्वरूप नन्दीश्वर है, धर्म है—धर्मो वृषः।

# उपसंहार

आज का युग विज्ञान और टेक्नोलॉजी का युग है। विगत सौ वर्षो मे जगत् और जीवन का अन्वेषण करते हुए विज्ञान ने अपने ज्ञान-क्षितिजो को बहुत विस्तृत कर लिया है। वस्तु-वस्तु के गुण-धर्म को खोजते हुए विज्ञान ने भिन्न वस्तुओं को जोडने वाले सूत्रो का भी पता लगा लिया है। विज्ञान के अनुसार गुरुत्वाकर्षण की शक्ति, विद्युत-चुम्बकीय शक्ति व परमाणु शक्ति ही आधारभूत शक्तियॉ है। वनस्पतियो और प्राणियो में एक ही जीवन-तत्त्व विद्यमान होना चाहिये—इस सम्भावना को लेकर विज्ञान अब—बायोस्फीयर एक लिविंग आर्गेनिज्म है—इसकी तथा कॉस्मिक लाइफ, कॉस्मिक माइण्ड व कॉस्मिक इण्टेलिजेन्स की बात करने लगा है। इन एनर्जीज को भी जोडकर रखने वाली कोई शक्ति, कोई फोर्सफील्ड होना चाहिये—ऐसी धारणा लेकर विज्ञान भारतीय परम्परा में मान्य कर्म-शक्ति की ओर इंगित करने लगा है। न्यूरो सर्जन रिचर्ड बर्गलैण्ड ने तो न्यूरोन्स को संचालित करने वाले, जन्मान्तर मे भी प्रभावी एक फोर्स का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह भारतीय-दर्शन मे मान्य कर्म-शक्ति ही होनी चाहिये। फ्रिजोफ केप्रा आदि न्यूक्लियर फिजिसिस्ट भी यूनिफाइड फोर्स के रूप में कर्म-शक्ति को मान्यता देने की ओर अग्रसर हो रहे है। विज्ञान की विभिन्न शाखाऍ भी परस्पर जुडती हुई, पूरे पर्यावरण में व्याप्त होकर उसका सचालन करने वाली एक चेतना-शक्ति का उल्लेख करने लगी है। भारतीय शास्त्रो के अनुसार यह सत्कर्म या धर्म की शक्ति ही है।

विचार-स्वातन्त्र्य के इस युग मे मानव-कल्याण के लिये अनेक विचारधाराओं को पनपने का अवसर मिला। इनमें साम्यवाद, पूॅजीवाद, अन्त्योदय, सर्वोदय आदि मुख्य है। किन्तु चराचर जगत् को संतुलित, स्वस्थ व सुन्दर बनाकर मनुष्य मात्र

को पूर्णता की ओर ले जा सकने वाला एकमात्र प्रक्रम सनातन धर्म द्वारा प्रतिपादित जीवन-विज्ञान, जीवन-कला व जीवन-दर्शन है।

वेदान्त के अनुसार अद्वितीय आनन्द ही सृष्टि का उपादान कारण है और वही निमित्त कारण है। वह आनन्द ही चैतन्य है, और चैन्तय ही सत् है। इस अद्वितीय सत्-चित्-आनन्द में जगत् कल्पित है और नाम-रूप ही जगत् है। विज्ञान भी अणु-परमाणु, इलेक्ट्रोन-प्रोटोन, न्यूट्रोन व सब-पार्टिकल्स के अस्तित्व से भी सूक्ष्म तत्त्व का अध्ययन करता हुआ आश्चर्यचकित है कि यह तो कोई नृत्य-गान करता हुआ जीवन्त तत्त्व प्रतीत होता है। जहाँ नियम-तन्त्र होता है वहाॅ एक नियामक होगा ही, और वह नियामक चैतन्य-तत्त्व ही हो सकता है। किन्तु जहाॅ एक स्वच्छन्दता है, नृत्य और गान है, जो किसी नियम-तन्त्र में बद्ध नहीं है वहाॅ आनन्द-तत्त्व ही होना चाहिये। और यह आनन्द-तत्त्व एक अपरिवर्तनशील अच्युत-तत्त्व ही हो सकता है। वेदान्त के अनुसार चराचर जगत् जिस नियम-तन्त्र द्वारा सधारित है, उसे ऋत या धर्म कहते हैं और धर्म का प्रभु या आधार तो अच्युत ही है—धर्मस्य प्रभुः अच्युतः (विष्णुसहस्रनाम)। सस्कृत का ऋतम् शब्द ही आग्ल भाषा मे रिद्म (Rhythm) शब्द-रूप से गृहीत है। अखिल ब्रह्माण्ड एक रिद्म में स्पन्दित हो रहा है। यह रिद्म शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चिन्तन, भाव, स्मृति, अहं-स्फुरण रूप से चराचर जगत् में, जड-जीव सबको लेकर है। यह अखिल ब्रह्माण्ड नटराज शिव का नर्तन है—गान है। और शिव का वाहन आनन्द-स्वरूप नन्दीश्वर है, धर्म है—धर्मो वृषः।

# आत्म साक्षात्कार

दीनेशजी—श्रोताओ! यह परम सौभाग्य की बात है कि हमारे परिक्षेत्र मे श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर शिवबाडी के स्वामीश्री संवित् सोमगिरिजी महाराज, जिनके शक्तिसम्पन्न लोकप्रिय व्यक्तित्व के बहुआयामी पहलुओ से हमारा क्षेत्र परिचित है, आज हमारे मध्य है। इन निष्णात प्रखर स्वामीजी के सान्निध्य का लाभ हम अपने श्रोताओ तक पहुँचाना चाहेगे और आपके आध्यात्मिक, वैज्ञानिक जीवनदृष्टि, साधना और उपलब्धियो के खजाने मे से कुछ भाव-सयोजन और विचार के बिन्दु उपलब्ध करना चाहेगे। सबसे पहले आपके श्रीचरणों मे प्रणाम। आपका स्वागत और प्रारम्भ हम करना चाहेगे स्वामीजी, परम पूज्य गुरु स्मरण से। इंजिनियरिग महाविद्यालय मे विद्यार्थी और अध्यापक के रूप मे आप अध्ययन और अध्यापन कर रहे थे, इसके पश्चात्, मै कहना चाहूँगा कि जीवन के उस मोड़ पर, जिसे हम सक्रान्तिकाल भी कहना चाहेगे, आप माउण्ट आबू प्रस्थान कर गए और फिर आपके जीवन की, जो आरोहण की यात्रा शुरू होती है, इस दृष्टि से हमारे श्रोताओ को कुछ बातें आप बताएँ।

स्वामीजी—यह सब-कुछ अचानक नही होता है। यह जीव अनन्त पथ का पथिक है। अमुक कुल में जन्म मिला, सात्विक माता-पिता मिले, सात्विक परिवार मिला, तो उस दिव्य संपत्ति को लेकर मानो मैं जीवन-मूल्यो को, जीवन के सत्य को तलाशता रहा। आपको आश्चर्य नही होना चाहिये, मेरा बाल्यकाल इसी बीकानेर क्षेत्र मे बीता और उस किशोर अवस्था मे मेरा सम्पर्क ईश्वर को न मानने वाले लोगो के साथ भी हुआ। पर वहाँ भी मेरी जिज्ञासा थी वह तीव्र-तीव्रतर होती रही। फिर जोधपुर जाने के पश्चात् विभिन्न सामाजिक सगठनो से मेरा परिचय हुआ। वहाँ जब भी ईश्वर का नाम लिया जाता था, मेरे मन मे जिज्ञासा कौंधती थी—कौन ईश्वर? कहाँ ईश्वर? कैसा ईश्वर? तो इन सारे प्रश्नो को लेकर मानो मैं सत्य को जानने की आकुलता को लेकर एक द्वन्द्व मे पडा हुआ था कि मैं प्रवृत्ति मार्ग में जाऊँ या निवृत्ति मार्ग में जाऊँ? प्रारम्भ में झुकाव तो प्रवृत्ति की तरफ ही था पर वह जिज्ञासा थी और उस जिज्ञासा को तराशने वाले, ऊर्ध्वमुखी करने वाले,

सौभाग्य से मुझे आचार्य भी मिले। कुछ जिज्ञासाओ का समाधान उन्होने किया पर जब मेरा सम्पर्क मेरे पूज्यश्री गुरुदेव से हुआ तो मेरे सारे प्रश्नो का समाधान होता चला गया। अब इसको भी क्या कहेंगे कि मैं जिस क्वार्टर में रहता था, बैचलर्स क्वार्टर्स में, उसके पड़ोस में ही उनका आगमन हुआ और उसके पड़ोस में ही एक प्रोफेसर रहते थे, वे स्वय बैचलर थे। वे बॉटनी के थे और दर्शनशास्त्र के बडे विद्वान थे और अच्छे साधक थे। उन्होंने पूज्यश्री को बुलाया और आपके लिए आश्चर्य की भी बात हो सकती है कि उस समय मेरे गुरुभाई उनके साथ थे और वे युवावस्था में थे, तो मेरा कमेण्ट था—यह युवक अपनी जिन्दगी को क्यो खराब कर रहा है? पर जब गुरुदेव से सम्पर्क हुआ तो मैं बेझिझक अपने सारे प्रश्नो को उनसे पूछता गया। मानो एक धृष्टतापूर्वक पूछता गया। मर्यादा को लाँघकर पूछता गया और मुझे सारे प्रश्नों का उत्तर मिलता चला गया। और उनमें मुझे एक आनन्द की किरण दिखाई दी। वे मानो एक अनन्त जीवन स्वय में जी रहे हों। इसलिए उनके आनन्द के स्पर्श को लेकर मैं ऐसा साहस कर सका कि मैं गृहत्याग कर दूँ, और गृहत्याग किया और उनके चरणों में चला गया।

**दीनेशजी**—माउण्ट आबू का आपका बड़ा दीर्घ प्रवास है। गुरु की शरण में वर्षो की आपकी साधना रही। उन साधना की स्थितियों मे से भी कुछ चीजे जो आपको उपलब्ध हुई उस दौरान, उनको भी हमारे साथ शेयर करना चाहेंगे?

**स्वामीजी**— निश्चित रूप से। पूज्य गुरुदेव के सम्पर्क में आते ही उन्होंने मुझे सर्वांगीण साधना मे लगा दिया, भोजन बनाना, बगीचे का काम करना, एकाउंट्स का काम करना, मन्दिर की उपासना करना और इन विविध कार्यो को शनैः-शनैः करता हुआ और साथ में वेदान्त का श्रवण करता हुआ मैं जीवन को जीने लगा। इसमें मुख्य बात थी मन्दिर की उपासना के अलावा जो अर्बुदाचल का स्पन्दन था उससे मेरा परिचय पूज्यश्री ने करवाया। वहाँ पर ओंकार की गूँज सहजतया अनुभव मे आती है। और जब उन्होंने बताया तो शनैः-शनैः मेरा उससे सम्पर्क बढता गया। उससे आत्मीयता बढती चली गई। और मुझे फिर एक बहुत गहराई और एक विस्तार का अनुभव होने लगा।

**दीनेशजी**—स्वामीजी वहाँ से आप लालेश्वर महादेव मन्दिर शिवबाडी के स्वामी के रूप में आए और वहाँ जो स्थितियाँ थीं, तत्कालीन और आपके

*आगमन के पश्चात् जो गतिविधियाँ हुई, तो जो कार्य आपने किये, उन्हें भी* संक्षेप में हम जानना चाहेंगे।

स्वामीजी—वास्तव में तो मैं माउण्ट छोडना ही नहीं चाहता था, पर परिस्थितियाँ कुछ ऐसी हुई कि मुझे माउण्ट आबू छोड़ना पडा। बीकानेर का आमन्त्रण मिला। राजमाता ने आग्रह किया। और हमारे एक महन्त हैं बीकानेर के मण्डलेश्वर विशोकानन्दजी, उनका भी आग्रह था और मैं बीकानेर आया। बीकानेर में आया तो मैं अपने बचपन की स्मृति को लेकर आया। मुझे याद नही कि उस समय उम्र क्या थी पर मुझे इतना स्मरण है कि बीकानेर मे एक कोई शिव मन्दिर है, उसमें पीतल का एक नन्दी है, उसके पास मैं खडा हूं, छोटे बालक के रूप मे। उस समय मुझे एक देहातीत अवस्था का और आनन्द का अनुभव हुआ। तो जब मेरे सामने यह प्रस्ताव आया तो मैंने आग्रह किया कि मुझे पुनः वहाँ पर रहकर कुछ अनुष्ठान करने दो। तब मन्दिर के पास जो गेस्ट रूम है उसको खुलवाया गया देवस्थान की मदद से। और वहाँ रहकर मैंने अनुष्ठान किया। मन्दिर का सेवन भी किया। पर मुझे उस अनुभूति की पुनरावृत्ति नहीं हुई तो मैं *मना करके चला गया। मुझे नही आना। पर फिर परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि* मुझे यहाँ आना पडा तो मैं समझ गया कि निश्चित रूप से इसमें शिव-संकल्प कार्य कर रहा है और फिर मैं निर्भीक होकर आया। हालाँकि उस समय बहुत ही विकट परिस्थिति थी। मन्दिर बिलकुल उजडा हुआ था। जीर्ण-शीर्ण अवस्था में था। आय का कोई साधन नही था, पर राजमाता का सहयोग था, उनकी इच्छा के कारण ही मैं यहाँ पर आया। फिर बीकानेर के लोग, जो परिचित थे, शनैः-शनैः करके जुडते चले गए और ईश्वर-संकल्प यहॉ पर शनैः-शनैः मूर्त होता गया विविध प्रवृत्तियों में।

दीनेशजी—मानव प्रबोधन प्रन्यास की चर्चा हम सुनते है। उसकी भी बडी गतिविधियाँ हैं। इसके बारे में और कुछ बताइये। इसके मूल उद्देश्यों के बारे मे और जो उपलब्धियॉ रही है उनके बारे में भी?

स्वामीजी—ऐसा था, क्योंकि यह मन्दिर राजकीय मन्दिर है। देवस्थान के अन्तर्गत है। तो इसकी आय को लेकर या इसकी सम्पत्ति को लेकर मै कोई ट्रस्ट नही बना सकता था। बिना ट्रस्ट बनाए लोगो से सहयोग लेना, उसमें पारदर्शिता रखना, उनको इन्कम टैक्स का एग्जम्पसन उपलब्ध करवाना—ये सम्भव ही नहीं था। इसलिए लोगों से प्राप्त होने वाली

धनराशि को लेकर मैंने एक ट्रस्ट–मानव प्रबोधन प्रन्यास बनाया और उसका आदर्श प्रेरणावाक्य मैंने रखा, वह था, 'वरेण्यम् पर्यावरण यजामहे', जो हमारा पर्यावरण है वो वरेण्य है और उसका मैं यजन करता हूँ। भारतीय संस्कृति के अनुसार यह पर्यावरण एक विराट् चेतना है, विराट् सत्ता है। ईश्वर का यह स्थूल प्रकटन है—हम इसकी आराधना करें। इसका यजन करें। अपनी क्रिया के द्वारा, भावना के द्वारा, चिन्तन के द्वारा—इस आदर्श को लेकर यह 'मानव प्रबोधन प्रन्यास' मानव मात्र के कल्याण के लिए, उसके सर्वांगीण विकास के लिए और विशेष करके बालकों, युवाओं के लिए यह अपनी विविध प्रवृत्तियों को कर रहा है। चारों तरफ उसने बहुत–सारे वृक्ष लगाए हैं। हजारों की संख्या में वृक्ष लगाए है और निःशुल्क औषधालय चलाया और मुख्य रूप से जो गीता प्रतियोगिता का आयोजन किया, वो अपने–आप में एक बहुत बडी उपलब्धि है, मैं ऐसा मानता हूँ।

दीनेशजी—इस पृष्ठभूमि मे अब हम थोडी चर्चा आज के समय की, आज के युग और आज के मनुष्य की करना चाहेंगे—इस दृष्टि से आज के समय में जो मनुष्य की स्थिति है, आप उसे किस रूप मे देखते हैं क्योंकि सुखात्मक–दुखात्मक तो हमारा जीवन है ही लेकिन आज का मनुष्य ज्यादा परेशान है। आप क्या कुछ विचार रखना चाहेगे ?

स्वामीजी—आपने सही कहा। आज का मनुष्य, यदि आप भारतीय सन्दर्भ मे देखना चाहें तो उसकी परेशानी का कारण यह है कि वह पश्चिम की तरफ देख रहा है। और अपने पीछे वह देखता है तो उसको एक गुलामी, एक जडता, एक अन्धकार दिखाई देता है। सुदूर अतीत मे वह झाँककर देख नही पाता क्योकि उसको कह दिया गया है कि यह तो एक पौराणिक कल्पना है, यह तो माइथोलोजी मात्र है। इसलिए वह अपने अतीत से, सार्थक रूप से जुड नहीं पा रहा और इसलिए उसको एक चिन्ता का अनुभव हो रहा है। यदि सही ढंग से वह वैदिक दर्शन से जुड जाए तो कैसी भी अपने देश की परिस्थिति हो, चाहे विश्व की परिस्थिति हो, वह उसका मुकाबला करेगा और अपने जीवन को सही ढंग से जीयेगा। जीवन मे वो बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त करेगा। नव–नव आविष्कार करेगा, अनुसन्धान करेगा और जीवन की पूर्णता को प्राप्त करेगा। जिसको हमारे यहाँ पर कहा कि अभ्युदय और निःश्रेयस, तो अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्ध करने वाला है हमारा यह वैदिक सनातन धर्म, यह हमको पता है। उसके द्वारा हम सर्वांगीण विकास, कला के

क्षेत्र मे, उद्योग के क्षेत्र में, विज्ञान के क्षेत्र मे, हर क्षेत्र में हम सर्वांगीण विकास करें और ऐसा सर्वांगीण विकास कि जो निरन्तर हमारी चेतना को विकसित करता चला जाए। हम पूर्ण विकास को निःश्रेयस कहते हैं। जीवन को काटकर, बॉटकर, पलायन को लेकर चलने वाला वैदिक दर्शन नहीं है। यह हाथ पर हाथ रखकर बैठने वाला कि 'जाहि विधि राखे राम, ताहि विधि रहिये', ऐसा दर्शन भी हमारा नही है।

**दीनेशजी**—अध्यात्म और विज्ञान—प्रायः हम देखते हैं कि दोनों में पार्थक्य करके देखा जाता है। विज्ञान की दृष्टि अलग होती है, अध्यात्म की दृष्टि अलग होती है—ऐसा माना जाता है। आपमें हम विज्ञान और अध्यात्म—दोनों का समुच्चय देखते हैं। दोनों को एकमेव होता देखते हैं, इस दृष्टि से, *विज्ञान-दृष्टि और अध्यात्म-दृष्टि की जो फाँक है*, जो पार्थक्य है, उस पर आप क्या टिप्पणी करेंगे?

**स्वामीजी**—यह पार्थक्य उन लोगों ने किया कि जो आध्यात्म को सही ढंग से नही पकड रहे, जिनका अध्यात्म उनके दर्शन पर आधारित है और उनका दर्शन या तो द्वैत या त्रैत दर्शन या विशिष्टाद्वैत दर्शन है। हम अद्वैत दर्शन को लेकर चलने वाले, इसलिए हम जब अध्यात्म कहते हैं तो उसमें अधिभूत और अधिदेव दोनों शामिल हैं। तो अधिभूत, अधिदेव और अध्यात्म—इन तीनों के आधार में जो तत्त्व है, उसी को हम आत्मा कहते है। इसलिए हमारे यहाँ पार्थक्य है ही नहीं। इसीलिए कोई विरोध नही। हमारे यहॉ विज्ञान को लेकर जो चिन्तन हम करते हैं—तो विज्ञान अधिभूत और अधिदेव तक जाता है और हम उसको अध्यात्म में शामिल कर लेते हैं।

**दीनेशजी**—गुरुदेव का हमने स्मरण किया, इसके अलावा आप खुद स्वामीजी हैं। आपके जीवन में भी बडे-बडे महापुरुषों का आगमन हुआ होगा। सान्निध्य रहा होगा। इस समय किन महापुरुषों और किन मनीषियो का आप स्मरण करना चाहेगे?

**स्वामीजी**—आपने सही फरमाया। सबसे पहले तो मैं अपने गुरुदेव (श्रीस्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी महाराज) का स्मरण करता हूँ जो स्वयं *इंजीनियरिंग किये हुए हैं। वे विज्ञान की दृष्टि को लेकर एक नूतन सवित्* दृष्टि हमारे समक्ष प्रस्तुत करते हैं। यह एक सर्वांगीण दृष्टि है। ब्रह्म की निर्गुण, निष्क्रिय अवस्था को लेकर भी वेदान्त की चर्चा होती है पर ब्रह्म

अपनी शक्ति को लेकर जगत् में प्रकट हो रहा है। जगत् मे उछल रहा है। वो आनन्द स्वरूप है। वो गा रहा है। महक रहा है। यह प्रतिपादन मुझे पूज्य गुरुदेव से मिला। सबसे पहले तो मैं उन्हीं के चरणो में अपना प्रणाम अर्पित करता हुआ उनका स्मरण करता हूँ। वैसे ही मेरे दादागुरुजी थे। बीकानेर क्षेत्र के तो बहुत लोग परिचित हैं उनसे। वे यहाँ बहुत आया करते थे। श्री स्वामी नृसिंहगिरिजी महाराज—अभी तो ब्रह्मलीन हो गए हैं। ऐसे अभी हमारे कैलास आश्रम, हृषीकेश के श्री स्वामी विद्यानन्दगिरिजी महाराज हैं, वो भी बहुत कार्य कर रहे हैं। इस अध्यात्म के क्षेत्र मे उनका भी मैं स्मरण करता हूँ। वैसे ही रामसुखदासजी महाराज है। अभी कुछ दिन पूर्व ही मैं उनसे मिलकरके आया। वे भी त्याग और तपस्या की प्रतिमूर्ति हैं और जनकल्याण के लिए वे अध्यात्म क्षेत्र मे बहुत श्रेष्ठ कार्य कर रहे हैं।

**दीनेशजी**—जनकल्याण के लिए आपने अपनी जो साधना-स्थली चुनी बीकानेर और बीकानेर क्षेत्र का जन-जन और जन-मन आपसे जुडा हुआ है, जितनी भी सांस्कृतिक-साहित्यिक गतिविधियाँ होती है आप वहाँ उपस्थित होते हैं। मैं यह जानना चाहूँगा कि सृजनात्मक लेखन से भी आपका जुडाव है?

**स्वामीजी**—आपने सही कहा। मैं अपनी किशोर अवस्था मे बीकानेर के साहित्यकारों से—हरीश भादाणी, सरलजी—इनसे जुडा हुआ था। वातायन पत्र निकलता था, उससे जुडा हुआ था। मैं स्वयं भी कविता लिखता था। माउण्ट आबू जाने के बाद भी कविताएँ लिखीं। बीकानेर आने पर वह लेखन कुछ-कुछ अवरुद्ध हुआ है क्योंकि व्यस्तता अधिक बढ गई। फिर भी मैं लेखन कार्य करता हूँ। कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

**दीनेशजी**—आपके श्रीमुख से आपकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ, जो स्मृति मे हों, हम जरूर सुनना चाहेगे।

**स्वामीजी**—वो स्मृति में तो कविता.. कैसे कहूँ? पहले कहते तो शायद तैयार करके रखता, पर फिर भी—

आँगन में फूल खिला
आँगन मे फूल खिला
मैं बोला—मेरा
तो मुरझाया

फूल खिला एक और
मै बोला—तेरा
तो मुस्काया
खिला फूल एक और
मैं बोला तू खिला
वह बोला—
ले मै तुझमें खिला
तब से वह खिले जा रहा है
गन्ध गीत लिखे जा रहा है
ऑगन में फूल खिला...

**दीनेशजी**—बहुत सुन्दर! हमे थोडा-सा फिराक साहब की स्मृति हो आयी है और जीवन की थोडी-सी जो अभाव की, दारिद्रय की, अलगाव की स्थितियाँ हैं, उनको अभिव्यंजित करती है—मैं इस पर भी आपकी टिप्पणी चाहूँगा, जब वो कहते है—

हमनवॉ कोई नहीं है
वो चमन मुझको दिया
हमवतन बात न समझे
वो वतन मुझको दिया
पर फरिश्तो को दिये तूने
तो क्या ग़म इसका
यही क्या कम है कि
इन्सां का चलन मुझको दिया।

स्वामीजी! इन्सां का चलन हमें दिया गया, पर हम उस चाल से चल नही रहे हैं। ये बडी ही ट्रेजिक, त्रासदीभरी स्थिति है। लेकिन जब कवि अपनी व्यथा इन पंक्तियों में रखता है और अपने देश की परिस्थिति पर जो टिप्पणी करता है, तो आप भी रचनाकारो को पढते हैं, इस तरह की मनःस्थितियो की कविता पर आपकी क्या प्रतिक्रिया होती है?

**स्वामीजी**—आपने बहुत अच्छा पूछा, पर क्योकि कवि के बारे मे कुछ टिप्पणी करना उचित नहीं है, फिर भी एक टिप्पणी मैं करूँगा कि उसके चित्त की निर्मलता पर उसकी अनुभूति और अभिव्यक्ति निर्भर करती है। मैं

अध्यात्म के पथ का एक पथिक हूँ। चित्त की निर्मलता को लेकर बहुत ज्यादा प्रयास करता रहता हूँ। जितना-जितना चित्त राग-द्वेष से मुक्त होगा और जितना-जितना आत्म-स्वरूप, जगत्-स्वरूप, जगत्-कर्ता के विषय मे स्पष्टता आयेगी, उतना-उतना यह जो संवेदनशीलता है, ऊर्ध्वमुखी हो जायेगी। नहीं तो इन सवेदनशील मानवीय मूल्यो को लेकर चिन्तित मानवीय पीडा को विराट् के फलक पर ले जाकर अनुभव और अभिव्यक्ति देने वाले, उसको दिशा देने वाले कवियो की अभिव्यक्ति मे एक सीमा आ जाती है। इनकी संवेदनशीलता बहुत ठीक है, पर मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि यदि ये उस पूर्णता के साधक हुए होते तो इनकी ये संवेदना और अधिक सूक्ष्म, प्राजल और कालजयी हो जाती।

दीनेशजी—जैसा कि आपने आनन्द को परम माना और जीवन के लिए आनन्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण वस्तु है, किन्तु जो, जिसे कहना चाहिये कि जब कवि कहता है—सभी मानव सुखी, सुन्दर और शोषणमुक्त तब होगे—तो यह जो परिवर्तन और जो बेहतर की स्थिति है, इसके लिए हम मानव प्रयत्नशील रहते हैं। आप कुछ सन्देश के तौर पर और क्या-कुछ बताना चाहेगे, कहना चाहेंगे—आशीर्वचन के रूप में जरूर बताएँ—

स्वामीजी—मैं इसको भारतीय संस्कृति के जीवन-दर्शन के रूप में ऐसे देखता हूँ : भारतीय सस्कृति मे जगत् के बारे मे एक अवधारणा रखी है। अनित्यं असुखं लोकम्। इम प्राप्य भजस्व माम्। भगवद्गीता मे इसको बताया—जगत् शब्द का अर्थ ही होता है—गच्छति इति जगतः। जो चेज होता रहता है—संसरति इति ससारः! बदलता रहता है। और जब हम फोकस करते हैं विनाश के ऊपर, तो आर्तभाव उत्पन्न होता है। पर जब हम जगत् के सौन्दर्य पर, रहस्यो पर दृष्टिपात करते है तो हमारी जिज्ञासा तीव्र हो उठती है। जब हम जगत् के अर्थ को खोजने जाते है तो हम अर्थार्थी हो जाते है। ये तीन प्रकार की श्रेणियाँ हमारे यहॉ पर भक्त की गिनाई है। इसलिए इस परिपूर्ण दर्शन को हम हमारे समक्ष रखते हैं। हम कर्म के सिद्धान्त को मानते हैं। पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते हैं और किसी भी जगह दुख को देखते हैं तो उसका मूल हम पता लगाना चाहते हैं तो उसके अन्तर्गत उसका कर्म भी होता है और साथ में उसके वर्तमान के कर्म भी, उसके अतीत के कर्म भी। पर हमारे यहॉ पर यह जीवन-दर्शन दिया व्यक्ति को कि तुम्हारा प्राणी मात्र के प्रति एक दायित्व है। जिसका हम ऋण के रूप

में वर्णन करते हैं। मनुष्य मात्र ही नहीं, प्राणी मात्र के प्रति। इसलिए हमारा यह कर्तव्य हो जाना चाहिए कि समाज में जहाँ-कहीं शोषण है, त्रास है, दुःख है, गरीबी है, रोग है, उनके निवारण में हमको अपना दाय देना चाहिए। और ये केवल मनुष्य तक ही सीमित न रहें। पूरे पर्यावरण को लेकर, प्राणी मात्र को लेकर, वनस्पति जगत् को लेकर, यह हमारा एक दाय है। इसको हम ऋण-शोधन की दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण, मनुष्यऋण और भूतऋण—इनके अन्तर्गत अखिल ब्रह्माण्ड आ जाता है। हमारा बायोस्फियर आ जाता है। हम और पूरी प्रकृति आ जाती है।

दीनेशजी—कलियुग की बात कही जाती है और इसके विस्तार की बात भी कही जाती है। इस युग मे मनुष्य उन्मुक्ति और ऊँचाइयाँ, विशालता, हृदय की विशालता—मनसा-कर्मणा-वाचा जिसे कहते हैं, उसकी विशालता किस तरह प्राप्त करें—क्या कुछ करना होगा, क्या कुछ करना चाहिए? इस पर भी आप प्रकाश डालें।

स्वामीजी—अपने-आप को सही ढंग से स्वीकारें। अपनी कामनाओं को सही ढग से स्वीकारें। और अपनी कामनाओ को शास्त्र के अनुसार, जिसे मैं कहूँ, अपने पर्यावरणीय नियमो के अनुसार उन कामनाओ की पूर्ति करे। यज्ञीय प्रक्रिया के द्वारा उन कामनाओ की पूर्ति करें और साथ मे अपने ये जो पंचविध दायित्व है, इनको पूर्ण करें तो निश्चित रूप से उनके चित्त मे शुद्धि आयेगी। सतयुग का एक अलग साधना का रूप होता है। त्रेता का अलग, द्वापर का अलग। कलियुग में सिर्फ सही ढंग से स्वधर्म का पालन करता हुआ वो जीये। बहुत बड़े तप की आवश्यकता नहीं। इसी को हमारे पुराणों में कह दिया कि कलि में तो सिर्फ कीर्तन करने से ही काम हो जायेगा। कीर्तन का तात्पर्य यह है कि जो पंचविध ऋण हैं उनके शोधन के लिये पॉच यज्ञ प्रतिदिन करें। क्योकि 'यज्ञो वै विष्णुः'—यज्ञ विष्णु रूप है। अतः यज्ञ करना विष्णु-कीर्तन-पूजन है। ये पंचविध यज्ञ करे। सही ढंग से जीना इटसैल्फ आपको पवित्र कर देगा और वो सही ढंग एकांगी नहीं हो सकता। वो स्वयं को लेकर होगा समाज को लेकर होगा, पूरे पर्यावरण को लेकर होगा। भगवद्गीता में इसीलिए कहा है—यज्ञो दानं तपश्चैव, पावनानि मनीषिणाम्. एक इन्टैलिजेन्ट व्यक्ति हो, मनीषी हो तो वह तप, दान और यज्ञ की साधना के द्वारा पवित्र हो जायेगा और पवित्र अन्तःकरण में ही वह आनन्द प्रतिबिम्बित हो उठता है।

दीनेशजी—और कोई बात, कोई अभिव्यक्ति आप रखना चाहे हमारे परिक्षेत्र के श्रोताओं के लिए—हमें जरूर बताइये।

स्वामीजी—मुख्य बात है हमको अपनी वर्तमान पीढ़ी को, हमारे नौनिहालो को, इनको दिशा देनी बहुत आवश्यक है। क्योंकि सन्तों की वाणी के द्वारा, कुछ साहित्यकारो द्वारा, कुछ लोकभजनों के द्वारा, लोक-जीवन के द्वारा उनको हमारी जो सास्कृतिक धरोहर है वह प्राप्त हो रही है। पर हमारी शिक्षा के द्वारा वह प्राप्त नहीं हो रही। इसलिए जो विदेश की चकाचौंध है, उससे वे किस प्रकार बचें और उनको हमारी भारतीय संस्कृति, भारतीय सगीत, भारतीय नृत्य, भारतीय जीवनशैली और एक आनन्दमयी, सौन्दर्यमयी जो संस्कृति है, उससे उनका परिचय कैसे हो? इसके लिये हमको प्रयास करना चाहिये। और इसके लिए मैं प्रत्येक व्यक्ति को जिम्मेदार मानता हूँ। सर्मन्स के द्वारा वो सन्तुष्ट नहीं होगे, कोई डिक्टेशन के द्वारा वे उसको स्वीकार करेंगे नही। क्योंकि जो तरुणाई है, उनके सामने जीकर के दिखाना पडेगा कि इस प्रकार से उस आनन्द को जीया जाता है, अभिव्यक्त किया जाता है।

दीनेशजी—स्वामीजी, पश्चिम की दृष्टि की बात आपने की और हमारे पूर्व की दृष्टि की भी। पश्चिम और पूर्व में यह जो पार्थक्य रखा जाता है, ये जो जीवनदृष्टियॉ या जीवनमूल्य दोनों जगहों पर उपलब्ध हुए, वे निश्चय ही अलग-अलग हैं, अलग-अलग संस्कृतियाँ हैं। लेकिन इनके बीच में जो मानव धर्म की सलिला बहती है या जिसे कहना चाहिये कि ह्यूमन एलिमेन्ट्स हैं, वो तो कॉमन है। मैं समझता हूँ, इस दृष्टि से पश्चिम की जीवनदृष्टि मे जो कमजोरियॉ है, जो हमारी दृष्टि को स्वीकार्य नहीं हैं, उनको तो हम ग्रहण नही करे। लेकिन जो वहाँ भी श्रेष्ठ है, वरेण्य है, उसको तो ग्रहण किया जाना चाहिये।

स्वामीजी—निश्चित रूप से ग्रहण करना चाहिये। इसलिए पश्चिम और पूर्व की बात तो मै लोगों मे जो प्रचलित शब्द हैं उसको लेकर कहता हूँ। हमारे यहाँ पर पश्चिम-पूर्व का सवाल नहीं है। हमारे यहॉ तो पूरी धरती को लेकर विचार है। पर दो धाराओ को लेकर निश्चित रूप से बात की गई है। 'द्वौ भूत सर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च'—ये तो सृष्टि में प्रारम्भ से ही चले आ रहे हैं। दैव सर्ग, आसुरी सर्ग—ये तो हमारे भारत मे भी हैं। जिसको हम कहते हैं—हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु.. अर्थ और काम की

दृष्टि वाले लोग हैं, चार्वाक लोग भी यहाँ पर हुए हैं। इसलिए जो दो दृष्टियों की बात है, हमको जो यह देवदृष्टि है, इसको अपनाना चाहिए।

दीनेशजी—सवित् स्वामी सोमगिरिजी! आप यहाँ उपस्थित हुए, आपने कृपा की और अपने विचारों से हमे लाभान्वित किया। आपने दर्शन दिया। अपने विचार रखे। हम किन शब्दो मे आपको धन्यवाद अर्पण करें। हमे तो अपनी संस्कृति मे सिखाया गया है, सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग् भवेत्।। और जीवन ढूँढते रहने की, जीवन को देते रहने की, प्रेम और आनन्द की जो परिकल्पना आपने हमारे सामने रखी, जिनको जीवनमूल्य मानकर हमको आगे बढना है और निश्चय ही हम चाहते हैं कि उस पर चलें। हमारे परिक्षेत्र के श्रोताओ की तरफ से मैं आपको पुनः हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। बहुत-बहुत धन्यवाद।

।। इति शुभम्।।

नोट : पूज्य स्वामीजी से साक्षात्कार करने वाले श्री दीनेशचन्द्र शर्मा वर्तमान में आकाशवाणी, सूरतगढ़, राजस्थान में सहायक केन्द्र निदेशक के पद पर कार्यरत है। आपकी साहित्य, संस्कृति और धर्म में गहरी रुचि और आस्था है।

*आकाशवाणी सूरतगढ से दिनॉक 19/6/04 को प्रसारित साक्षात्कार*



# मानव प्रबोधन प्रन्यास का प्रतीक चिह्न तथा प्रेरणा-वाक्य

वेद के अनुसार मनुष्य-योनि, कर्म-योनि है। मनुष्य से इतर सभी योनियाँ भोग-योनियाँ हैं। मनुष्य स्वरूपतः ब्रह्म ही है। मूल-अविद्या के कारण आत्मा को 'मैं जीव हूँ', 'मैं शरीर हूँ'—यह भ्रान्ति होती है। अविद्या के कारण मनुष्य स्वय को कर्ता-भोक्ता माने बैठा है। मनुष्य अपनी कामनापूर्ति की प्रक्रिया में, अपनी वासनाओ को दृढ करता हुआ, अपने कर्तापन-भोक्तापन को दृढ कर लेता है। इसके परिणामस्वरूप वह जन्म-मरण के ससरण मे पडा रहता है। किन्तु यदि मनुष्य वेद मे प्रतिपादित विधि (यज्ञीय-प्रक्रिया) से कामनापूर्ति करता है और साथ-साथ वेद-वर्णित अपने कर्तव्यो को सम्पन्न करता है तो उसका कर्तापन-भोक्तापन शिथिल पडता जाता है, उसका चित्त शुद्ध होता जाता है, उसमे ईश्वर के प्रति प्रेम बढता जाता है और अन्ततोगत्वा उसमे *आत्म-ज्ञान प्रकाशित* होता है। *आत्म-ज्ञान से मूल-अविद्या का नाश* हो जाता है और मनुष्य अपनी ब्रह्मरूपता का साक्षात्कार कर लेता है।

मानव प्रबोधन प्रन्यास के प्रतीक चिह्न के विभिन्न घटक सम्पूर्ण पर्यावरण व मानव मात्र की इस जीवन-साधना को दर्शाते हैं।

**ओंकार (शुद्ध ब्रह्म)**

भारतीय संस्कृति, सनातन संस्कृति है, मानव-संस्कृति है। अद्वैत आत्म-दर्शन इस संस्कृति की आत्मा है। इस दर्शन के अनुसार परब्रह्म परमात्मा जगत् का कारण है। वह शुद्धब्रह्म ही जगत् की सृष्टि-स्थिति-लय करता हुआ परमेश्वर कहलाता है। ब्रह्म अपने शुद्ध स्वरूप में यथावत् रहते हुए ईश्वर, जीव व जगत् रूप में प्रतिभासित होता है। ईश्वर जगत्-नियन्ता है, अन्तर्यामी है, कर्मफल-प्रदाता है। जीव व जगत् का संचालन यज्ञीय प्रक्रिया द्वारा होता है। सभी पदार्थ, सारी वनस्पतियाँ व सारे जीव एक बृहद् यज्ञ-चक्र द्वारा संधारित व संचालित हैं। ईश्वर अपनी त्रिगुणात्मिका जड-शक्ति (अपरा-प्रकृति) व जीव-रूपा परा-प्रकृति का प्रयोग करके जगत् की सृष्टि आदि के कृत्य करता है। पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) वाला स्थूल जगत् व इससे सम्बद्ध चैतन्य को विराट् कहा जाता है। पाँच

तन्मात्राओं, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरण वाले सूक्ष्म जगत् तथा इससे सम्बद्ध चैतन्य को हिरण्यगर्भ कहा जाता है। इन सबकी बीजावस्था वाले कारण-रूप जगत्, अव्यक्त (अव्याकृत) व इससे सम्बद्ध चैतन्य को ईश्वर कहा जाता है। ओकार (ॐ) परमात्मा के शुद्ध रूप तथा विराट्, हिरण्यगर्भ (सूत्रात्मा) व ईश्वर का बोध कराता है। ओकार से ही सभी स्वर व व्यंजन तथा समस्त भेद प्रकट हुए है। मानव प्रबोधन प्रन्यास के प्रतीक चिह्न मे ओंकार सूर्य-रूप में दर्शित है। पृथ्वी और सूर्य को जोडने वाली अग्नि-ज्वालाएँ यज्ञ की प्रतीक हैं।

## मछली (कर्मयोग)

जल से ऊपर को उछलती हुई मछली उस साधक का प्रतीक है जो सकाम कर्म से ऊपर उठकर निष्काम कर्म की साधना को अपना रहा है। जल से बाहर उछल कर मछली हवा के बुलबुले को पीना चाहती है। मछली सागर की नीलिमा से गगन की नीलिमा की ओर उछली है, मानो वह असीम गगन की हो जाना चाहती है। इस मीन को अपनी, सागर की और गगन की एक समझ है, इसमे एक भाव की उमडन है, इसकी उछलन मे एक लहराती लचक है।

## कमल (भक्ति-योग)

कमल जल का अलंकार है (कं=जलं, अलंकरोति=अलंकृत करता है)। कमल जल से गहराई में जुडा है, जल से पोषित है, किन्तु जल से असंग होकर, सूर्यमुखी हो, ऊपर उठा हुआ है। कमल अपनी सुन्दरता व सुरभि से परिवेश को पवित्र करता है। खिला हुआ कमल निष्काम कर्मयोग की साधना मे निष्णात साधक का प्रतीक है। यह प्रभु-भक्ति से प्रफुल्लित साधक के हृदय-कमल का द्योतक है।

## हंस (ज्ञान-योग)

अनन्य भक्ति से युक्त साधक ही ज्ञानयोग की साधना करने की योग्यता रखता है। विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति (1. शम, 2 दम, 3. उपरति, 4 तितिक्षा, 5 श्रद्धा, 6 समाधान) और मुमुक्षा—ये चार, 'साधन चतुष्टय' के नाम से जाने जाते हैं। इनसे युक्त साधक ही वेदान्त-श्रवण का अधिकारी होता है। ऊर्ध्वगामी हंस ज्ञान-साधना मे रत साधक का प्रतीक है। हंस का नीर-क्षीर विवेक प्रसिद्ध है। इसका श्वेत रग शुचिता का व दैवी सम्पत्ति का द्योतिक है। कर्मयोग की साधना से स्वस्थ, सशक्त, पवित्र हुआ साधक प्रभु की भक्ति को प्राप्त करता है। इस भक्ति-साधना को करता हुआ साधक चित्त में छिपी हुई वासनाओ से मुक्त होकर शुद्ध होता है। इस प्रकार से प्राप्त शुद्ध-सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ही साथक सत्-असत् का विवेक करते हुए ज्ञान-साधना

करता है, चिदम्बर मे उडान भरता है और अन्ततोगत्वा ओंकार मे तन्मय हो जाता है।

## अष्टमूर्ति

इस प्रतीक-चिह्न में अष्टमूर्ति का प्रदर्शन है। अष्टमूर्ति के अन्तर्गत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश (पाँच महाभूत), सूर्य, चन्द्र और जीवात्मा आते हैं। वह परब्रह्म इन आठो रूपो में स्वयं को अभिव्यक्त करता है। प्रतीक-चिह्न में पृथ्वी, जल व अग्नि स्पष्ट रूप से दर्शित है। सांस लेती हुई मछली, कमल, पेड व हस से तथा दीप्त अग्नि-ज्वालाओं व विचरण करते बादलों से वायु-तत्त्व का प्रदर्शन है। इन सबको अवकाश देने वाले आकाश का अनुभव भी स्पष्ट है। प्रतीक चिह्न मे सबसे ऊपर सूर्य दर्शित है। वनस्पतियों मे रसापादन चन्द्रमा करता है। अतः खिले हुए कमल व वृक्षो से चन्द्रमा परिलक्षित है। अष्टम् मूर्ति जीवात्मा है। मछली, कमल, वृक्ष व हंस में जीवात्मा का प्रदर्शन है।

## यज्ञ

प्रतीक चिह्न में सम्पूर्ण पृथ्वी के नीचे यज्ञ-वेदी दर्शित है। यज्ञ-वेदी में प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाएँ ऊपर उठ रही हैं और सूर्य-मण्डल में जाकर मिल रही हैं। सूर्य की रश्मियाँ भूमण्डल में व्याप्त होकर अपना आलोक, अपनी ऊर्जा व ऊष्मा को वितरित कर रही हैं। सूर्य-रश्मियो के द्वारा ही जल वाष्पित होकर ऊपर उठता है, बादल बनता है। बादल, वायु द्वारा मैदानों व पहाडो पर ले जाये जाते हैं जो बरसते हैं तो पहाड़ो पर बर्फ जमती है, नदियाँ बहती हैं। वनो को सीचते हुए, सबकी प्यास बुझाते हुए जल अन्त में सागर पहुँच जाता है। ये सब एक यज्ञ-चक्र द्वारा जुडे हुए है। इस प्रतीक चिह्न का प्रत्येक घटक अपने-आप में एक यज्ञ सम्पन्न करता हुआ एक वृहद् यज्ञ-चक्र का अंग बनता है। प्रतीक चिह्न मे जड-चेतन, चर-अचर, दृष्ट-अदृष्ट पर्यावरण का प्रदर्शन है। भारतीय दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण पर्यावरण परमेश्वर का ही सुन्दर, कलात्मक, आनन्दमय प्रकटन है—वह परमेश्वररूप ही है। वह एक विराट् सत्ता है, विराट् चेतना है।

मानव इस सम्पूर्ण पर्यावरण की श्रेष्ठतम कृति है। इसीलिये यह पर्यावरण मानव के लिये वरेण्य है, भजनीय है। मानव में प्रकटित स्वातंत्र्य के कारण उससे यह अपेक्षित है कि वह अपनी क्रिया, भावना व ज्ञान द्वारा पर्यावरण से जुडता हुआ पर्यावरण की चेतना से अपनी चेतना को एक करदे। इस अपेक्षा का आह्वान करने वाला यह प्रतीक चिह्न सम्पूर्ण पर्यावरण को दर्शाता हुआ मानव-साधना का कलात्मक प्रतिपादन करता है। सम्पूर्ण-

पर्यावरण के अन्तर्गत पर्यावरण का स्थूल रूप, सूक्ष्म रूप व अव्यक्त रूप आ जाता है। इसके स्थूलरूप व उससे सयुक्त चैतन्य को 'विराट्' कहते हैं। इसके सूक्ष्म रूप व उससे सयुक्त चैतन्य को हिरण्यगर्भ कहते हैं। इसके अव्यक्त–रूप व उससे संयुक्त चैतन्य को ईश्वर कहते हैं। एक अखण्ड–अद्वैत चैतन्य ही, अपने स्वरूप को यथावत् रखते हुए स्वयं को समष्टि स्तर पर 'ईश्वर', 'हिरण्यगर्भ' व 'विराट्' रूप में अभिव्यक्त करता है। व्यष्टि स्तर पर अविद्या से संयुवत हो वही 'जीवात्मा' कहलाता है।

पर्यावरण शब्द का अर्थ है—जो आवरक है। मनुष्य के स्थूल शरीर का आवरक स्थूल पर्यावरण है। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर (5 कर्मेन्द्रियां, 5 प्राण, 5 ज्ञानेन्द्रियॉ व अन्तःकरण) का आवरक सूक्ष्म पर्यावरण है। मनुष्य के कारण–शरीर का आवरक समष्टि अव्यक्त है। इसी कारण–शरीर अर्थात् अविद्या के कारण जीवात्मा अपने अस्तित्व को पर्यावरण से अलग (भिन्न) रूप से अनुभव करता है। वास्तव मे तो जीव का स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर पर्यावरण का ही अविभाज्य अंग है। पर्यावरण के साथ मनुष्य के सम्बन्ध व व्यवहार पर हनुमानजी की यह उक्ति, जिसे उन्होंने श्रीरामजी के प्रति कहा था, सम्यक् प्रकाश डालती है—

**देह दृष्ट्या तु दासोऽहं जीव–दृष्ट्या त्वदंशकः**
**आत्म–दृष्ट्या त्वमेवाहं इति मे निश्चिता मतिः।।**

अर्थात् '*हे राम! शरीर की दृष्टि से मैं आपका दास हूँ, जीव की दृष्टि* से मै आपका प्रतिबिम्ब हूॅ, और आत्मा की दृष्टि से मै, आप ही हूँ अर्थात् मैं और आप एक ही है।' पर्यावरण शब्द का दूसरा अर्थ भी महत्त्वपूर्ण है। यह शब्द परि+आ+वरण से मिलकर बना है। 'परि' का अर्थ है—चारों तरफ से, 'आ' का अर्थ है—सभी प्रकार से, वरण का अर्थ है—चयन, चुन लेना, प्रार्थनापूर्वक चाहना। इस प्रकार पर्यावरण शब्द का अर्थ हुआ—चारों ओर से, सब प्रकार से वरण, अर्थात् सतत–सम्पूर्ण–परस्पर वरण। पर्यावरण ने मनुष्य का वरण किया है। अनादिकाल से चले आ रहे जीव के सचित कर्मो की अमाप ढेरी मे से कुछ कर्मो को चुनकर जीव को दुर्लभ मनुष्य जन्म प्रदान करने मे परमेश्वर द्वारा किया गया जीव का वरण स्पष्ट है। अब वह 'विराट्' मनुष्य से अपेक्षा करता है कि मनुष्य उसका वरण करे।

पर्यावरण को समझते हुए, उससे अपने सम्बन्ध को समझते हुए, उसके विधान का (शासन का) पालन करते हुए प्रारम्भ में दासोऽहं की साधना द्वारा, ऋण–मोचन की दृष्टि से आदर व कृतज्ञतापूर्वक कर्तव्य–कर्म

करने के द्वारा ही उसका वरण सम्भव है। मनुष्य, यदि कामना-पूर्ति के लिये उसके विधान का पालन करते हुए काम्य-कर्म करता है, तो यह उसका 'गौण-वरण' है। मनुष्य यदि अपनी शारीरिक व मानसिक शक्तियो का प्रयोग करके साहित्य, कला, विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रो मे नव-नव सर्जन करता है तो इससे पर्यावरण प्रसन्न होता है। किन्तु जब वह इसे पर्यावरण का प्रसाद न मानकर 'मैंने किया'—'मैंने किया' ऐसा गर्व करता है तो पर्यावरण का शासक रूप ही प्रकट होता है और जब मानव अपनी उपलब्धियो का दुरुपयोग करके पर्यावरण को प्रदूषित करता है तो पर्यावरण उस पर कुपित होता है। यज्ञीय-प्रक्रिया से प्राप्त उपलब्धियो द्वारा ही मानव की अपनी व पर्यावरण की तुष्टि-पुष्टि सम्भव है।

मानव की वास्तविक वरण-साधना का प्रारम्भ तो निष्काम कर्मयोग से ही होता है। इस प्रकार मनुष्य के निष्काम कर्म करने पर वह पर्यावरण प्रसन्न होता है, *पुलकित होता है, पसीजता है, पावसता है, पूरे जैव-मण्डल मे* सुख-समृद्धि का वर्षण करता है और अस्तित्व व चेतना के उच्च स्तर पर उस सत्-साधक का वरण करता है और उससे अपेक्षा करता है कि वह एक उन्नत व घनिष्ठ स्तर पर उसका वरण करे। इस स्तर पर साधक, शिष्य-भाव में उपनीत होता है व पर्यावरण का गुरु-रूप से वरण करता है। *अब शिष्य—साधक, जीवन की प्रत्येक घटना व प्रतीति को गुरु—पर्यावरण* के उपदेश रूप मे ग्रहण करता हुआ सतत परस्पर वरण-साधना के उच्च व सूक्ष्म सोपानों पर आरोहण करता चला जाता है। साधना के शिखर पर सत्-शिष्य पर्यावरण की आत्मा का आत्मरुपेण वरण करता है तथा आत्म-ब्रह्म ऐक्य की अखण्ड अनुभूति में स्थित हो जाता है। सम्पूर्ण पर्यावरण का 'मैं' और साधक का 'मैं' एक ही है, यह अनुभव ही जीवन की पूर्णता है।

इस वरण-साधना को ही दर्शाता है मानव प्रबोधन प्रन्यास का प्रेरणा-वाक्य—'ॐ वरेण्यं पर्यावरणं यजामहे'। सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र (ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर् वरेण्यं - भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्) मे प्रयुक्त 'वरेण्य' शब्द का जिसके लिए व जिस अर्थ मे प्रयोग हुआ है, वैसा ही 'वरेण्य' का प्रयोग इस प्रेरणा-वाक्य में है। प्रसिद्ध महामृत्युञ्जय मन्त्र (ॐ त्र्यम्बक यजामहे सुगन्धि पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर् मुक्षीय मामृतात्।।) में आए हुए 'यजामहे' शब्द की ही, इस प्रेरणा-वाक्य में अवतारणा है। इस प्रेरणा-वाक्य मे मुण्डक-श्रुति की अनुगूँज भी सुनी जा सकती है, जिसमें कहा है—' ..यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस् तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्' (मुण्डक-उपनिषद् 3:2:3)। अर्थात—'जिस परमात्म-तत्त्व का यह

सत्-शिष्य वरण करता है, उसके प्रति यह परमात्मा अपने स्वरूप को (शिष्य की अविद्या का नाश करके) प्रकाशित कर देता है। और शिष्य में सोऽहं-सोऽहं, शिवोऽहं-शिवोऽहं का गान गूँजने लगता है। इस प्रकार यह प्रेरणा-वाक्य एक मन्त्र के समान ही मननीय है। यह अखण्ड, अद्वैत स्वरूप वाला पर्यावरण त्रिगुणात्मक (सत्त्वगुण, रजोगुण व तमोगुण) है, चिद्-जडात्मक है। यह विविधताओ और विषमताओ से भरा हुआ द्वन्द्वात्मक है। इसमें आसुरी शक्तियों और दैवी-शक्तियो का सघर्ष निरन्तर चलता रहता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय, भूख, शोक, मोह, परिवर्तन, परिवर्द्धन, क्षय आदि इसकी सरचना मे ही निहित हैं। अस्तित्व के उन्नत स्तर पर इसमें प्रेम, करुणा, त्याग, तप, मैत्री, मुदिता, श्रद्धा आदि दिव्य तत्त्व भी है। इसके परिवर्तन मे लालित्य, लावण्य तथा सौन्दर्य व सौष्ठव हैं। यह लयान्वित होकर निरन्तर गतिशील है। समस्त शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, क्रिया, इच्छा, ज्ञान, सर्जन, विसर्जन सब-कुछ इसमें एक लय में, रिद्म (RHYTHM) मे हैं। इस रिद्म को ही 'ऋतम्' या 'धर्म' कहते हैं। इसके कलेवर में कमनीय कोमल सुमन है और कठोर पाषाण भी, इसमे मृदुल ऊर्मिया है और उत्ताल तरंगें भी, इसमें सुशीतल चान्द्र ज्योत्स्ना है और प्रखर ज्वालाएँ भी, इसमे बासन्ती बयार है और उद्धत झंझावात भी, इसमे मधुर पीयूष है और दाहक हलाहल भी। यह भयकर है और शुभकर भी। मानव उसके समर-समय अमित, अथाह, आनन्दमय अस्तित्व-सागर में उठी हुई एक श्रेष्ठतम लहर है।

कुछ अल्पमति व्यक्ति यह आशका करते हैं कि आज का मानव अपने परमाणु आयुधो द्वारा कही इस धरा को नष्ट कर न दे। उन व्यक्तियों को यह समझ लेना चाहिए कि पर्यावरण का शासन अनुल्लघ्य है। मानव यदि पर्यावरण को जीतने, वश मे करने या भोगने की कलुषित वासनाओं के वशीभूत होकर उस पर प्रहार करने का प्रयास करेगा, उसे प्रदूषित करेगा तो वह उसके कोप का व दण्ड का भागी बनेगा। जिस क्षण यह पर्यावरण चाहेगा उसी क्षण वह दम्भी, उच्छृंखल मानव जाति को कुचल कर रख सकता है, पूर्णतः नष्ट कर सकता है। पश्चिमी देशों से आयातित पर्यावरण की यन्त्र-रूप जड अवधारणा का तथा द्वैत-दर्शनों की 'प्रकृति-जड है'—इस भ्रान्त धारणा का परित्याग करके, अद्वैत-दर्शन मे प्रतिपादित पर्यावरण विषयक अवधारणा को अपनाते हुए 'यजामहे' (आदर व कृतज्ञतापूर्वक यजन करना, यज्ञ-दृष्टि से कर्म करना, कर्म-योग करना) की साधना करते रहने से ही मानव की सुरक्षा, समृद्धि व शान्ति सम्भव है। मानव प्रबोधन प्रन्यास समाज मे इसी पर्यावरणीय दृष्टि को विकसित करने के लिए समर्पित है, यत्नशील है। •

## स्वामी संवित् सोमगिरि

ज. ना. व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर, अभियान्त्रिकी संकाय (एम. बी. एम. इंजीनियरिंग कॉलेज) के व्याख्याता पद का त्याग कर आपने परम पूज्य श्रीमत् स्वामी ईश्वरानन्दगिरिजी महाराज से 'परमहंस संन्यास' की दीक्षा ग्रहण कर ब्रह्मचर्य आश्रम से संन्यास आश्रम में प्रवेश किया। गुरुदेव के श्रीचरणों में रहते हुए आपने लगभग 24 वर्ष तक अर्बुदाचल की तपोभूमि में वेदान्त का अध्ययन किया व साधना की।

*वर्तमान में श्रीलालेश्वर महादेव मन्दिर, शिवबाड़ी,* बीकानेर के महन्त पद पर प्रतिष्ठित हैं।

सरल, सहज और सौम्य भाव से समन्वित आध्यात्मिक स्फूर्ति से ऊर्जित, पारदर्शी व्यक्तित्व के धनी जिनमे बालकों के प्रति अगाध वात्सल्य, समवयस्कों के प्रति मैत्री भाव तथा वृद्धजनों के प्रति आदरभाव की समरसता है। अव्यक्त को अपनाये हुए अनिर्वचनीय आत्मीयता से ओत-प्रोत एक अनूठा व्यक्तित्व जिसकी शीतल छाया में बैठकर संतप्त मानव त्राण पाता है।

बीकानेर का यह सौभाग्य है कि यह *'तापस कुसुम'* इसी प्रांगण से प्रसूत है।

शिक्षा, साहित्य, कला, दर्शन, धर्म आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में *आप वैज्ञानिक दृष्टि* को अपनाते हुए आध्यात्मिक आलोक प्रदान करते हैं।